भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा

श्री परशुराम चतुर्वेदी

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली इलाहाबाद बम्बई

मूल्य तीन रुपये आठ आने

प्रथम सस्करण, १९५६

राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड बम्बई के लिए श्री गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली द्वारा मुद्रित ।

प्रस्तावना

प्रस्तुत निवन्ध भारतीय प्रेमाख्यानो के वैविध्य एव विकास के विषय में सरसरी ढग से किया गया एक अध्ययन है। इस प्रकार के भारतीय साहित्य की परम्परा वहुत पुरानी है और इसके पूर्वरूप का सकेत हमें प्राचीन वैदिक सहिताओ तक में मिलता है। वहाँ पर ये केवल प्रसगवश और अधिकतर सवादो के रूप में आए हैं और इन्हे वहाँ गौण स्थान ही मिला है। किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थो और उपनिषदो के अन्तर्गत ये क्रमश किसी विधि अथवा सिद्धान्त के समर्थन एव प्रतिपादन के लिए दृष्टान्त रूप में भी प्रयुक्त होने लग जाते हैं। पीछे जव इतिवृत्तात्मक रचना-शैली की प्रवृत्ति अधिक-प्रवल होती है तथा 'रामायण' एव 'महाभारत' का निर्माण होता है और पौराणिक रचनाओ की एक परम्परा-सी चल निकलती है, ये उन आख्यानो के अन्तर्गत पूरकों का काम करते हैं और 'उपाख्यान' कहलाने लगते हैं। फिर वौद्ध एव जैन साहित्यो की रचना के समय इन प्रेमाख्यानो को क्रमश 'जातकों' और 'धर्मकथाओ' में भी स्थान मिलने लगता है। तदनुसार ये वहाँ धार्मिक वातो के प्रचार के साधन वनते हैं। फलत इनके प्रेम-व्यापार का महत्त्व वहुत कुछ घटा तक दिया जाता है। परन्तु कथा-साहित्य एव काव्य-साहित्य की रचनाओ का आरम्भ हो जाने पर इन्हे फिर विशेष गौरव प्रदान किया जाने लगता है। कथा-साहित्य में ये अपने वर्ग की अन्य रचनाओ की पक्ति में प्रमुख स्थान पाते हैं और काव्य-साहित्य में ये स्वतन्त्र और अलकृत भी हो जाते हैं। प्रेमाख्यानो के लिए यह समय चरमोत्कर्ष का युग कहला सकता है, क्योंकि यही उन्हे सर्वप्रथम वाह्यरूपो की विविधता मिलती है। इसी काल से उन्हे आकर्षण की वह अपूर्व शक्ति भी मिल जाती है जिससे वे पीछे सभी प्रचलित भाषाओ द्वारा एक समान अपनाये जाने लगते हैं।

भारतीय प्रदेशों की विविध भाषाओ के जव अपने पृथक् साहित्य निर्मित होने लगते हैं, उक्त रूप उनके लिए आदर्श वन जाते हैं। इस समय

तक संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की अनेक ऐसी रचनाएँ उनके सामने आ गई रहती हैं जो प्रेम-व्यापार को प्रधानता देती हैं। वे न केवल आख्यानों व उपाख्यानों तथा कथाओं के ही रूपों में पाई जाती हैं, उन्हें गाथा, आख्यायिका, महाकाव्य, खंडकाव्य, नाटक, चम्पू जैसे अन्य अनेक काव्य-प्रकार भी मिल गए रहते हैं जिनका अनुकरण आरम्भ हो जाता है। यहाँ पर उल्लेखनीय यह है कि कथा-साहित्य की भी वे रचनाएँ, जिनका प्रमुख उद्देश्य शुद्ध प्रेम-सम्बंधी घटनाओं का वर्णन रहा करता है, काव्यमयी शैली अपना लेती हैं। इन्हें वाण की 'कादम्बरी' और सुबंधु की 'वासवदत्ता' जैसे आदर्श मिल जाते हैं, जिनकी रचना करते समय काव्य-सौंदर्य को पूरा महत्त्व दिया गया रहता है। इनकी कथावस्तुओं के सीधी और सरल रहते हुए भी, उनके घटना-चक्रों में पूरी पेचीदगी पैदा कर दी जाती है तथा क्रमशः गुंफित होती जाने वाली उपकथाओं का जाल बुनकर उनके स्वाभाविक प्रवाह को आवृत एवं अवरुद्ध कर दिया जाता है। इसके सिवाय प्रादेशिक भाषाओं के प्रेमाख्यानों पर जहाँ-कहीं सूफियों की रचना-शैली का प्रभाव लक्षित होता है उनकी कलात्मकता में और भी कृत्रिमता आती दीख पड़ती है और वे एक बार फिर धर्म-प्रचार के विशिष्ट साधन समझे जाने लगते हैं। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक युग का आरम्भ होने के पहले तक यहाँ प्रेम-कथाएँ अत्यन्त लोकप्रिय बन जाती हैं और इस बात का प्रभाव पिछले साहित्य पर भी पड़ता है।

'प्रेमाख्यान' शब्द का 'आख्यान' संज्ञक अंश कदाचित् 'कथा' का उपयुक्त पर्याय नहीं कहला सकता। पहले इसका प्रयोग 'महाभारत' एवं 'रामायण' के लिए होता था। फिर पौराणिक साहित्य के सम्बन्ध में भी, 'पुराणम् आख्यानम्' कहा जाने लगा था तथा इसी कारण इस प्रकार के साहित्य की अन्तर-कथाओं को उपाख्यान की संज्ञा दी जाती थी। 'कथा' शब्द किसी व्यक्ति के उस कथन का अभिप्राय प्रकट करता है जो किसी दूसरे के सम्बन्ध में किया गया हो। वह या तो किसी साधारण बड़ी कहानी के रूप में होता है अथवा उसका सम्बन्ध किसी प्रकार की धार्मिक चर्चाओं से भी रह सकता है। 'गाथा' शब्द भी इसी प्रकार प्रधानतः ऐसी कथा को ही सूचित करता है, जो प्रशंसात्मक हो और जो कालक्रमानुसार बहुत-कुछ प्राचीन भी कहला सकें, किन्तु 'आख्यायिका' की विशेषता इस बात में पाई जाती है कि वह स्वयं किसी अपने पात्र द्वारा ही कही गई रहती है, जिस

कारण उसकी बहुत-सी बातें आत्मोद्गारपरक बन जाती हैं। प्रेमाख्यान वाले 'आख्यान' शब्द का मूल अर्थ भी किसी ऐसी विशेषता की ही ओर संकेत करता जान पडता है। 'महाभारत' एव 'रामायण' के 'आख्यान' कहे जाने की सार्थकता भी कदाचित् इसी बात में निहित होगी कि उनके रचयिता क्रमश व्यास एव वाल्मीक ने अपनी देखी-सुनी बातें ही लिखी थी, उनमें कल्पना का वैसा अश नही रहता, जो कथा के सम्बंध में प्राय आवश्यक-सा बन जाया करता है। 'आख्यान' शब्द को, इसी कारण, अपेक्षाकृत अधिक वृत्तान्तपरक और तदनुसार विशुद्ध भी कह सकते हैं। अतएव प्रेम-कहानी के भी मूल रूप में वस्तुत 'आपबीती' जैसी ही होने से, 'प्रेम' शब्द के साथ किये गए इसके प्रयोग को सर्वथा उपयुक्त समझना चाहिए।

वैदिक युग से लेकर आधुनिक समय तक विभिन्न रूप ग्रहण करते आने पर भी भारतीय प्रेमाख्यानो में कोई विषयगत मौलिक अन्तर नही लक्षित होता। उनमें प्राय सर्वत्र एक विशिष्ट भाव-धारा काम करती जान पडती है। उनकी कथा-वस्तुओ के सरलता से जटिलता की ओर विकसित होते जाने पर भी उनमें भारतीय सस्कृति के ही उदाहरण मिलते हैं। उनके नायक-नायिकाओ में मानव से लेकर गधर्व और देवता तथा राक्षस वर्ग तक के व्यक्ति दीख पडते हैं। उनकी घटनाएँ अत्यन्त विचित्र ढगो से घटा करती है। किन्तु जहाँ तक उनमें उदाहृत सामाजिक व परम्परागत सम्बध का प्रश्न है, वह उनके विविध पात्रो की मर्यादाओ का ठीक अनुसरण करता चलता है। प्रेम-भाव का उदय साधारणत प्रत्यक्ष भेंट, स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन अथवा गुणश्रवण द्वारा होता है। सखा, सखी, पक्षियो और दैवी शक्तियो तक से सहायता ली जाती है और उसकी परिणति वैवाहिक सम्बध में ही की जाती है। तदनुसार ये रचनाएँ विशेषत सुखात रूपो में ही दीख पडती हैं और इनमें बहुत कम ऐसी मिलेंगी जो वस्तुत दु खान्त कही जा सकें। अतएव भारतीय प्रेमाख्यान भारतीय सस्कृति के सच्चे रूप का उद्घाटन करते दीख पडते हैं। इसी कारण भारतीय समाज के सास्कृतिक विकास पर विचार करते समय इसकी क्रमिक परम्परा का अध्ययन हमें पूरी सहायता प्रदान करने में समर्थ हो सकता है।

मध्यकालीन भारतीय प्रेमाख्यानो की एक यह विशेषता है कि उनमें प्रदर्शित प्रेम-भाव के बहुधा 'लौकिक' एव 'अलौकिक' नामक दो भेद किये गए मिलते हैं, जो तत्कालीन धार्मिक आन्दोलनो के प्रभाव का परिणाम है।

जिस कथानक के पात्र केवल साधारण स्त्री-पुरुष ही होते हैं, उनमें प्रेम-चर्चा विशुद्ध लौकिक स्तर पर की गई समझी जाती है। किन्तु जहाँ-कही उनमें प्रेम-पात्र का स्थान स्वय परमात्मा व भगवान् ग्रहण कर लेता है, वहाँ प्रेमाख्यानो के अन्तर्गत या तो रूपकात्मक शैली का उपयोग होता है अथवा अधिकतर कल्पना से काम लिया जाने लगता है और वहाँ बहुत-कुछ पौराणिकता भी आ जाती है। रूपकात्मक शैली का प्रयोग करते समय भी स्वभावत किसी लौकिक प्रेम-कहानी का ही कथन किया जाता है किन्तु उसका निर्वाह इस प्रकार करते हैं कि यदि उसके पात्रो एव प्रमुख प्रसगो का नाम परिवर्तन कर दिया जाय तो वह किसी इष्टदेव के सम्बन्ध में भी घटाई जा सके। इसी प्रकार जब किसी प्रेम-कहानी पर पौराणिकता का रग चढा दिया गया रहता है तो उसे पढते समय भावुकता का आश्रय लेना पड जाता है। ऐसी कहानियो का इतिवृत्तात्मक पक्ष प्राय सबल और सुव्यवस्थित नही रह पाता, जिस कारण उनमें अस्वाभाविकता भी आ जाती है। इन दोनो के उदाहरण हमें क्रमश सूफियो तथा कतिपय वैष्णव कवियो की रचनाओ में मिलते हैं।

आधुनिक युग का प्रवेश हो जाने पर लोगो की धार्मिक प्रवृत्ति धीरे-धीरे कुण्ठित होने लगी, जिसके परिणामस्वरूप उक्त प्रकार के प्रेमाख्यानो की रचना को पूर्ववत् प्रोत्साहन मिलना बन्द-सा हो गया। पाश्चात्य देशो के साथ सम्पर्क बढते जाने के साथ-साथ भारतीयो के सामने उनके विविध साहित्यो का आदर्श भी आ उपस्थित हुआ। इसका प्रभाव, न केवल प्रेमाख्यानो की रचना-शैली, अपितु उनके वर्ण्य विषय तक पर भी पडे बिना नही रह सका। पुरानी पद्यमयी कथाओ तथा आख्यायिकाओ की परम्परा का प्राय लोप ही हो चुका था। वैसे महाकाव्यो एव खण्डकाव्यो तक की सख्या में कमी आने लगी। इनका स्थान गद्यमयी कहानियो तथा उपन्यासो ने लेना आरम्भ कर दिया और जिस प्रेमी एव प्रेमिका के लिए अधिकतर उच्चवर्गीय समाज का ही आधार ढूंढना पडता था उसे साधारण व्यक्तियो के भी धरातल पर पा लेना सरल हो गया। फलत रुढिवादिता के बधन सर्वत्र ढीले पड गए और वर्ण्य-विषयो की परिधि के अन्तर्गत मानव-जीवन के अत्यन्त व्यापक रूप के भी आ जाने के कारण प्रेमाख्यानो के रचयिता का द्वार सभी ओर के लिए सर्वथा उन्मुक्त हो गया। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि भारतीय सस्कृति के जिस आदर्श का चित्रण ऐसी रचनाओं द्वारा पहले से

होता आ रहा था, उसके महत्त्व में क्रमश कमी आती जान पडने लगी।

मध्ययुग के आरम्भ में जब यहाँ पर मुसलमान आए थे और उन्होने अपना आधिपत्य कायम किया था वे अधिकतर विधर्मियो के ही रूप में दीख पडे थे और तदनुसार धार्मिक सघर्षों के कुछ दिनो में शान्त हो जाने के पश्चात् लोग फिर प्राय पूर्ववत् रहने लग गए थे। मुसलमान भी 'पूर्वीय' क्षेत्रो के ही निवासी थे तथा उनकी अरब एव ईरान के गठबन्धन पर आश्रित सस्कृति यहाँ के लिए उतनी अपरिचित नहीं कही जा सकती थी और न इसी कारण, वह उतनी विरुद्ध ही सिद्ध हुई। इसके सिवाय उस समय तक विश्व की आर्थिक एव राजनीतिक विचारधारा में वैसी क्रान्ति भी नही आ पाई थी और न इसके कारण यहाँ किसी सामाजिक उथल-पुथल की आशका थी। उस समय के सास्कृतिक भेद बहुत-कुछ ऊपरी से जान पडे, जिन्हे मिटाने में स्वय मुसलमानो तक ने कम सहयोग नही दिया। परन्तु पाश्चात्य देशो के निवासियो का सम्पर्क यहाँ के लिए बहुत अधिक दूर तक प्रभाव डालने वाला प्रतीत होता है। आधुनिक युग की विलक्षण प्रवृत्तियो के कारण हम अग्रेजो के चले जाने पर भी उनके द्वारा अपने को आमूल प्रभावित पा रहे हैं। भारतीय नर-नारी का पारस्परिक सम्बन्ध कुछ नया रग पकडता जा रहा है और प्रेम का क्षेत्र जहाँ अधिक विस्तृत होता जान पडता है वहाँ उसकी भाव-प्रवणता में कमी आती जा रही है। वह कदाचित् उस रूप को ग्रहण करने की ओर उन्मुख है जिसे 'अफलातूनी इश्क' की सज्ञा दी जाती है। ऐसी दशा में भारतीय प्रेमाख्यानो की परम्परा का पूर्ववत् प्रचलित रहना सदिग्ध ही कहा जा सकता है।

इस निबन्ध के अन्तर्गत विशेषकर उन्ही भारतीय प्रेमाख्यानो की चर्चा की गई है जो या तो प्राचीन हैं या मध्यकालीन। इनमें आधुनिक युग के भी केवल उन्ही के नाम आ सके हैं, जिनका क्रमागत परम्परा के साथ कोई-न-कोई सम्बंध जोडा जा सकता है। यहाँ पर उन्हीं प्रेमाख्यानो का उल्लेख भी हुआ है, जो अपने युग के लिए प्रतिनिधि स्वरूप समझे जा सकते हैं। उनकी कथावस्तु का साराश दिया गया है, उनकी विशेषताओ की ओर सकेत किया गया है और यथासम्भव इस बात को तुलना द्वारा भी स्पष्ट कर दिया गया है। एक ही युग के अन्तर्गत कभी-कभी एक से अधिक रचना-शैलियो के प्रयोग दीख पडते हैं और उनका पृथक्-पृथक् महत्त्व भी है। इसलिए प्रयत्न इस बात का भी किया गया है कि उन सभी की भिन्न-भिन्न बातो का कुछ-

न-कुछ उल्लेख हो सके। कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि एक ही कथानक में यत्किंचित् परिवर्तन करके विभिन्न युगो और साहित्यो की बहुत-सी रचनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। प्रमुख पात्र वे ही हैं, घटनाएँ भी बहुत-कुछ एक ही समान हैं, किन्तु उनके क्रमादि भिन्न हैं और कतिपय प्रसगो में भी अन्तर आ गया है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी ऐसी रचनाओ का निर्माण करने वाले कवियो के उद्देश्य-भेद के अनुसार भी इसमें भिन्नता आ गई है। जिस साधारण-से कथानक को 'महाभारत' के रचयिता ने केवल 'नलोपाख्यान' के नाम से अभिहित किया है वही महाकवि श्री हर्ष के 'नैषधीयम्' महाकाव्य के रूप में परिणत हो जाता है। इसी प्रकार 'शाकुतलोपाख्यान' भी महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुतलम्, नामक नाटक का रूप ग्रहण कर लेता है और इस प्रकार साधारण कथाएँ भी सरस काव्य बन जाती हैं।

भारतीय प्रेमाख्यानो का साहित्य बहुत व्यापक है और विभिन्न प्रान्तीय भाषाओ के कारण बहुत विस्तृत भी है। परन्तु भारतीयो की सास्कृतिक एकता ने उनमें कोई मौलिक भिन्नता नही आने दी है और वे कम-से-कम विषय की दृष्टि से, प्राय एक समान ही कहे जा सकते हैं। भारत की सभी प्रान्तीय भाषाएँ अपनी रचनाओ में सस्कृत साहित्य का न्यूनाधिक अनुकरण करती हैं। इसके 'महाभारत', 'रामायण' तथा पौराणिक ग्रन्थो से उन्होने अनेक प्रेम-कथाओ को उधार भी लिया है जिससे उक्त समानता और भी स्पष्ट हो जाती है। विशेष अन्तर केवल वही लक्षित होता है जहाँ उनके रचयिताओ ने कल्पना से अधिक काम लिया है अथवा ऐसी रचनाओ के लिए अपने यहाँ की प्रचलित लोकगाथाओ का आधार स्वीकृत किया है। ऐसी दशा में कभी-कभी रुचि-विभिन्नता तथा स्थानीय विशेषता ने भी काम किया है, जिस कारण बहुत-सी बातें एक-दूसरी से विलक्षण जान पडती हैं। सभी प्रान्तीय साहित्यो का परिचय ठीक एक-समान न रहने के कारण कई की अनेक विशिष्ट रचनाओ का भी उल्लेख नही किया जा सका होगा। यह भी स्वाभाविक है कि बहुत-से प्रेमाख्यानो के मूल रूप में न पढे जाने के कारण उनकी सभी मौलिक विशेषताओ पर विचार भी नही किया गया होगा। किन्तु इस निबन्ध-लेखन का उद्देश्य कोई सर्वथा निर्दोष व सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ प्रस्तुत करना नही रहा है। इसमें केवल एक महत्त्वपूर्ण एव साथ ही अत्यन्त रोचक विषय की ओर ध्यान दिलाने का प्रयत्न-मात्र किया गया है, जिससे इसका सम्यक् अनुशीलन किया जा सके।

इसके लिखने में मुझे वहुत-सी प्रकाशित एव अप्रकाशित रचनाओ से सहायता मिली है, जिनमें से कई का उल्लेख अन्त में कर दिया गया है। इस सम्वध में डा० हरदेव वाहरी और डा० कृष्णदेव उपाध्याय का विशेष आभारी हूँ, जिन्होने क्रमश पजावा साहित्य और भोजपुरी साहित्य की अधिकाश सामग्री प्रदान करने की कृपा की है। इन्हे मेरे लिए सुलभ कर देने में जो परिश्रम मेरे अनुज श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने किया है उसके लिए केवल आभार-प्रदर्शन ही पर्याप्त नही कहला सकता।

वलिया, —परशुराम चतुर्वेदी

अक्षयनवमी, सं० २०१२

क्रम

विषय-प्रवेश

प्रेमाख्यानों का उदय

प्रेम एक सहज मानवीय प्रवृत्ति है और यह मानव-समाज की आदिम अवस्था से ही काम करती आ रही है। प्रेम का भाव मानवीय हृदय में स्वभावतः उदय लेता है और एक विचित्र प्रकार की आत्मीयता का आश्रय ग्रहण कर विकसित होता हुआ, यह क्रमश. अपने क्षेत्र को भी अधिक उदार बना देता है। फलत प्रेमी न केवल इसकी अनुभूति मात्र से ही सन्तुष्ट रह जाता है, अपितु वह इसकी अभिव्यक्ति द्वारा औरों की सहानुभूति भी चाहता है। यदि वह अपने शब्दों में ऐसा कर नहीं पाता तो उसके रोम-रोम से प्रेम का प्रभाव लक्षित होने लग जाता है और उसके अपने जीवन के दूभर बन जाने में भी विलम्ब नहीं लगता। इस प्रकार प्रेम का भाव सदा अपना प्रसार चाहता है और अपनी आत्मसात् करने वाली प्रवृत्ति के सहारे वह सभी कुछ को अपने रंग में डुबो देने का भी प्रयत्न करता है। प्रेमी को यदि अपने हृदय का मर्म अपने प्रेमपात्र पर ही प्रकट करने में पूरी शान्ति नहीं मिलती तो वह उसे अपने निकटवर्ती व्यक्तियों अथवा निर्जीव पदार्थों तक के प्रति व्यक्त करने में कभी नहीं हिचकता। ऐसे हृदयोद्‌गारों के द्वारा वह अपना बोझ हलका करता रहता है और इसके साथ ही वह अपने लिए एक आवश्यक सहारा भी ढूँढ़ लिया करता है। प्रेमाभिव्यक्ति में एक अनिर्वचनीय रस मिलता है जिसे बार-बार पीकर भी प्रेमी नहीं अघाता, प्रत्युत् इसके लिए उसकी प्यास बराबर बनी ही रहा करती है। इसका स्वाद इतना विलक्षण है कि वह इसका इतिवृत्त सुनने वाले तक को भी प्रभावित किये बिना नहीं रह पाता जिस कारण यह दूसरे की 'आपबीती' होने पर भी प्रायः बार-बार दुहराया जाता है। अतएव, उपाख्यानों, कथाओं अथवा गाथाओं के साहित्य में भी हमें प्रेमात्मक आख्यानों का ही अंश अधिक मिला करता है। प्रेमाख्यानों का यह बाहुल्य प्रत्येक देश के वाङ्मय में पाया जाता है और उन्हें सर्वत्र लगभग एक ही प्रकार की लोकप्रियता भी उपलब्ध है तथा जिन देशों में इनकी परम्परा पुरानी है वहाँ के सामाजिक विकास के साथ-साथ इनके रूप-रंग में भी क्रमिक

परिवर्तन होता गया है।

प्रेमाख्यानों का रूप वस्तुत वर्णनात्मक इतिवृत्तों का होता है और वे या तो आख्यायिका की भाँति अपने किसी प्रमुख पात्र के ही द्वारा कहे गए होते हैं अथवा वे कथा के ढग पर सवादों के आधार पर भी चल सकते हैं और उनमें कई अन्य वृत्तों का भी समावेश हो जाया करता है। उनका किसी रचयिता-विशेष द्वारा कल्पित किया जाना आवश्यक नहीं, प्रत्युत् वे अधिकतर परम्परागत ही हुआ करते हैं। वे या तो बड़ी-बड़ी रचनाओं के अन्तर्गत केवल प्रसगवश आ जाते हैं अथवा, उनके कथानक-सूत्रों के आधार पर विविध कलात्मक रचनाओं का भी निर्माण किया गया मिलता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस दूसरे प्रकार के रूपों में उनकी मौलिकता पर भी आघात पहुँचता है और उनके ऊपर कोई-न-कोई एक ऐसा रग भी चढ़ जाया करता है जिससे उनकी स्वाभाविकता कभी अक्षुण्ण नहीं रह पाती। अतएव, विशुद्ध प्रेमाख्यान वस्तुतः वे ही कहे जा सकते हैं जो यथासम्भव अपने पूर्वरूपों में ही चले आ रहे हों तथा जिनके ऊपर किसी प्रकार के कृत्रिम सुधार की चेष्टा न की गई हो। प्रेमाख्यानों की एक यह भी विशेषता है कि उनकी कहानियों में किन्हीं धर्मगत, समाजगत, परम्परागत अथवा योनिगत भेदों तक का भी विचार किया गया नहीं पाया जाता और उनमें प्रसगवश आये हुए सभी पात्र लगभग एक समान तथा एक ही स्तर पर व्यवहार करते जान पड़ते हैं। यहाँ तक कि समय-समय पर उनमें अनेक प्राकृतिक व्यापारों तक का हाथ स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। इसी प्रकार प्रेमाख्यानों के अन्तर्गत विविध कलाओं के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के यंत्र, मत्र, योग, जादू तथा अन्य ऐसे चमत्कारजनक साधनों का भी प्रयोग रहा करता है और प्रेमी एव प्रेमिका के प्रयत्नों में अनेक देवी-देवता भी सहायता प्रदान करते दीख पड़ते हैं।

उनका रूप

प्रेमाख्यानों का सर्वप्रमुख विषय किसी पुरुष व स्त्री का क्रमश. किसी अन्य सुन्दरी स्त्री या सुन्दर पुरुष पर प्रेमासक्त हो जाना है। प्रेमी अपने प्रेम-पात्र की ओर उसका प्रत्यक्ष दर्शन कर, अथवा उसके चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन वा गुणश्रवण के माध्यम से भी आकृष्ट होता है। वह उसे पाने के प्रयत्न करने लग जाता है और यदि इसमें किसी प्रकार की बाधा आ पड़ती है तो वह उसे भी दूर करने की अथक चेष्टा करता है। वह अपने इस कार्य में बिना पूरी

उनका विषय

सफलता प्राप्त किये, सन्तोष की सांस लेना नहीं जानता। प्रेमी को अपने प्रेम-पात्र का क्षणिक विरह भी असह्य हो उठता है और प्रेमाख्यानों में उसे उसके लिए अधीर एवं बेचैन होकर प्रायः उन्मत्त तक बन जाने वाला चित्रित किया जाता है। इसी प्रकार प्रेमाख्यानों का अन्त अधिकतर प्रेमी एवं प्रेमपात्र के मिलन में ही हुआ करता है, किन्तु कभी-कभी इनमें, इसके विपरीत उनके प्रयत्नों की विफलता भी दिखला दी जाती है। विशुद्ध प्रेमाख्यानों के अन्तर्गत प्रेमी एवं प्रेमपात्र का प्रेमभाव आरम्भ से ही पारस्परिक तथा एक समान दीख पड़ता है और वे दोनों ही मिलन के प्रयत्न भी किया करते हैं। किन्तु कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि पहले एक पक्ष के ही ऊपर इसकी धुन सवार होती है और यदि वह कोई वीर या योद्धा हुआ तो वह अपनी प्रेमपात्री का हरण करने के उद्देश्य से विरोधियों के साथ विकट युद्ध तक ठान देता है। इसके सिवाय निम्न कोटि के कामासक्त प्रेमी बहुधा छल-कपट वा षड्यन्त्रादि का भी आश्रय लिया करते हैं और वे हत्याएँ भी करा डालते हैं। प्रेमाख्यानों के प्रेमियों की सफलता अधिकतर उनके अपने प्रेमपात्रों के साथ विवाह-सम्बन्ध के सम्पन्न हो जाने में ही देखी जाती है। किन्तु भारतीय साहित्य में इसका एक वह रूप भी मिलता है जिसमें कोई ऐसी पत्नी अपने पातिव्रत धर्म का पूर्ण परिचय देती है और अपने पति के विपथ हो जाने पर भी उसका साथ नहीं छोड़ती।

वैदिक प्रेमाख्यान

पुरूरवस् और उर्वशी

भारतीय प्रेमाख्यानों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और उनके कुछ उदाहरण 'ऋग्वेद संहिता' तक में पाये जाते हैं। 'ऋग्वेद' के दशम मण्डल वाले ९५वें सूक्त में उर्वशी एवं पुरूरवस् का प्रेमाख्यान आता है जिसके विषय में कहा गया है कि "अभी तक जितनी भारतीय-यूरोपीय प्रेम-कहानियाँ विदित हैं उनमें यह सर्वप्रथम है और हो सकता है कि सारे विश्व के प्रेमाख्यानों में भी यह प्राचीनतम समझा जा सके।[1] इसकी प्रेमकथा के अन्तर्गत न केवल अत्यन्त गम्भीर प्रेमभाव की अभिव्यक्ति हुई है,

---

१. "It is the first Indo-European love-story known, and may even be the oldest love-story in the world."—N. M Penzer (The Ocean of Story—London, 1924) p. 245

प्रत्युत् इसमें प्रतीकात्मकता की भी कमी नहीं पायी जाती। यह अपने मूल रूप में पुरूरवस् एवं उर्वशी का संवाद मात्र है जो उक्त सूक्त के १८ मंत्रों में से कई-एक में प्रकट होता है।[१] इसके द्वारा केवल इतना ही विदित होता है कि उन दोनों प्रेमियों के बीच कुछ प्रेमानुबन्ध स्वीकृत थे जिनका समुचित पालन नहीं हो सका है। इसी कारण रुष्ट होकर फिर उर्वशी पुरूरवस् के साथ लौटना नहीं चाहती तथा उसके सारे अनुनय-विनय को वह ठुकराने तक पर तुल गई है। परन्तु 'शतपथ ब्राह्मण' के एकादश काण्ड वाले पञ्चम अध्याय के प्रथम ब्राह्मण[२] द्वारा उक्त संवाद का स्पष्टीकरण हो जाता है। उससे पता चलता है कि उर्वशी ने पुरूरवस् के साथ पत्नीवत् रहने के पहले उनसे तीन अनुबन्ध स्वीकृत करा लिये थे जिनमें से एक यह भी था कि वह उसे कभी नंगा न देख पाये। तदनुसार वह पुरूरवस् के साथ बहुत दिन तक रही और समय पाकर गर्भवती हो गई, जिन बातों को गन्धर्वों ने नापसन्द किया। गन्धर्वों ने इसीलिए आपस में षड्यन्त्र करके सोयी हुई उर्वशी के निकट बँधे हुए उसके दो प्रिय मेमनों को क्रमश एक-एक करके चुरा लिया और दोनों बार उसे चिल्लाकर कहना पड़ा, "अरे, ये लोग मेरे प्रिय मेमने को लिये जा रहे हैं, जान पड़ता है कि यहाँ पर कोई भी पुरुष विद्यमान नहीं है!" पुरूरवस् को यह बात स्वभावत तीर-सी लगी और उसने सोचा, "यह कैसे हो सकता है कि मेरे रहते कभी ऐसा कहने का अवसर उपस्थित हो।" अतएव, अपने शयन-स्थान से वह झट उठ खड़ा हो गया और बिना इस पर विचार किये कि मैं नग्न हूँ वह गन्धर्वों के पीछे दौड़ पड़ा। गन्धर्वों ने भी इसे उपयुक्त अवसर समझकर उधर से विद्युत् का प्रकाश कर दिया जिसमें उर्वशी ने उसे नग्न रूप में देख लिया और वह उसके लौटते-लौटते वहाँ से लुप्त हो गई।

पुरूरवस् को इस बात का बहुत बड़ा मनस्ताप हुआ और वह उर्वशी के विरह में इधर-उधर भटकता फिरने लगा। इसके उपरान्त वह फिर उसे कुरुक्षेत्र के किसी 'अन्यत प्लक्ष' नाम की पुष्करिणी में अपनी सखियों के साथ, हंसिनियों के रूप में, तैरती हुई मिली। उर्वशी ने उसे उसी क्षण पहचान लिया और वह अपनी सखियों के साथ उसके सामने प्रकट भी हो गई।

वही

१ मंत्र १, २, १४, १५ और १६।

२ 'शतपथ ब्राह्मण' (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, स० १९६६) पृ० ११६-२७।

पुरूरवस् को भी उसे पहचानने में विलम्ब न लगा और वह उससे कहने लगा—"प्रिये, तुम ऐसी कठोरता का व्यवहार क्यों करती हो? आओ मेरे साथ चलो।" किन्तु उर्वशी ने उत्तर दिया कि "मैं अब उषा की भाँति जा चुकी हूँ और मुझे पकड़ पाना अब हवा को पकड़ने के ही समान कठिन है। तुम अपने घर लौट जाओ।" इस पर पुरूरवस् ने फिर कहा, "यदि नहीं मानोगी तो मैं अपने प्राण दे दूँगा।" इसके उत्तर में उर्वशी ने कहा, "ऐसा न करो, स्त्रियों का हृदय भेड़ियों का-सा क्रूर हुआ करता है, लौट जाओ।" उसने यह भी बतलाया, "देखो, मैं मर्त्यलोक में तुम्हारे साथ चार वर्ष तक रही और केवल प्रतिदिन एक बार थोड़ा-सा घी पीकर जीती रही। जाओ इस वर्ष के अन्त तक आना, मैं तुम्हारे साथ फिर एक रात रहूँगी और तब तक मेरे गर्भ से बालक भी जन्म ले चुका होगा।" तदनुसार पुरूरवस् वहाँ फिर उस वर्ष की अन्तिम रात के समय आया और वहाँ उसे एक विचित्र स्वर्ण-मन्दिर दीख पड़ा जिसमें उसने प्रवेश किया। उर्वशी ने वहाँ उसे बतलाया कि कल गन्धर्व लोग यहाँ आकर तुम्हें मुँह माँगा वर देंगे जिसके लिए तुम अभी से निश्चय कर लो। पुरूरवस् के पूछने पर उसने यह भी परामर्श दिया कि गन्धर्वों के प्रश्न करने पर तुम यही कह देना "मैं चाहता हूँ कि मैं भी तुम्हीं लोगों में से एक हो जाऊँ।" दूसरे दिन राजा के इस प्रकार कहने पर गन्धर्वों ने उसे एक पात्र में आग दे दी और कह दिया कि इसमें होम करने से तुम्हें अभीष्ट की सिद्धि हो जायगी। पुरूरवस् उस पात्र को लेकर अपने पुत्र के साथ घर की ओर चला, किन्तु कुछ सोचकर उसने अग्निपात्र को अपने मार्ग में ही छोड़ दिया। जब दूसरे दिन वह फिर लौटा तो उसने देखा कि उस पात्र की जगह एक अश्वत्थ का वृक्ष खड़ा है और उसके पास ही एक शमी का वृक्ष भी है। अन्त में, गन्धर्वों के ही परामर्श से उसने अश्वत्थ की दो अरणियाँ बनाईं और उन दोनों के संघर्ष द्वारा अग्नि उत्पन्न कर, उसके माध्यम से वह गन्धर्वों में जा मिला।

'शतपथ ब्राह्मण' में आये हुए इस विवरण द्वारा पता चल जाता है कि 'ऋग्वेद' के सूक्त वाले उपर्युक्त संवाद की मूल कथा क्या रही होगी।

वही · आलोचना

दोनों की कथाएँ अभिन्न हैं। इस बात का प्रमाण 'शतपथ ब्राह्मण' में ही उद्धृत किये गए उस सूक्त के १,२,१४,१५ एवं १६ संख्यक मंत्रों में भी मिल जाता है। ये मंत्र उर्वशी एवं पुरूरवस् के उस संवाद का कुछ परिचय देते हैं जो उन दोनों के बीच 'अन्यतःप्लक्षा' पुष्करिणी के तीर पर हुआ था।

प्रत्युत् इसमें प्रतीकात्मकता की भी कमी नहीं पायी जाती। यह अपने मूल रूप में पुरूरवस् एव उर्वशी का सवाद मात्र है जो उक्त सूक्त के १८ मत्रों में से कई-एक में प्रकट होता है।[1] इसके द्वारा केवल इतना ही विदित होता है कि उन दोनों प्रेमियों के बीच कुछ प्रेमोनुबन्ध स्वीकृत थे जिनका समुचित पालन नहीं हो सका है। इसी कारण रुष्ट होकर फिर उर्वशी पुरूरवस् के साथ लौटना नहीं चाहती तथा उसके सारे अनुनय-विनय को वह ठुकराने तक पर तुल गई है। परन्तु 'शतपथ ब्राह्मण' के एकादश काण्ड वाले पञ्चम अध्याय के प्रथम ब्राह्मण[2] द्वारा उक्त संवाद का स्पष्टीकरण हो जाता है। उससे पता चलता है कि उर्वशी ने पुरूरवस् के साथ पत्नीवत् रहने के पहले उनसे तीन अनुबन्ध स्वीकृत करा लिये थे जिनमें से एक यह भी था कि वह उसे कभी नगा न देख पाये। तदनुसार वह पुरूरवस् के साथ बहुत दिन तक रही और समय पाकर गर्भवती हो गई, जिन बातों को गन्धर्वों ने नापसन्द किया। गन्धर्वों ने इसीलिए आपस में षड्यन्त्र करके सोयी हुई उर्वशी के निकट बँधे हुए उसके दो प्रिय मेमनों को क्रमश एक-एक करके चुरा लिया और दोनों बार उसे चिल्लाकर कहना पड़ा, "अरे, ये लोग मेरे प्रिय मेमने को लिये जा रहे हैं, जान पड़ता है कि यहाँ पर कोई भी पुरुष विद्यमान नहीं है!" पुरूरवस् को यह बात स्वभावत तीर-सी लगी और उसने सोचा, "यह कैसे हो सकता है कि मेरे रहते कभी ऐसा कहने का अवसर उपस्थित हो।" अतएव, अपने शयन-स्थान से वह झट उठ खड़ा हो गया और बिना इस पर विचार किये कि मैं नग्न हूँ वह गन्धर्वों के पीछे दौड़ पड़ा। गन्धर्वों ने भी इसे उपयुक्त अवसर समझकर उधर से विद्युत् का प्रकाश कर दिया जिसमें उर्वशी ने उसे नग्न रूप में देख लिया और वह उसके लौटते-लौटते वहाँ से लुप्त हो गई।

पुरूरवस् को इस बात का बहुत बड़ा मनस्ताप हुआ और वह उर्वशी के विरह में इधर-उधर भटकता फिरने लगा। इसके उपरान्त वह फिर उसे वही कुरुक्षेत्र के किसी 'अन्यत प्लक्ष' नाम की पुष्करिणी में अपनी सखियों के साथ, हसिनियों के रूप में, तैरती हुई मिली। उर्वशी ने उसे उसी क्षण पहचान लिया और वह अपनी सखियों के साथ उसके सामने प्रकट भी हो गई।

१ मत्र १, २, १४, १५ और १६।

२ 'शतपथ ब्राह्मण' (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, स० १६६६) पृ० ११६-२७।

पुरूरवस् को भी उसे पहचानने में विलम्ब न लगा और वह उससे कहने लगा—"प्रिये, तुम ऐसी कठोरता का व्यवहार क्यों करती हो? आओ मेरे साथ चलो।" किन्तु उर्वशी ने उत्तर दिया कि "मैं अब उषा की भाँति जा चुकी हूँ और मुझे पकड़ पाना अब हवा को पकड़ने के ही समान कठिन है। तुम अपने घर लौट जाओ।" इस पर पुरूरवस् ने फिर कहा, "यदि नहीं मानोगी तो मैं अपने प्राण दे दूँगा।" इसके उत्तर में उर्वशी ने कहा, "ऐसा न करो, स्त्रियों का हृदय भेड़ियों का-सा क्रूर हुआ करता है, लौट जाओ।" उसने यह भी बतलाया, "देखो, मैं मर्त्यलोक में तुम्हारे साथ चार वर्ष तक रही और केवल प्रतिदिन एक बार थोड़ा-सा घी पीकर जीती रही। जाओ इस वर्ष के अन्त तक आना, मैं तुम्हारे साथ फिर एक रात रहूँगी और तब तक मेरे गर्भ से बालक भी जन्म ले चुका होगा।" तदनुसार पुरूरवस् वहाँ फिर उस वर्ष की अन्तिम रात के समय आया और वहाँ उसे एक विचित्र स्वर्ण-मन्दिर दीख पड़ा जिसमें उसने प्रवेश किया। उर्वशी ने वहाँ उसे बतलाया कि कल गन्धर्व लोग यहाँ आकर तुम्हें मुँह माँगा वर देंगे जिसके लिए तुम अभी से निश्चय कर लो। पुरूरवस् के पूछने पर उसने यह भी परामर्श दिया कि गन्धर्वों के प्रश्न करने पर तुम यही कह देना "मैं चाहता हूँ कि मैं भी तुम्हीं लोगों में से एक हो जाऊँ।" दूसरे दिन राजा के इस प्रकार कहने पर गन्धर्वों ने उसे एक पात्र में आग दे दी और कह दिया कि इसमें होम करने से तुम्हें अभीष्ट की सिद्धि हो जायगी। पुरूरवस् उस पात्र को लेकर अपने पुत्र के साथ घर की ओर चला, किन्तु कुछ सोचकर उसने अग्निपात्र को अपने मार्ग में ही छोड़ दिया। जब दूसरे दिन वह फिर लौटा तो उसने देखा कि उस पात्र की जगह एक अश्वत्थ का वृक्ष खड़ा है और उसके पास ही एक शमी का वृक्ष भी है। अन्त में, गन्धर्वों के ही परामर्श से उसने अश्वत्थ की दो अरणियाँ बनाईं और उन दोनों के संघर्ष द्वारा अग्नि उत्पन्न कर, उसके माध्यम से वह गन्धर्वों में जा मिला।

'शतपथ ब्राह्मण' में आये हुए इस विवरण द्वारा पता चल जाता है कि 'ऋग्वेद' के सूक्त वाले उपर्युक्त संवाद की मूल कथा क्या रही होगी।

वही : आलोचना

दोनों की कथाएँ अभिन्न हैं। इस बात का प्रमाण 'शतपथ ब्राह्मण' में ही उद्धृत किये गए उस सूक्त के १,२,१४,१५ एवं १६ संख्यक मंत्रों में भी मिल जाता है। ये मंत्र उर्वशी एवं पुरूरवस् के उस संवाद का कुछ परिचय देते हैं जो उन दोनों के बीच 'अन्यतःप्लक्षा' पुष्करिणी के तीर पर हुआ था।

वास्तव में, 'शतपथ ब्राह्मण' का उद्देश्य यहाँ पर केवल यही प्रतीत होता है कि किस प्रकार अश्वत्थ की अरणियों द्वारा उत्पन्न अग्नि का महत्त्व बतलाया जाय। उसके एकादशवें 'काण्ड' के पञ्चम 'अध्याय' के प्रथम 'ब्राह्मण' का शीर्षक भी, इसी कारण, तदनुरूप ही दिया गया मिलता है[1]। परन्तु, इस 'ब्राह्मण' के अन्तर्गत उस प्रेमाख्यान का भी रूप स्पष्ट हो जाने से उसके आकर्षक बन जाने में विलम्ब नहीं लगा और पीछे के साहित्य में भी उसे स्थान मिला। 'ब्राह्मण' वाली कथा का एक आवश्यक परिणाम यह भी निकाला जाने लगा कि यद्यपि एक अप्सरा किसी मानव के साथ प्रेम कर सकती है, और उसके साथ कुछ दिन तक पत्नीवत् रह भी सकती है, किन्तु एक गन्धर्व योनि वाली स्त्री एव मानव-योनि के पुरुप का सम्बध तभी स्थायी हो सकता है जब यह पुरुष उसके लिए किन्हीं विहित अनुष्ठानों की साधना भी कर ले। 'ऋग्वेद' के उपर्युक्त सूत्र वाले मन्त्रों को पढ़ने से न तो यही पता चलता है कि पुरूरवस् ने उर्वशी अथवा गंधर्वों से क्या मागा और न उनसे किसी प्रकार के होमादि का महत्त्व ही सूचित होता है। वहाँ वह केवल एक आर्त्तप्रेमी के रूप में दीख पड़ता है और वह उर्वशी के साथ पुनर्मिलन से अधिक इच्छा प्रकट करता हुआ नहीं जान पड़ता। अतएव, हो सकता है कि 'शतपथ ब्राह्मण' का उक्त अश इस प्रेमाख्यान का भाग पहले न रहा हो और उसे पीछे से जोड़ दिया गया हो।

'ऋग्वेद' का ही एक दूसरा सवाद जो उसके दशम मण्डल के दशम सूक्त के रूप में आया है एक अन्य प्रेमाख्यान का मूलरूप माना जाता है।

यम और यमी का सवाद

इस सूक्त के अन्तर्गत १४ मत्र आते हैं जिनमें यम एव यमी नामक दो भाई-बहनों की बातचीत दी गई है। यमी यम की अपनी सगी बहन है जो उसके साथ यौन-सम्बध स्थापित करना चाहती है और कामासक्त बनकर निश्छल प्रेम-भरे शब्दों में उसे भोग-विलास के लिए आमन्त्रित करती है। किन्तु उसका भाई यम इस बात को पसन्द नहीं करता और भाई-बहन के बीच ऐसे सम्बंध का होना अस्वाभाविक ठहराना चाहता है। वह बड़ी दृढ़ता के साथ कहता है कि ऐसा करना शाश्वत नियमों के विरुद्ध है और देवताओं ने भी इसका निषेध किया है। किन्तु यमी फिर भी नहीं मानती और वह कहती है कि जब देवताओं ने सन्तति-वृद्धि का भी आदेश दिया है, उस दशा में ऐसा कहना उपयुक्त नहीं है। अन्त में वह यहाँ

१ "आश्वत्थ्योरण्योत्पत्ति ख्यापक ब्राह्मण" ('शतपथ ब्राह्मण) पृ० ११६।

तक कह डालती हैं कि तुम निरे कायर और निर्बल हो और तुम चाहते हो कि मुझे न स्वीकार कर किसी अन्य स्त्री को अपनाओ। इस पर यम भी उससे कहता है कि "जाओ तुम भी किसी अन्य पुरुष का ही आलिंगन करो और उसके साथ वृक्ष से लता की भाँति चिपक जाओ। तुम उसके हृदय पर अधिकार करो और वह तुम्हारे हृदय पर विजय प्राप्त कर ले और तुम दोनों एक साथ पूरे आनन्द के साथ अपना जीवन व्यतीत करो।" इन दोनों भाई-बहनों के संवाद का यहीं पर अन्त हो जाता है और पता नहीं चलता कि पूरी कथा का रूप क्या रहा होगा। इस प्रेमाख्यान के अपूर्ण अंशों की पूर्ति कहीं भी की गई नहीं मिलती और न इसके आधार पर कभी किसी पीछे के कवि ने कोई रचना करना ही उचित समझा है। सामाजिक नियंत्रणों के क्रमिक विकास द्वारा इसका कथानक अधिकाधिक हेय कहलाता चला गया होगा और इसकी पूरी उपेक्षा कर दी गई होगी।

'ऋग्वेद' के ही पञ्चम मण्डल के ६१वें सूक्त में एक अन्य कथा श्यावाश्व की आती है, जिसे भी हम किसी प्रेमाख्यान की रूपरेखा ठहरा सकते हैं। इस सूक्त में १९ मंत्र आये हैं और श्यावाश्व की कथा इसके पहले वाले ५२वें से लेकर ६०वें सूक्तों तक के मंत्रों से, पता चलता है कि उनका क्रम कदाचित् एक ही है। फिर भी हमें उस कथा के मूल सूत्रों का परिचय तब तक नहीं मिलता जब तक हम उन मंत्रों के लिए सायण भाष्य का भी अध्ययन नहीं करते हैं। इसके द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि रथवीति नाम के राजा ने अर्चनाना को होतृकार्य के लिए नियुक्त किया था जो श्यावाश्व के पिता थे। जिस समय यज्ञ का कार्य चल रहा था, उसी समय अर्चनाना की दृष्टि रथवीति की राजपुत्री पर पड़ी। उन्होंने उस कन्या के सौंदर्य से आकृष्ट होकर उसे अपने पुत्र श्यावाश्व की पत्नी होने योग्य समझा और उसे रथवीति से माँग भी लिया। रथवीति ने तो इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, किन्तु उनकी महिषी को यह बात अच्छी नहीं लगी और उन्होंने श्यावाश्व में ऋषि न होने का दोष निकाला। इस पर श्यावाश्व को बडी ग्लानि हुई और उन्होंने उक्त सुन्दरी का पाणिग्रहण करने के उद्देश्य से घोर तप किया। तद्-नुसार उन्हें मरुतों के दर्शन हुए जिनकी उन्होंने बड़ी स्तुति की और उन्हें प्रसन्न करके उनसे ऋषित्व की पदवी उपलब्ध कर ली। तब से वे फिर तरन्त, शशीयसी आदि से भी इस विषय में समर्थन प्राप्त करते रहे और अन्त में, उनका विवाह-संस्कार रथवीति की कन्या के साथ विधिवत् सम्पन्न हो गया।

'ऋग्वेद संहिता' के अंतर्गत उपलब्ध होने वाली इन अधूरी एवं अव्यवस्थित कथाओं पर यदि विचार किया जाय तो पता चलेगा कि ये संभवतः उन दिनों की बातें बतलाती हैं जब समाज के भीतर प्रेमविषयक स्वच्छन्दता एवं उच्छृंखलता अपने उग्र रूप का परित्याग करती जा रही थी। यम एवं यमी का संवाद इस बात का सूचक है कि सामाजिक नियमों का नियन्त्रण अभी तक व्यापक न हो सका था। उर्वशी का पुरूरवस् के प्रति आकृष्ट होना तथा उसी प्रकार यमी का भी यम के प्रति प्रस्ताव करना उस काल की स्त्रियों के समानाधिकार का स्मरण दिलाता है। इससे यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि प्राचीन भारतीय स्त्रियाँ, उस काल के पुरुषों की अपेक्षा, गम्भीर एव व्यापक प्रेम द्वारा कहीं अधिक अनुप्राणित रहती होंगी तथा वह किसी तरलता से दूषित भी नहीं होता होगा। फिर भी यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यम एव यमी के संवाद में जहाँ यम का अधिक ध्यान मर्यादा की ओर रहता है वहाँ पुरूरवस् और उर्वशी वाले में उर्वशी ही ऐसा करती दीख पड़ती है। पता नहीं इस प्रकार की मर्यादा-रक्षा का सम्बध केवल उस काल के भारतीय समाज के ही साथ है अथवा किसी स्वर्गीय समाज से, क्योंकि इसकी दुहाई देने वाले यम तथा उर्वशी इन दोनों के ही शब्दों से प्रकट होता है कि वे किसी अन्य लोक की ओर भी संकेत कर रहे हैं। इसके सिवाय उर्वशी को स्थायी रूप से अपनाने के लिए जिस प्रकार पुरूरवस् को अग्नि की प्रतिष्ठा करनी पड़ी, उसी प्रकार श्यावाश्व ने भी घोर तप किया है। श्यावाश्व का प्रयत्न इस बात का भी सूचक है कि किसी के प्रति अपने प्रेम की सिद्धि के लिए कहाँ तक आत्म-त्याग किया जा सकता है। प्रेम के नाते और एक प्रेमी के स्तर पर अप्सरा की योनि एव मानव-योनि में कोई अन्तर नहीं और न इसी प्रकार किसी राजकन्या एवं ऋषिकुमार में भी है। श्यावाश्व एव राजकुमारी के इस सम्बध के समानान्तर में सुषेण राजा की पुत्री सुलोचना तथा ऋषिकुमार वत्स के प्रणय वाली कथा भी दी जा सकती है जिसका वर्णन काश्मीरी पण्डित सोमदेव के प्रसिद्ध ग्रथ 'कथा सरित्सागर' में आता है[1]।

आलोचनात्मक विवेचना

पौराणिक प्रेमाख्यान

वैदिक साहित्य के अन्तर्गत पाये जाने वाले प्रेमाख्यानों का मूल स्रोत

1 'The Ocean of Story' (28-35) pt 24-7

क्या है इसका पता नहीं चलता। किन्तु इतना स्पष्ट है कि पीछे उनमें से उर्वशी एवं पुरूरवस् की प्रेम-कथा की एक परम्परा ही चल निकली। 'महाभारत' के 'वन पर्व' वाले ४६वें अध्याय मे इसका एक वर्णन आता है और इसकी चर्चा 'हरि वंश' में भी प्राय. उसी प्रकार कर दी जाती है। पुरूरवस् इधर स्पष्ट रूप में एक राजवंश के पूर्वपुरुष बन जाते है। 'विष्णु पुराण' के अनुसार वे बुद्ध एवं इडा की सन्तान हैं। इसी कारण, उन्हें कहीं-कहीं 'ऐड' अथवा 'ऐल' भी कहा गया मिलता है। 'विष्णु पुराण' से पता चलता है कि उर्वशी को मित्रावरुण ने शाप दिया था जिस कारण उसने मर्त्यलोक में रहना चाहा और यहीं पर उसने पुरूरवस् को भी देखा। इसके अनन्तर आने वाला इस कथा का अंश लगभग उसी प्रकार का है जैसा 'शतपथ ब्राह्मण' में मिलता है। प्रमुख अन्तर केवल यही है कि कुरुक्षेत्र में उर्वशी न केवल एक बार ही आती है, अपितु उसका वहाँ आना प्रत्येक वर्ष लगा रहता है और उसे पुरूरवस् से पाँच पुत्र उत्पन्न होते हैं जिनमें से प्रथम का नाम यहाँ पर 'आयुस्' दिया गया है। इसके सिवाय 'विष्णु पुराण' वाले गन्धर्व पुरूरवस् से स्पष्ट कहते हैं कि जो अग्नि तुम ले जा रहे हो उसे वेदों के विधानानुसार तीन भागों में कर देना।[1] इस प्रकार इस पुराण के अन्तर्गत 'शतपथ ब्राह्मण' वाली ही कथा को अधिक विस्तार दे दिया गया है और उसकी कई बातों का यहाँ अधिक स्पष्टीकरण भी हो गया है। वास्तव में, पौराणिक साहित्य के अन्तर्गत जितना ध्यान पुरूरवस् की वंशावली, उनके प्रताप, उनकी वीरता आदि अथवा स्वर्गलोक के जीवन एवं वेदविहित अनुष्ठानादि के महत्त्व सम्बंधी वर्णनों की ओर दिया गया मिलता है, उतना वह उनके उर्वशी के साथ प्रेम-प्रसग की ओर निर्दिष्ट नहीं है, इस बात को 'वायु पुराण'[2], 'ब्रह्मपुराण'[3] तथा 'विष्णु धर्मोत्तर'[4] जैसे ग्रन्थों में आये हुए विवरणों द्वारा भली भाँति प्रमाणित किया जा सकता है।

पुरूरवस् वाले प्रेमाख्यान का पौराणिक रूप

उर्वशी एवं पुरूरवस् के प्रेमाख्यान की दृष्टि से महाकवि कालिदास

१. 'विष्णु पुराण' (अंश ४ अध्याय ६)। श्रीमद्भागवत' (स्कन्ध ६, अध्याय १४) भी।
२. 'वायुपुराण' (अध्याय ६१)।
३. 'ब्रह्मपुराण' (अध्याय १०, १०१ व १५१)।
४. 'विष्णु धर्मोत्तर' (प्रथम खण्ड, १३०-६)।

का प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' भी उल्लेखनीय है। इसके आधारभूत कथानक का सारांश इस प्रकार दिया जा सकता है—

कालिदास का 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक

"कुछ अप्सराओं का आर्त्तनाद सुनकर तथा उससे प्रेरित होकर पुरूरवस् उनकी एक सखी उर्वशी का उद्धार किन्हीं राक्षसों के हाथ से कर देता है। उर्वशी तथा पुरूरवस् एक दूसरे को देखते ही प्रेमासक्त हो जाते हैं, किन्तु उर्वशी उस समय इन्द्र की सभा में चली जाती है और फिर पुरूरवस् के साथ उसके उद्यान में मिलती है। उर्वशी को इन्द्र-सभा में काम करना पड़ता है जहाँ, एक बार पूछे जाने पर कि तुम किससे प्रेम करती हो, वह भूल से 'पुरुषोत्तम' (विष्णु) की जगह 'पुरूरवस्' का नाम ले लेती है, जिस कारण क्रुद्ध होकर उसके शिक्षक भरत उसे शाप दे देते हैं "तुम भी स्वर्ग में आज से भुला दी जाओगी।" परन्तु इन्द्र उस पर कृपा करके उसे यह भी बतला देते हैं कि यह पुरूरवस् के साथ उस समय तक रह सकती है जब तक वह राजा इसके गर्भ से उत्पन्न अपने पुत्र को न देख ले। तब से उर्वशी एवं पुरूरवस् बहुधा हिमालय पर्वत पर घूमते-फिरते हैं, जहाँ एक दिन वह प्रेमिका उसे किसी अन्य अप्सरा की ओर दृष्टि डालते देख लेती है। उससे रुष्ट होकर वह कार्त्तिकेय के उद्यान में प्रवेश कर जाती है जहाँ पर स्त्रियों का जाना निषिद्ध है। यहाँ पर उसके विरुद्ध भरत का शाप अपना काम करने लग जाता है और वह एक लता के रूप में परिणत हो जाती है। पुरूरवस् अपनी प्रेमपात्री के विरह में उन्मत्त होकर इधर-उधर घूमने लगता है और प्राय प्रत्येक नदी, पर्वत एव प्राणी से उसका पता पूछता फिरता है। प्रत्येक स्थल पर उसे अपनी प्रियतमा का ही आभास मिला करता है और वह उसमें तन्मय रहकर भ्रमण करता है। अन्त में उसे एक ऐसा रत्न उपलब्ध हो जाता है जिसके द्वारा उसके लिए उर्वशी का फिर पा लेना सम्भव है और तदनुसार फिर एक लता के क्रमश. उर्वशी के रूप में परिवर्तित हो जाने पर, दोनों प्रेमी मिल जाते हैं। वर्षों पीछे फिर जब पुरूरवस् एक बार सयोगवश अपने पुत्र आयुस् को देख लेता है तो उर्वशी का स्वर्ग लौट जाना निश्चित हो जाता है। यहाँ पर भी केवल इन्द्र की सहायता द्वारा ही उस समय की स्थिति किसी प्रकार सँभल जाती है।" अत स्पष्ट है कि यह कथा पूर्व की जैसी नहीं है।

इसी प्रकार हमें इस प्रेमाख्यान का एक अन्य रूप सोमदेव के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कथासरित्सागर' में भी देखने को मिलता है। उसके अनुसार पुरूरवस् एक विष्णुभक्त राजा हैं जिन्हें देवों के नन्दन वन तक में घूमने का अधिकार

उस प्रेमाख्यान का कलात्मक रूप

है। एक दिन वे वहाँ उर्वशी अप्सरा को देख लेते हैं। दोनों वहाँ एक-दूसरे पर आसक्त हो जाते हैं। उर्वशी की यह दशा देखकर उसकी सखी रंभा चिन्तित हो उठती है। परन्तु विष्णु भगवान् देवर्षि नारद को बुलाकर उन्हें इन्द्र के पास भेज देते हैं जिनकी आज्ञा से वे दोनों प्रेमी एक साथ रहने लग जाते हैं। एक बार इन्द्र पुरूरवस् को दानवों के विरुद्ध लड़ने में सहायतार्थ निमंत्रित करते हैं और दानवों के अगुआ मायाधर के मारे जाने पर एक उत्सव भी मनाते हैं। उस उत्सव के उपलक्ष में अप्सराओं का नृत्य होता है जहाँ पुरूरवस् भी उपस्थित रहते हैं। उस अवसर पर किसी नाटकीय नृत्य के विषय में उनसे तथा रंभा से कुछ ऐसी बातें हो जाती हैं जिनके प्रसंग में वे उसके शिक्षक तुम्बरू ऋषि की प्रतिष्ठा के विरुद्ध कुछ कह देते हैं। वे ऋषि इन्हें शाप देते हैं कि उर्वशी एवं तुम्हारा वियोग हो जाय और तब तक रहे जब तक विष्णु प्रसन्न न हो जायँ। पुरूरवस् जब इस बात की सूचना उर्वशी को देते हैं तो वह अत्यन्त खिन्न हो जाती है और तत्क्षण कुछ गन्धर्व आकर उसे चुपके से उठा ले जाते हैं। इस पर पुरूरवस् को फिर विष्णु को प्रसन्न करने के लिए बदरिकाश्रम में जाकर तप करना पड़ता है और उर्वशी इधर पगली-सी बनी रहती है। अन्त में, विष्णु भगवान् को प्रसन्न कर लेने पर पुरूरवस् को गन्धर्वों द्वारा उर्वशी फिर पहुँचा दी जाती है और दोनों एक साथ आनन्दपूर्वक रहते हैं।

'कथासरित्सागर' की यह प्रेम कहानी भी 'शतपथ ब्राह्मण' अथवा 'विष्णु पुराण' की उपर्युक्त कथा से नहीं मिलती। इस पर विष्णु भगवान्

तुलनात्मक अध्ययन

की महत्ता और उनकी सर्वशक्तिमत्ता की पूरी छाप डाली गई है और स्वयं पुरूरवस् तक को विष्णुभक्त की पदवी दी गई है। 'कथा सरित्सागर' के रचयिता सोमदेव, सम्भवतः, शैव थे, किन्तु जान पड़ता है इस कथा का रूप उन्होंने जैसा पाया है, दे दिया है। उर्वशी और पुरूरवस् के प्रेमाख्यान के मौलिक रूप में, समय पाकर, कई भिन्न-भिन्न परिवर्तन हो गए होंगे जिनमें से एक यहाँ पाया जाता है। यह भी सम्भव है कि वैदिक सूक्त की रचना के पहले से ही इस विषय पर कोई प्रेमाख्यान प्रचलित था जिसके एक से अधिक रूप थे। उनमें से किसी एक के आधार पर उसके संवाद वाले मंत्रों की रचना की गई। उस प्रेमाख्यान के अन्य रूप अन्यत्र प्रचलित थे और उनका उपयोग 'कथासरित्सागर' के रचयिता जैसे अन्य लेखकों ने भी अपनी-अपनी

लेता है । इसी प्रकार, 'कथासरित्सागर' में स्वयंवरों का प्रबन्ध स्वयं दमयन्ती के कहने से होता है । राजा नल को मार्ग में इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम के अतिरिक्त वायु देवता भी मिलते हैं । उसके ऊपर कलि का तथा उसके भाई पुष्कर के ऊपर द्वापर का बुरा प्रभाव पड़ता है । द्यूत क्रीड़ा एक बैल के लिए की जाती है । राजा नल केवल दो हंसों पर अपना कपड़ा फेंकते हैं, नितान्त नग्न नहीं बन जाते और बौना न होकर केवल कुरूप बन जाते हैं ।[1] ये अन्तर वस्तुत गौण ही कहे जा सकते हैं और इनका मूलकथा की रूपरेखा पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता । कथावस्तु की सादगी, उसकी प्राय. सभी घटनाओं का स्वाभाविक प्रवाह, उसके नायक एव नायिका अर्थात् राजा नल एव दमयन्ती के सरल स्वभाव, निश्छल प्रेम एवं दृढ विश्वास तथा पूरी कहानी में ओतप्रोत भारतीयता के वातावरण का सफल चित्रण इन दोनों रचनाओं में एक समान उल्लेखनीय हैं । इसी कथा को अंशत. अथवा पूरे रूप में लेकर अनेक अन्य रचनाओं का भी निर्माण हुआ है । ९वीं ईस्वी शताब्दी के केरल कवि वासुदेव ने नल एवं दमयन्ती के पुनर्मिलन के अनन्तर वाली कथा को लेकर चार सर्गों के 'नलोदय' काव्य की रचना की है । इसी प्रकार १२वीं ईसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वर्तमान श्रीहर्ष कवि ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'नैषधीयम्' का भी निर्माण किया है । इसकी पूरी कथा की चर्चा, उसके २२ सर्गों में, बड़े काव्य-कौशल के साथ, कर दी है, किन्तु यहाँ भी कोई वैसा मौलिक अन्तर प्रतीत नहीं होता । इसकी अकृत्रिमता इसकी नैतिकता तथा इसके मार्मिक दृश्यों के आधार पर ही एक लेखक ने इसके मूलत वैदिकयुगीन होने का भी अनुमान किया है । उसका कहना है कि एक तो यह 'महाभारत' की मूलकथा का कोई अग नहीं है, दूसरे इसकी भाषा एव रचना-शैली भी अधिकतर वैदिक साहित्य के ही उपयुक्त जान पड़ती है और तीसरी बात यह है कि इसमें आये हुए देवता भी वैदिक ही हैं, विष्णु एव शिव-जैसे पौराणिक नहीं हैं ।[2]

पौराणिक साहित्य के अन्तर्गत एक तीसरा प्रसिद्ध प्रेमाख्यान शकुन्तला एव राजा दुष्यन्त का आता है और यह भी मूलत 'महाभारत' का ही है ।

दुष्यन्त और शकुन्तला

इसकी कथा साधारणत 'शकुन्तलोपाख्यान' कहलाती है । यह 'महाभारत' के 'आदि पर्व' वाले ८८वें से लेकर ९४वें अध्यायों तक जाती है । इसका प्रायः वही रूप 'श्रीमद्भागवत' के नवें स्कन्ध में भी

---

१ 'The Ocean of Story' pp 237-50

२. ibid, p 275

मिलता है और यह उसके बीसवें अध्याय में ही समाप्त भी हो जाता है। 'श्रीमद्भागवत' के अनुसार राजा दुष्यन्त मृगयार्थ वन में जाते हैं और वे वहाँ कण्व ऋषि के आश्रम पर भी जा पहुँचते हैं। उनके साथ अन्य भटादि भी रहते हैं। राजा वहाँ शकुन्तला को देखकर उसके प्रेम में पड जाते हैं और उससे पूछने लगते हैं कि तुम कौन हो और इस निर्जन वन में क्या करती हो। शकुन्तला इसके उत्तर में उन्हें बतलाती है कि 'मैं विश्वामित्र की कन्या हूँ और मेरी माँ मेनका ने मुझे वन में छोड दिया था, जो कण्व ऋषि को विदित है। कहिए मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? बैठिए, आतिथ्य ग्रहण कीजिए और विश्राम कीजिए और यदि रुचे तो नीवार का भोजन भी कीजिए'। किन्तु राजा ने उससे कहा कि कुशिकों के वंश की कन्याएँ तो स्वयं अपने लिए उपयुक्त वर पसन्द कर लेती हैं। उन्होंने उसके साथ गांधर्व विवाह कर लिया तथा वे दूसरे दिन अपने घर लौट गए। शकुन्तला को उनसे गर्भ रह गया जिससे एक राजकुमार उत्पन्न हुआ और वह उसे लेकर उनके पास गयी। किन्तु राजा ने माता एवं पुत्र दोनों में से किसी को स्वीकार नहीं किया। तब वहाँ सभी को सुनाती हुई आकाशवाणी हुई कि "हे दुष्यन्त, यह तुम्हारा पुत्र है तुम इसे स्वीकार करो" और पीछे वही बालक चक्रवर्ती भरत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यही 'भागवत' वाली कथा का सारांश है, किन्तु 'महाभारत' वाली लम्बी कथा से यह वस्तुत. बहुत भिन्न है। इसमें शकुन्तला एवं दुष्यन्त के बीच वाले प्रेम-प्रसंग की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है, अपितु पौराणिक प्रथानुसार वंशावली वर्णन के फेर में उसे चलता कर दिया गया है। यहाँ सारी प्रेमाभिव्यक्ति केवल दुष्यन्त की ही ओर से की गई कही जा सकती है और वह भी कोरी व्यावहारिक दृष्टि से ही। यहाँ पर दुष्यन्त द्वारा व्यक्त शकुन्तला तथा उसके पुत्र की उनकी ओर से पुनः स्वीकृति भी केवल आकाशवाणी के आदेश-मात्र से ही हो गई जान पडती है।

परन्तु इस छोटे से ही कथानक के आधार पर महाकवि कालिदास ने अपने परम प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की रचना कर डाली है। इस

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'

रचना का उद्देश्य केवल वंशावली का वर्णन-मात्र ही नहीं, प्रत्युत प्रधानतः मानवीय हृदय के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन भी है। इसके कवि ने अपने रचना-नैपुण्य द्वारा इसके प्रमुख पात्रों की सजीव सृष्टि कर दी है। इस कारण इसकी कथावस्तु का रूप-आदर्श प्रेमाख्यान का-सा बन गया है। इस नाटक की कथा के अनुसार दुष्यन्त कण्व के आश्रम में अकेले

पहुँचते हैं और शकुन्तला को पेड़ों की आड़ मे ही देखकर प्रभावित हो जाते हैं। ये राजपुरुष हैं और इन्हें अपनी मर्यादा का ध्यान है, किन्तु एक प्रेमी होने के नाते इन्हें कुछ असाधारण व्यवहार करना ही पड़ जाता है। उधर एक ऋषि के निर्जन आश्रम में पाली गई शकुन्तला का भी मानवीय हृदय अपने-आप तरंगित हो उठता है और वह एक नितान्त अपरिचित स्थिति में पड़ जाती है। कवि कालिदास का यहाँ पर उसकी दो सखियों—प्रियवदा एव अनुसूया—की सृष्टि कर प्रेमभाव के समुचित विकास के लिए अवसर उपस्थित कर देना और इस प्रकार, उसके वृत्त को बड़ी सावधानी के साथ दृढ़मूल होने देना उनकी गहरी सूझ का परिणाम है। शकुन्तला को आश्रम में छोड़कर दुष्यन्त अपनी राजधानी चले जाते हैं और वहाँ पर यहाँ की घटना को वे भूल भी जाते हैं। शकुन्तला तब तक यहाँ उनके विरह में बेचैन रहती है। उसे सुदृढ़ विश्वास है कि जब तक उसके प्रियतम की अगूठी उसके पास है तथा उसे उसका गर्भ है वह उससे दूर होती हुई भी उसी की है। उस व्यवहार-शून्य भोली वनवासिनी को इस बात का स्वप्न भी नहीं कि कभी इसके विपरीत घटनाएँ भी घट सकती हैं। परन्तु प्रेम के लीला-क्षेत्र में अनहोनी का हो जाना भी कभी असभव नहीं रहता और उसे अपने प्रत्याख्यान तक का दिन देखने को मिल जाता है। कण्व द्वारा उनके शिष्यों के साथ भेजी जाने पर भी वह राज-दरबार में अस्वीकृत कर दी जाती है। जब उसकी खोई हुई अंगूठी को दुष्यन्त देखते हैं और उन्हें सभी बीती बातें स्मरण हो आती हैं तो वे स्वभावत अधीर बन जाते हैं और फिर कुछ दिनों के मनस्ताप की पीड़ा सहकर ही वे उसे देख पाते हैं।

कवि कालिदास ने अपनी इस अनुपम रचना में जिन नवीन बातों का समावेश किया है, वे सभी उपयुक्त हैं। वे प्रेमभाव, विरह-यातना, पश्चात्ताप, आदि को उनके मूल स्रोतों से उभाड़ने का काम करती हैं तथा उन्हें घनीभूत कर देने में भी सहायक होती हैं। दुष्यन्त शकुन्तला को वन में छोड़कर जाते समय उसे अपने स्मारक रूप में एक अगूठी दे जाते हैं जिस पर उनका नाम भी खुदा रहता है और उसे वह सदा धारण करती है। किन्तु उसकी अपने प्रियतम के प्रति तन्मयता उसे बेसुध किये रहती है। वह सयोगवश उस अगूठी को भूल से खो देती है। उस अगूठी के उसकी अगुली पर न रहने के ही कारण अपने प्रेमी के भी यहाँ उसकी कोई पूछ नहीं हो पाती। इस नाटक में अगूठी की चर्चा देखकर हमें बौद्धों के 'कट्टहारि जातक'

इस प्रेमाख्यान की एक विशेषता

का भी स्मरण हो आता है। जिसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—"वाराणसी का राजा ब्रह्मदत्त अपने उद्यान में गया और वहाँ पर किसी गा-गाकर लकड़ी चुनती हुई स्त्री को देख कर उस पर आसक्त हो गया। उसने उसके साथ सहवास भी किया और उसे अपना गर्भ रहा जानकर, उसे एक अंगूठी दे दी कि यदि लड़की उत्पन्न हो तो वह उस चिह्न को फेंक देगी, किन्तु यदि लड़का होगा तो वह उसे उसके पास राजदरबार में उपस्थित करेगी। किन्तु लड़का होने पर भी जब वह उसे लेकर अंगूठी के साथ राजदरबार में पहुँची तो उस राजा ने लज्जावश अंगूठी अथवा पुत्र किसी को भी स्वीकार नहीं किया और इसके लिए 'क्रिया' करनी पड़ी।[१] शकुन्तला वाली कथा से इसमें कुछ अन्तर अवश्य है किन्तु इसमें कुछ असम्भव नहीं कि कवि को, कदाचित् इस 'जातक' से भी कुछ प्रेरणा मिली हो।

उषा एवं अनिरुद्ध का पौराणिक प्रेमाख्यान

पौराणिक साहित्य के प्रेमाख्यानों में उषा एवं अनिरुद्ध की प्रेमकथा भी बहुत प्रसिद्ध है। यह सबसे अधिक विस्तार के साथ 'हरिवंश पुराण' में आई जान पड़ती है क्योंकि उसमें इसकी शृंखला १६४वें अध्याय से १७७वें अध्याय तक चली जाती है। यह 'ब्रह्मवैवर्त पुराण'[२], 'विष्णु पुराण'[३], 'शिव पुराण'[४], 'ब्रह्मपुराण[५]', 'अग्निपुराण[६]' तथा 'श्रीमद्भागवत पुराण[७]' में भी लगभग उसी रूप में दी गई मिलती है। 'श्रीमद्भागवत' के अनुसार बाणासुर, बलि राजा के सौ पुत्रों में, सबसे बड़ा था और शिवभक्त था तथा वह शोणितपुर में राज्य भी करता था। वह अपनी सहस्र भुजाओं के कारण बड़े घमण्ड में रहा करता था जिस कारण एक बार शिव ने उसे कह दिया कि ध्वज टूटेगा तब दर्प चूर्ण होगा। बाणासुर की एक लड़की थी जिसका नाम उषा था और उसने एक दिन स्वप्न में अनिरुद्ध को अपने साथ रमण करते देखा। किन्तु उन्हें वह पहचान न सकी और प्रातःकाल पगली-सी होकर बकने लगी जिस पर उसकी सखी चित्रलेखा

१. 'जातक कथा' (प्रथम खण्ड, पृ० १७३-६) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
२. 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' (अ० ११४-२०)।
३. 'विष्णुपुराण' (अ० ५, अ० ३२-३)।
४. 'शिवपुराण' (ख० ५, अ० ५१-४)।
५. 'ब्रह्मपुराण' (अ० २०५-६)।
६. 'अग्निपुराण' (अ० १२)।
७. 'श्रीमद्भागवत' (स्कं० १० अ० ६२-३)।

ने उसे सान्त्वना दी। उषा के सामने उसने विश्व के सभी सुन्दर युवकों के चित्र बनाकर दिखलाये जिनमें से अनिरुद्ध के चित्र को उसने देखते ही पहचान लिया और उनका पूरा परिचय भी पा लिया। उषा के फिर विशेष आग्रह करने पर चित्रलेखा अनिरुद्ध को, उनके सोते समय उठा लाई और उन्हें उसके समक्ष रख दिया। तब से अनिरुद्ध बराबर उषा के अन्त पुर में ही रहने लगे जिसका समाचार बाणासुर को मिल गया और वह उन्हें मार डालने पर उद्यत हुआ। किन्तु इसी बीच में इस बात की सूचना श्रीकृष्ण तक पहुँच गई और वे बाणासुर के साथ युद्ध करने सपरिवार चल पड़े। उधर शिव भी बाणासुर की ओर से चले। शोणितपुर में दोनों दलों के बीच घनघोर युद्ध हुआ जिसमें श्रीकृष्ण का दल विजयी हुआ और वे उषा के साथ अनिरुद्ध को लेकर वापस आये।

उसकी विशेषता

उषा एव अनिरुद्ध के इस प्रेमाख्यान में सबसे उल्लेखनीय बात, स्वप्नदर्शन द्वारा प्रेमभाव के उत्पन्न होने तथा तदुपरात उसके फिर चित्र-दर्शन द्वारा पुष्टि पाकर विकसित होने में, देखी जा सकती है। इसके उदाहरण हमें अभारतीय प्रेमाख्यानों में भी मिलते हैं। उषा एव अनिरुद्ध की प्रेम कथा सोमदेव के 'कथासरित्सागर' में भी आई है[1] और वह भी इस 'भागवत' वाली कथा से बहुत मिलती है। अन्तर केवल यही है कि यहाँ उषा गौरी की आराधना करके उनसे वर पाती है कि जिस किसी के साथ वह अपने स्वप्न में रमण करती दीख पड़ेगी वही उसका पति होगा। बाणासुर के सम्बध में, इस कथा के अन्तर्गत, केवल इतना ही आया है कि वह अनिरुद्ध के प्रति उषा के प्रेम की सूचना पाकर क्रुद्ध हो जाता है, किन्तु अनिरुद्ध उसे स्वय तथा अपने पितामह कृष्ण की सहायता से भी हरा देते हैं। इस कथा में शिव के किसी युद्ध की चर्चा नहीं की जाती जिसका कारण कदाचित् यही हो सकता है कि शैव सोमदेव को अपने इष्टदेव का लड़ना एव विजित भी हो जाना अच्छा न लगा होगा। एक दूसरी भी विशेषता जो इस प्रेमाख्यान में लक्षित होती है वह प्रेमलीला के प्रसग में प्रेमपात्री के लिए युद्ध ठान देना तथा उसका उसके पिता के घर से बलात्कारपूर्वक हरण कर लाना भी है जो पौराणिक साहित्य के अन्तर्गत प्रधानतः श्रीकृष्ण और उनके परिवार में ही दीख पड़ता है। स्वय श्रीकृष्ण के ही रुक्मिणी-हरण का वृत्तान्त बहुत प्रसिद्ध है जो 'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कंध वाले ५२वें से ५४वें अध्यायों तक

१ 'कथा सरित्सागर' (The Ocean of Story, chapter 31-40)

आया है। विदर्भ नगर के राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, पराक्रम आदि गुणों की प्रशंसा सुनकर उन्हें पतिरूप में अपनाना चाहती है जिसकी सूचना पाकर उसका भाई रुक्मी, इसके विपरीत उसे शिशुपाल को देने का विचार करता है। रुक्मिणी इस बात का पता श्रीकृष्ण को दे देती है। वे उसके प्रति पहले से भी अनुरक्त रहने के कारण उसका पाणिग्रहण करने की स्वीकृति भेज देते हैं। इधर शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करने की तैयारियाँ होती हैं और उधर से श्रीकृष्ण अपने रथ पर सजधजकर आते हैं। रुक्मिणी का हरण करते समय श्रीकृष्ण के विरुद्ध शिशुपाल तथा उसके दल वाले घोर युद्ध करते हैं किन्तु वे हार जाते हैं और श्रीकृष्ण उसे द्वारका लाकर उससे विवाह कर लेते हैं।

श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी

श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण उस समय करते हैं जब वह पहले से निश्चित योजना के अनुसार देव-दर्शन के लिए गई रहती है। फिर भी उनके विवाह को 'राक्षस विवाह' का ही नाम दिया गया है जो दुष्यन्त एवं शकुन्तला वाले 'गांधर्व विवाह' से भिन्न है। इसे उषा एवं अनिरुद्ध के विवाह से भी किंचित् भिन्न ठहरा सकते हैं क्योंकि वहाँ भी दोनों प्रेमियों का सम्बंध पहले से ही स्थापित हो गया रहता है। श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी इसके प्रेमाख्यान की कथा 'विष्णुपुराण'[1] में भी आई है जहाँ पर इसका विवरण कुछ सक्षिप्त कर दिया गया है। परन्तु वहाँ पर उक्त प्रकार के राक्षस विवाह का उल्लेख स्पष्ट शब्दों में कर दिया गया है। 'हरिवंश पुराण' में भी यह कथा आई है।[2] किन्तु वहाँ पर दोनों प्रेमियों के गुणाश्रवण द्वारा प्रेमासक्त हो जाने पर भी, श्रीकृष्ण और बलराम रुक्मिणी के यहाँ, उसका शिशुपाल के साथ विवाह देखने जाते हैं और उसके पूर्व ही, रुक्मिणी को देव-मन्दिर के निकट पाकर, श्रीकृष्ण उसका हरण कर लेते हैं। इस प्रेमकथा का वर्णन बहुत से मध्यकालीन लेखकों ने भी किया है और उन्होंने इसे अपने काव्य-कौशल द्वारा सजाया है। इस सम्बंध में राठौर-नरेश प्रिथीराज द्वारा रची गई 'वेलि क्रिसन रुकमणीरी' का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसमें 'श्रीमद्भागवत' के कोरे आख्यानमात्र को काव्यात्मक रूप भी मिल गया है। इसके सिवाय इस विषय पर लिखने वाले अनेक लेखकों और कवियों ने 'रुक्मिणी हरण' का नाम 'रुक्मिणी स्वयंवर' भी कर दिया

१. 'विष्णु पुराण' (अ० अ० २६-८)।
२. 'हरिवंश पुराण' (अ० ५६-६०)।

है। ऐसे नामकरण वाली रचनाओं में महानुभाव पंथी नरेन्द्र कवि की मराठी कृति 'रुक्मिणी स्वयंवर' का नाम लिया जा सकता है जिसे महानुभाव पंथ के प्रसिद्ध साम्प्रदायिक 'साती ग्रन्थों' में भी एक उच्च स्थान दिया जाता है।

श्रीकृष्ण की उक्त पत्नी रुक्मिणी के ही गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म होता है जिन्हें शिशु के रूप में शम्बर नामक राक्षस चुरा ले भागता है।

प्रद्युम्न और मायावती

वह उन्हें जल में फेंक देता है जहाँ वे एक मछली के पेट में भी चले जाते हैं और उस मछली को मछुए पकड़कर शम्बर की भेंट में देते हैं। जब वह मछली रसोइए द्वारा पकाने के लिए चीरी जाती है तो उसके पेट से एक सुन्दर बालक निकलता है जिसे शम्बर की पत्नी मायावती पालने लगती है। फिर वही मायावती समय पाकर तथा नारद के मुख से संकेत भी पा चुकने के कारण, उस बालक को अपने पति के रूप में भी देखने लगती है और वह उसी की प्रेरणा से शम्बर को युद्ध में मारकर उसे अपने माता-पिता कृष्ण एवं रुक्मिणी के यहाँ लाता है और उससे विवाह करता है। मायावती एवं प्रद्युम्न की यह कथा 'श्रीमद्भागवत पुराण' के दशम स्कन्ध वाले ५५वें अध्याय में इसी रूप में आती है। इसी को फिर 'हरिवंश पुराण' के १६३वें अध्याय से लेकर उसके १६७वें अध्याय तक में भी स्थान मिला है। 'श्रीमद्भागवत' में बतलाया गया है कि मायावती वस्तुतः पूर्वजन्म में रति थी और प्रद्युम्न कामदेव थे। इसी कारण, मायावती उन्हें उनकी शैशवदशा से ही पतिवत् मानती है। फिर प्रद्युम्न के सम्बंध में ही एक दूसरी कथा, वज्रनाभ राक्षस की पुत्री प्रभावती के साथ, उनके प्रेम-भाव की चर्चा करती दीख पड़ती है यह कथा भी 'हरिवंश पुराण' के १४१वें अध्याय से लेकर उसके १४४वें तक आती है और इसमें प्रेमी एवं प्रेमिका के बीच हंस पक्षी सन्देशवाहक बनता है। प्रद्युम्न वज्रनाभ के दरबार में एक अभिनेता के रूप में उपस्थित होते हैं। उनके साथ और भी कुछ लोग रहते हैं। प्रद्युम्नादि के अभिनय द्वारा राक्षस लोग बहुत प्रसन्न होते हैं और ये प्रद्युम्न किसी प्रकार अपनी प्रेमपात्री तक पहुँच कर उसके साथ आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करते हैं। वज्रनाभ को जब इसका पता चलता है तो वह इन्हें बन्दी कर लेना चाहता है, किन्तु ये उसे मार डालते हैं और प्रभावती को अपने घर लाते हैं।

'महाभारत' की एक कथा के अनुसार स्वयं श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा का हरण अर्जुन द्वारा सम्पन्न किया जाता है और वे इसकी स्वीकृति भी दे

अर्जुन और सुभद्रा देते हैं। 'महाभारत' के अनुसार जब अर्जुन अपने प्रवास में रहते हैं वे द्वारका में श्रीकृष्ण के अतिथि बन जाते हैं। जब वहाँ के अन्धक एवं वृष्णि वंश वाले रैवतक पर्वत पर उत्सव मनाते रहते हैं वे श्रीकृष्ण की सगी बहन सुभद्रा के सौन्दर्य पर आसक्त हो जाते हैं। श्रीकृष्ण को जब इस बात का पता चलता है तो वे उन्हे उसे हर ले जाने का परामर्श दे देते हैं। फलत. जब सुभद्रा रैवतक का पूजन करके लौट रही होती है वे उसे उठाकर अपने रथ पर बिठा लेते हैं और अपने नगर की ओर चल देते हैं। फिर परिवार वालों के खुले विरोध पर भी कुछ नहीं हो पाता।[1] 'श्रीमद्भागवत' में यही कथा इस रूप में आती है—'अर्जुन जब प्रभास क्षेत्र में रहते हैं उन्हे पता चलता है कि सुभद्रा को बलराम दुर्योधन के लिए चाहते हैं। इस कारण वे त्रिदण्डी यती बनकर द्वारका जाते हैं और वहाँ कुछ महीने ठहर जाते हैं। एक दिन आतिथ्य के लिए निमन्त्रित होने पर जब वे भोजन करते रहते हैं उनकी सुभद्रा के साथ चार आँखें हो जाती है। तदनुसार जब वह देवयात्रा के अवसर पर दुर्ग के बाहर आती है वे उसे श्रीकृष्ण की अनुमति से ले भागते हैं।[2] अर्जुन और उर्वशी के प्रेम की एक कथा 'वनपर्व' के ४६वें अध्याय में आती है जिसमें उर्वशी उन्हे देखकर कामासक्त हो जाती है और उन्हें राजी न होने पर, नपुंसक नर्तक बन जाने का शाप भी दे देती है।[3] इसी प्रकार अर्जुन को ही एक बार उलूपी नाम की एक नागकन्या गंगा में स्नान करते समय खींचकर नागलोक में ले जाती है। वहाँ उन पर अपना प्रेम प्रकट करती है। किन्तु अर्जुन उससे कहते हैं कि मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया है, इसलिए सहवास नहीं कर सकता। फिर भी जब वह आग्रह करती है और उनसे बतलाती है कि यदि मेरा प्रस्ताव स्वीकार न करोगे तो मैं अपने प्राण दे दूँगी तो वे 'कर्त्तव्य की दृष्टि से' उसके साथ एक रात व्यतीत करते हैं।

'महाभारत' इस प्रकार के अनेक प्रेमाख्यानों का एक बृहत्कोश है और ऐसी कथाओं में श्रीकृष्ण के वंश वाले अथवा पांडव ही अधिक भाग लेते दीख पड़ते हैं।

भीम और हिडिम्बा अर्जुन के भाई भीम को देखकर तो एक बार, वन में, किसी हिडिम्ब राक्षस की बहन हिडिम्बा ही अनुरक्त हो जाती है। वह अपने भाई

१. 'महाभारत' (आदि पर्व २२४ अ०)।
२. श्रीमद्भागवत (स्कं० १० अ० ८६)।
३. 'महाभारत' (वन पर्व) ४५-६ अ०।

का कहना नहीं मानती प्रत्युत्, उसके स्वार्थ के विपरीत भी, भीम से प्रस्ताव करती है कि मुझे अपना लो। भीम और हिडिम्ब के बीच फिर द्वन्द्व युद्ध भी होता है जिसमें भीम विजयी होते हैं और हिडिम्बा भीम की पत्नी बन जाती है[1]। इसके पहले उन दोनों में केवल यही अनुबन्ध होता है कि हिडिम्बा उनसे केवल दिन में ही भोगविलास करे और किसी पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर उन्हें छोड़ दे जिसे वह सहर्ष स्वीकार कर लेती है।[2] इस प्रकार प्रेम का भाव जहाँ तक मनुष्य के प्रति किसी अप्सरा के हृदय में जागृत होता है। वहाँ वह किसी राक्षसी में भी प्रकट होता दीख पड़ता है। 'महाभारत' में कहा गया है कि हिडिम्बा भीम को रिझाने के लिए पहले मानवीय रूप धारण करके ही आती है जैसे शूर्पणखा राम के पास गई थी। परन्तु उसके राक्षसी होने में फिर कोई सन्देह नहीं रह जाता और भीम को उसे पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेने में कोई संकोच भी नहीं होता। शान्तनु तो गंगा नदी के ही स्त्रीरूप को पत्नीवत् अपना लेते हैं और दोनों से भीष्म की उत्पत्ति होती है। यही शातनु एक बार फिर मछुए की कन्या सत्यवती को भी स्वीकार करते हैं, जिस कारण उनके पुत्र भीष्म को अपने अधिकारों से वंचित हो जाना पड़ता है। सत्यवती भी वही है जिस पर कभी महर्षि पाराशर अनुरक्त हो चुके थे और जिसके गर्भ से महर्षि व्यास उत्पन्न हुए थे। ऋषियों के प्रेमभाव की गम्भीरता का पता भी रुरु एवं प्रमद्वरा के आख्यान से चलता है जहाँ, रुरु विवाह सम्पन्न होने के पहले, उनकी प्रेमपात्री प्रमद्वरा सर्पदंश के कारण मर जाती है और जहाँ उसे पुनरुज्जीवित करने के लिए उन्हें आकाशवाणी के प्रस्ताव पर, अपनी आधी आयु का काल उसे अर्पित कर देना पड़ता है।

'महाभारत' और पुराणों के अन्तर्गत प्रेमाख्यानों का रूप अनेक प्रकार का दीख पड़ता है और उनकी संख्या भी बहुत बड़ी है। वैदिक

पौराणिक प्रेमाख्यानों की विशेषता

साहित्य में हमें उतने उदाहरण उपलब्ध नहीं होते और जो मिलते हैं वे भी अधिकतर अस्पष्ट और अधूरे ही प्रतीत होते हैं। वैदिक मंत्रों के बहुत से भाष्यकारों ने तो उनके विविध प्रतीकात्मक अर्थ भी लगाए हैं और इस प्रकार उनकी प्रेमकहानी को उन्होंने एक मायवीय-सा रूप प्रदान कर दिया है। किन्तु, पौराणिक साहित्य का भी अध्ययन करने पर, ऐसा लगता है कि वे लोग वस्तुतः क्लिष्टकल्पना के ही फेर में

---

१ महाभारत, (आदिपर्व) २१७ अ०।
२ वही, (वनपर्व) १५५-८ अ०।

पड़ गए हैं। प्रेमाख्यानों की रचना सदा या तो वास्तविक घटनाओं का आधार लेकर होती आई है अथवा वह किसी-न-किसी प्राचीन परम्परा का परिणाम रही है। ये परम्परागत मौखिक साहित्य के अंग बने रहते आये हैं और इनके किसी-न-किसी मौलिक रूप के भी सत्य होने में किसी ने कभी अविश्वास नहीं किया। पौराणिक साहित्य की रचना के समय जब इनका अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट रूप निखरने लग जाता है और इनकी संख्या भी बढ़ती चली जाती है। उस दशा में इनका रूपरंग भी, स्वभावतः, अनेक प्रकार का हो जाता है और ये अपने समकालीन समाज का न्यूनाधिक परिचय तक देने लगते हैं। इस युग के प्रेमाख्यानों में प्रेमभाव की जागृति केवल प्रत्यक्ष दर्शन पर ही अवलंबित नहीं रहती। यहाँ कभी-कभी स्वप्न-दर्शन एवं चित्र-दर्शन जैसे साधनों की भी सहायता ली जाने लगती है तथा गुणश्रवण कराने का माध्यम हंस जैसे पक्षियों को भी बनाया जाने लगता है। इसमें सन्देह नहीं कि पौराणिक साहित्य के प्रेमाख्यानों मे अधिकतर कामवासना ही काम करती दीखती है, किंतु, 'नलोपाख्यान' जैसे उदाहरणों में कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि यह उतनी स्पष्ट नहीं रहा करती। उसकी जगह शुद्ध दाम्पत्य-सम्बंध की उपलब्धि भी काम करने लग जाती है। इसका एक परिणाम इस बात में भी लक्षित होता है कि प्रेमी अपनी प्रेमपात्री को पत्नीवत् अपनाने के लिए उसका हरण तक करने लगता है।

स्वयंवर तथा सुन्दरीहरण, ये दो ऐसे साधन हैं जिनसे पौराणिक युग में बहुत काम लिया गया है। इनमें से प्रथम का प्रयोग अधिकतर उच्चवर्ग के लोगों में ही हुआ है, किन्तु दूसरे के द्वारा निम्न कोटि के प्रेमियों ने भी अपना स्वार्थ साधन किया है। पौराणिक साहित्य के प्रेमाख्यानों द्वारा यह बात आगे भी अधिक स्पष्ट हो जाती है कि प्रेम का सम्बंध स्थापित करने के लिए प्रेमी एवं प्रेमपात्र का समानस्तरीय होना अनिवार्य नहीं और न यही आवश्यक है कि वह पुरुष की ओर से प्रस्तावित होता है अथवा स्त्री की ओर से। यह अवश्य माना जा सकता है कि जब तक दोनों पक्षों के हृदयों में प्रेमभाव की जागृति न हो तब तक उसे प्रेम-सम्बंध न कहकर काम-वासनात्मक सम्बंध ही समझना उचित होगा। फिर भी, यदि वह, (यमी वाले उदाहरण की भाँति) केवल एक भी हृदय में अपने निश्छल और सरल रूप में, जागृत हुआ हो तो, उसे परिणाम की दृष्टि से, विफल हो जाने पर भी, पूरा महत्त्व दिया जा सकता है तथा उसे कोरा वासनात्मक ही नहीं

कहा जा सकता। पौराणिक साहित्य वाले प्रेमाख्यानों में विरह-यातना के भी अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। वे प्राय स्वाभाविक दशा का ही परिचय देते हैं। यहाँ विरह की बेचैनी अधिकतर प्रेमिकाओं में ही प्रदर्शित की गई है और उसका कारण भी तत्कालीन सामाजिक बन्धनों की दृढ़ता में ढूँढ़ा जा सकता है। प्रेमिका कन्याओं को अपने पिता-माता जैसे गुरुजनों की इच्छा तथा उसी प्रकार अपने वश-विशिष्ट की मर्यादा की गुरुता के कारण विवश हो जाना पड़ता रहा है। वे इसी कारण, कभी-कभी पत्रवाहकों द्वारा गुप्त पत्र भेजा करती हैं तथा विविध युक्तियों का भी सहारा लेती हैं। ये प्रेमिकाएँ विवाह-विधि के उपरान्त अपने पातिव्रत धर्म का भी पालन करती दीख पड़ती है। इनका त्याग प्रेमी पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक उदाहृत हुआ है पौराणिक प्रेमाख्यानों के पीछे काव्यात्मक रूप ग्रहण कर लेने पर, विरह की पीड़ा प्राय प्रेमी पुरुषों में भी दिखलाई जाने लगी है।

बौद्ध एवं जैन प्रेमाख्यान

पौराणिक साहित्य के प्रेमाख्यान बड़ी-बड़ी रचनाओं के अन्तर्गत केवल प्रसंगवश ही आ गए हैं और उनका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है। वे 'महाभारत' अथवा विविध पुराणों की कथाओं के अङ्ग-से बन गए हैं जिस कारण उन्हें प्राय. समुचित महत्त्व नहीं दिया जाता। परन्तु सम्भवतः पौराणिक साहित्य की रचना के युग में ही उधर एक अन्य प्रकार के साहित्य का भी निर्माण होता जा रहा था जिनके विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता' और जो, इसी कारण, बहुधा कथा-साहित्य के नाम से उनसे पृथक् गिना जाता है। यह साहित्य बौद्ध जातकों, जैन धर्म-कथाओं तथा गुणाढ्य, क्षेमेन्द्र, सोमदेव जैसे कई कथाभिज्ञों की विविध रचनाओं के संग्रहों में उपलब्ध है। इनमें किसी-न-किसी बोधिसत्व, तीर्थंकर अथवा पौराणिक व्यक्तियों के प्रसंग आए हैं किन्तु इनमें वैसी प्रेम-कहानियों की भी कमी नहीं जो या तो पूर्वागत लोक-गाथाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं अथवा जिनके निर्माण में अधिकतर कल्पना से ही काम लिया गया है। इस प्रकार के कथा-साहित्य में भी हमें प्रेमाख्यानों का केवल कोई एक ही रूप नहीं मिलता। किंतु, फिर भी, इनमें कुछ अपनी विशेषताएँ भी रहती हैं। पौराणिक साहित्य की प्रेम-कहानियों में वैदिक परम्परा की अक्षुण्ण धारा प्रवाहित होती प्रतीत होती है। इनमें प्राय' सर्वदा या तो यज्ञादि के अनुष्ठान, या देवभक्ति या धर्मशास्त्रीय आचरण-सम्बन्धी बातों का पुट दिया गया मिलता है और प्रासगिक मात्र होने से उनका निश्चित् उद्देश्य भी रहा करता है। परन्तु उक्त कथा-साहित्य की ऐसी कहानियों के विषय में हम इस प्रकार का परिणाम नहीं निकाल सकते। इसके सिवाय इस कथा-साहित्य की रचनाओं में जो लोक-सुलभ सरलता और स्वाभाविकता उपलब्ध है वह अन्यत्र दुर्लभ-सी जान पड़ती है।

प्रेमाख्यानों के अन्य रूप

बौद्ध जातकों के संग्रहों में प्रेमाख्यान कहे जाने योग्य कथाओं की सख्या अधिक नहीं है। इनमें से भी 'कट्ठहारि जातक' वाली कथा की चर्चा इसके पहले की जा चुकी है और बतलाया जा चुका कि किस प्रकार वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त ने अपनी प्रेमपात्री को नहीं पहचानना चाहा और न उसके गर्भ से उत्पन्न बालक वा स्वयं अपनी दी हुई अंगूठी को ही स्वीकार किया। उस 'जातक' में कहा गया है कि जब उस राजा के दुर्व्यवहार के कारण उस स्त्री को दुख का अधिक अनुभव हुआ तो उसने झुँझलाकर उक्त बालक का पैर पकड़ उसे ऊपर फेंक दिया जहाँ वह बच्चा पलथी मारकर बैठ गया और उसने राजा को एक पद्य कह सुनाया। उसके इस कथन का यह प्रभाव पड़ा कि राजा ने अपने हाथ ऊपर की ओर फैलाकर उसे बुला लिया और वही बालक फिर उसका उत्तराधिकारी भी हुआ। जातक के रचयिता ने उस बालक को ही बोधिसत्व भी कहा है और उसे 'राजा काष्ठवाहन' का नया नाम दिया है। इस प्रकार इसकी रचना का उद्देश्य केवल यही नहीं जान पड़ता कि अमुक कथा कह दी जाय, प्रत्युत् यह भी स्पष्ट है कि इसके द्वारा बोधिसत्व के पूर्वजन्म का वृत्तात बतलाया जाता है। इसके साथ ही इस कथा के आधार पर सर्वसाधारण को नैतिक शिक्षा प्रदान करने की भी चेष्टा की जाती है। इसकी प्रेमकथा में केवल इतना ही उल्लेखनीय है कि किस प्रकार कोई व्यक्ति वाराणसी का राजा होकर भी एक साधारण कोटि की लकड़हारिन के प्रेम में पड़ जाता है। प्रेम अथवा तज्जन्य कामवासना के आवेश में उसे पहले उचितानुचित की पहचान नहीं रहती और वह उसके साथ सहवास करके उसे अपनी अँगूठी तक प्रदान कर देता है। किन्तु जब उसका पूर्वप्रभाव धीमा पड़ता है तो उसे अपने पहले किये पर लज्जा का अनुभव भी होने लगता है।

जातकीय प्रेमाख्यान : 'कट्ठहारिजातक'

इसी प्रकार 'मणिचोर जातक'[1] की कथा में कहा गया है कि बोधिसत्व की पत्नी सुजाता उसे अपने पिता के घर ले चलना चाहती है और तदनुसार वे दोनों पतिपत्नी खाद्यान्न आदि को बैलगाड़ी पर लाद कर उधर चल देते हैं। मार्ग में वाराणसी का राजा उन्हें अपने हाथी पर से ही देखता है और गाड़ी के साथ पीछे-पीछे चल रही सुजाता के सौन्दर्य पर मोहित हो जाता है। वह उसे अपनाने की युक्ति सोचकर उनकी

मणिचोर जातक

१ जातक कथा (द्वितीय खंड) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पृ० २८५-८।

गाड़ी में एक मणि फेंक देता है तथा उसकी चोरी का अपराध लगाकर उसके पति को पकड़वा लेता है। उसके आदमी उसे पीटते हुए लाते हैं और उसकी आज्ञा से उसका सिर काटने के लिए उसे सुला देते हैं। तब सुजाता रोने-पीटने लग जाती है। सुजाता के रोकर यह कहने पर कि जान पड़ता है इस समय कोई देवता भी नहीं है जो सहायता करे, स्वयं देवेन्द्र वहाँ पहुँच जाते हैं। वह बोधिसत्व की जगह उस राजा को ही लिटाकर उसका सिर कटवा देते हैं तथा वहाँ पर उपस्थित जनता को धर्मोपदेश भी देते हैं। इस कथा में वाराणसी के राजा के न केवल प्रेमासक्त होने की बात कही गई है, अपितु उसकी प्राप्ति के लिए उसज घृणित प्रयत्न करने की भी चर्चा की गई है। किन्तु इसके साथ ही कहानी के द्वारा यह भी प्रदर्शित कर दिया गया है कि किसी निरपराधी की सती-साध्वी पत्नी की प्रार्थना का क्या प्रभाव पड़ सकता है और किस प्रकार देवेन्द्र तक उसकी सहायता कर सकते हैं। अतएव, प्रेमवाला प्रसंग यहाँ पर भी गौण बन गया दीख पड़ता है और इसका उपदेश वाला अंतिम अंश प्रधान बन गया है।

शुभा की कथा

परन्तु इन दोनों जातकों से भी अधिक महत्वपूर्ण प्रेम-कहानी वह जान पड़ती है जो ३६६-६६वीं 'थेरीगाथा' के रूप में आती है। "शुभा नाम की भिक्खुणी जीवक के उद्यान में घूम-फिर रही है और उसके मार्ग में एक युवक आकर खड़ा हो जाता है। वह पूछती है कि तुम क्यों मेरे रास्ते में खड़े हो गए? कोई भला पुरुष तो ऐसा नहीं करता कि वह किसी स्त्री का रास्ता रोकता चले और इस प्रकार का दुर्व्यवहार करे? इसके उत्तर में वह कहता है कि अरी युवती स्त्री, तुम ये अपने पीले कपड़े फेंक दो और मेरे साथ चलकर भोग-विलास करो तथा इस प्रकार इस जीवन का आनन्द लूटो। ये तुम्हारी आँखें हिरनों जैसी सुन्दर हैं और तुम्हें चाहिए कि ऐसे सौन्दर्य के साथ विशाल मन्दिरों में रहे और सुन्दर-से-सुन्दर वस्त्राभूषण परिधान करे। इस पर शुभा का कहना है कि तुम्हें पता नहीं कि तुम किस प्रकार के नरक में पड़े हो और फिर भी बेतुकी हाँकते हो। किन्तु फिर भी वह युवक उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करने लगता है और कहता है, "तुम्हारी ये आँखें कितनी मर्मवेधिनी हैं! मैं तुम्हें किसी प्रकार भी भुला नहीं सकता।" शुभा को इस पर फिर आवेश आ जाता है और वह बोल उठती है 'अरे, तुम पृथ्वी पर रहते हुए चन्द्रमा को पकड़ना चाहते हो? जाओ उन स्त्रियों से बातें करो जो मेरी जैसी नहीं हैं और उन्हें लालच दो। इस

शरीर में क्या है ? यह तो क्षणस्थायी है और ये आँखें ही क्या हैं ? केवल छोटी-छोटी सी गोल वस्तुएँ छिद्रों में खोंस सी दी गई हैं। इतना कहकर शुभा ने अपनी आँखें स्वयं निकाल डाली और उन्हें उस युवक के हाथ में दे दिया। वह युवक इस घटना द्वारा इतना प्रभावित हुआ कि उसने शुभा से क्षमा-याचना करते हुए कहा कि, "क्या ही अच्छा हो कि तुम अपनी दृष्टि को फिर से उपलब्ध कर लो। मैं अब तुम्हें कभी नहीं छेड़ूँगा। तुमने मेरे पापों को नष्ट कर दिया और मैंने आज ज्वाला का आलिंगन कर लिया।" इस प्रकार उस युवक से मुक्त होकर शुभा बुद्ध के पास गई और वहाँ जाते ही उसे अपनी दृष्टि फिर प्राप्त हो गई।

बौद्ध साहित्य की उपर्युक्त तीनों कहानियों में जितना बल नैतिक शिक्षा एवं उपदेश पर दिया गया है उतना इनके अन्य अंशों पर नहीं।

बौद्ध प्रेमाख्यान और जैन-प्रेमाख्यान

शुभा वाली तीसरी कहानी में सारी सांसारिक वस्तुओं की नश्वरता की ओर संकेत किया गया है और आँखों तक की व्यर्थता सिद्ध हो गई है। जैन की धर्मकथाओं का भी उद्देश्य धार्मिक उपदेश है, किन्तु वे उसे कुछ भिन्न प्रकार से देती हैं। बौद्ध जातकों में परम्परागत कथाओं को भी वक्ता के उद्देश्य के अनुसार कुछ-न-कुछ सुधार दिया जाता है, क्योंकि वह उसकी विविध घटनाओं को अतीत काल में दिखलाना आवश्यक समझता है। अतएव, उन पहले से प्रचलित कहानियों का भी रूप यथापूर्व न रहकर तत्त्वत बौद्ध हो जाता है। किन्तु जैन-कथाओं में ऐसा नहीं पाया जाता और यहाँ पर प्रयत्न भरसक यह होता है कि कथा का रूप जैसा-का-तैसा ही रह जाय तथा उसके अन्त में कोई परिणाम निकाला जाय। बौद्ध जातकों में कहानियों के कई भिन्न-भिन्न अंग भी दीख पड़ते हैं और अन्त में धर्मोपदेश रहा करता है। किन्तु जैन-कथाओं के अन्त में, प्राय, केवल उनकी विविध घटनाओं की, साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के अनुसार, व्याख्या पाया जाता है। इसके सिवाय जैन साहित्य के अन्तर्गत बहुत से पुराणों का भी पता चलता है जिनकी रचना अन्य पुराणों की-सी हुई है और उनमें भी प्रेम-कथाएँ प्रसगवश ही आई हैं। परन्तु बौद्ध साहित्य में ऐसे ग्रन्थ बहुत कम पाये जाते हैं और उनमें इन्हें वैसा स्थान भी नहीं मिला है।

जैन-साहित्य के 'नाया धम्म कहाओ' नामक 'अग' के अष्टम अध्याय में मल्ली की कथा आती है जो श्वेताम्बर जैनियों के अनुसार १९वें तीर्थङ्कर का नाम है। वह जो पुरुष न होकर स्त्री-रूप में थे, किन्तु उन्हें दिगम्बर

जैन धर्म मल्ली की कथा

जैनी पुरुष माना करते हैं। वहाँ पर मल्ली मिथिला के राजा की कन्या है और वह परम सुन्दरी भी है जिस कारण उसे छः पृथक्-पृथक् राजकुमार अपनाने की चेष्टा करते हैं। मल्ली के पिता उन सभी के प्रस्तावों को अस्वीकार कर देते हैं जिस पर क्रुद्ध होकर वे मिथिला नगरी को घेर लेते हैं। ऐसे अवसर पर मल्ली अपने पिता को परामर्श देती है कि वे उन छहों राजकुमारों को निमन्त्रित करें और उन्हें उसकी स्वीकृति की सूचना भी दे दें। तदनुसार वह एक विचित्र 'मोहन घर' का निर्माण कराती है और उसमें अपनी एक सजीव-सी प्रतिमा रख देती है। वह घर इस प्रकार बना रहता है कि उसके भीतर से प्रत्येक राजकुमार दूसरे के परोक्ष में उस प्रतिमा को देख पाता है और उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता है। इसी बीच में मल्ली उस प्रतिमा के एक छिद्र द्वारा उसमें प्रतिदिन कुछ-न-कुछ उच्छिष्ट भोजन भी डालती रहती है। अन्त में जब वह उन सभी के सामने उक्त छिद्र का ढक्कन उठाती है तो उसमें से इतनी दुर्गन्ध निकलती है कि वे अपनी नाक बन्द करके भाग खड़े होते हैं। मल्ली उन्हें इसी अवसर पर धर्मोपदेश देती है और बतलाती है कि किस प्रकार स्वय उसके भी सुन्दर शरीर के भीतर निकृष्ट मल वर्तमान है। इस प्रकार वह उसके प्रति प्रदर्शित प्रेम की व्यर्थता सिद्ध करती है और उन्हें अपने पूर्वजन्म का सारा वृत्तान्त भी कहकर संसार का परित्याग करने की प्रेरणा देती है।[1]

तरंगवती की जैन धर्म कथा

परन्तु सबसे प्राचीन जैनधर्म कथा जो अभी तक उपलब्ध है 'तरंगवती' समझी जाती है जिसका संक्षिप्त रूप प्राकृत रचना 'तरंगलोला' में मिलता है। इसके अनुसार श्री महावीर स्वामी की प्रमुख शिष्या चन्दन बाला की शिष्या सुव्रता की शिष्या तरंगवती अपनी आत्मकथा इस प्रकार कहती है—"मैं एक धनी सेठ की सुन्दरी कन्या थी। एक दिन मैंने पुष्करिणी में एक हंस और हंसिनी को देखा और मैं मूर्छित हो गई। मुझे स्मरण हो आया कि मैं भी किसी समय एक हंसिनी थी और जब हंस को एक पारधी ने, हाथी का शिकार करते समय, बाण से मार दिया तो उसके विरह में मैंने भी अपने को उसके साथ अग्नि में जला दिया था। उस समय से मैं अपने पूर्वजन्म के प्रियतम की स्मृति में पागल

१. Dr Winternitz, A History of Indian Literature, University of Calcutta, 1933, p. 447-8 (Vol II)

हो उठी थी। मैंने फिर अपने प्रेमपात्र को एक चित्र के सहारे पा लिया। हम दोनों वहाँ से भागते समय डाकुओं द्वारा पकड़े जाकर बलिदान दिये जाने लगे। परन्तु हम लोग बचा लिये गए और हम दोनों का विवाह सस्कार भी हो गया। इसके अनन्तर एक जैन मुनि का उपदेश श्रवण कर मुझे वैराग्य हुआ। मैंने फिर सुव्रता से दीक्षा ग्रहण कर ली। जैन मुनि पूर्वजन्म का वही पारधी था, जिसने अपने बाण से, हाथी का शिकार करते समय, हंस को मार दिया था।"[1] 'तरगवती' अथवा 'तरगलोला' की यह कथा बहुत प्राचीन है और इसके आदर्श पर पीछे बहुत-सी अन्य रचनाएँ भी हुई हैं। इस कथा में प्रेमभाव के महत्त्व की चर्चा अधिक स्पष्ट है क्योंकि उसका प्रभाव एक से अधिक जन्मों तक चलता है और उसकी सचाई के कारण अन्त में, प्रेमी एव प्रेमिका सफल भी हो जाते हैं। जैन मुनि के उपदेश का प्रभाव उनके ऊपर पीछे पड़ता है और यहाँ पर भी सयोगवश उन्हें एक अपने पूर्व परिचित से ही सहायता मिलती है।

'तरगलोला' प्राकृत भाषा के आर्याछन्दों में लिखी गई रचना है और उनकी सख्या १६४२ है। प्राकृत भाषा में एक गाथाबद्ध रचना 'लीलावई कहा' है जिसमें दो व्यक्तियों के प्रेम एवं विवाह का वर्णन बड़े सुन्दर ढग से किया गया है। इसमें गोदावरी तटवर्ती प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन तथा सिंहल के राजा शिलामेघ की पुत्री लीलावती का प्रेमाख्यान है।

लीलावती की कथा

इस कथा की एक विशेषता यह है कि इसमें वस्तुत देवता एवं मनुष्य दोनों ही वर्गों के पात्र परस्पर मिलते हैं जिस कारण इसके विषय में कहा गया है कि यह 'दिव्य मानुषी कथा' है। इसकी एक दूसरी विशेषता यह भी है कि इसकी मुख्य कथा के अन्तर्गत अन्य कथाओं का भी समावेश किया गया है। इस कारण यह 'कथा' की ठीक परिभाषा में भी आ जाती है। तरगवती के अनुसरण में हरिभद्र की धर्मकथा 'समराइच्च कहा' भी निर्मित हुई है जो अधिकतर गद्य में है। उसके बीच-बीच में अनेक छोटे-बड़े छन्दों को भी स्थान दे दिया गया है। ऐसी धर्म-कथाओं की रचना-शैली अन्त में, 'उपमितिभव प्रपञ्च कथाओं' में परिणत हो जाती है जिनमें सारी की-सारी कथा रूपकों द्वारा कही गई रहती है। इनके पात्रों के नाम 'निष्पुण्यक', 'काल परिणति', 'सुमति,' 'भव्यपुरुष', आदि जैसे मिलते हैं

१ 'सखित्त तरगवई कहा' (तरगलोला) अहमदाबाद, स० २००० also Dr Winternitz's History of Indian Literature p 522 (Vol II)

और इनकी घटनाओं का विकास भी इस प्रकार कराया जाता है जिससे कथा में किसी प्रकार की अस्वाभाविकता न आने पाए। ऐसी कथाओं के रचयिता अपना ध्यान विशेषतः उन साम्प्रदायिक सिद्धान्तों पर भी रखते हैं जिनके अनुसार उन्हें उपदेश देना रहता है। जन्मजन्मान्तर एव कर्मवाद का महत्त्व उनकी प्रमुख विशेषताएँ रहा करती हैं।

जैन धर्म द्वारा प्रभावित प्रेमाख्यानों के अनेक उदाहरण हमे अपभ्रंश भाषा की रचनाओं में भी मिलते हैं। इस प्रकार की रचनाओं में 'पउमसिरी' (अर्थात् पद्मश्री) का नाम लिया जा सकता है जिसमे प्रेमिका के पूर्वजन्म की कथाएँ हैं। पद्मश्री अपने एक जन्म में वसन्तपुर नगर के सेठ धनसेन की पुत्री धनश्री के रूप में रहती है। धनदत्त और धनावह उसके भाई रहते हैं और वह अचानक विधवा होकर उनकी शरण में अपने दिन काटती है। किन्तु अपने बड़े भाई की स्त्री यशोमति द्वारा किये गए व्यंग्य से मर्माहत होकर वह तप करती है और फिर हस्तिनापुर में पद्मश्री के रूप में जन्म लेती है। उधर धनदत्त और धनावह का भी पूर्वजन्म अयोध्या में होता है और इनके नाम क्रमशः समुद्रदत्त एवं वृषभदत्त रहते हैं। तरुणी पद्मश्री यहाँ समुद्रदत्त से प्रेम करने लग जाती है, किन्तु पूर्वजन्म के कर्मानुसार दोनों में कुछ भेद भी उपन्न हो जाता है। फलत' समुद्रदत्त पद्मश्री का परित्याग कर कान्तिमति से विवाह कर लेता है और इसके द्वारा वह अपमानित भी कर दी जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि पद्मश्री तपस्या करने लग जाती है और इस प्रकार उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इस कथा में प्रेम की महिमा पूर्वजन्म के कर्मों द्वारा प्रकट नहीं हो पाती और पद्मश्री को उसी के कारण हतप्रभ तक हो जाना पड़ता है।[1] वास्तव में इस रचना को हमें एक सच्चे प्रेमाख्यान के रूप में स्वीकार करते हुए संकोच का भी अनुभव होता है।

उसकी कथा से अधिक उपयुक्त उदाहरण हमें कवि धणवाल (धनपाल) की 'भविसत्त कहा' में मिलता है जहाँ पति एवं पत्नी के स्वाभाविक प्रेम का महत्ता सिद्ध हो जाती है। भविसत्त अपने सौतेले भाई द्वारा एक निर्जन द्वीप में परित्यक्त कर दिया जाता है, किसी उजाड़ नगर में आता है और देवो की सहायता से एक राजकुमारी को ब्याह लेता है।

'पउमसिरी'

भविसत्त कहा

1. 'पउमसिरी चरिउ', (सिंघीजैन ग्रन्थमाला-भारतीय विद्याभवन, बम्बई सन् १६४८ ई०

परन्तु कुछ दिनों के अनन्तर अपने पूर्व स्थान के लिए यात्रा करते समय, उसे उसका सौतेला भाई फिर उसी निर्जन द्वीप में छोड़ देता है और उसका अपनी प्रियतमा से भी वियोग हो जाता है, जिसे उसका भाई वहाँ से ले भागता है। इस अवसर पर उसे एक पक्ष सहायता पहुँचाता है और वह अपनी पत्नी से रथ द्वारा आकर मिल जाता है। उसकी पत्नी भगाई जाने पर भी उसके विरह का अनुभव करती रहती है और उसके पुनर्मिलन पर आनन्द का अनुभव करती है। प्राकृत में रची गई धर्मचक्र की 'मलय सुन्दरी कथा' के अन्तर्गत इससे कहीं और भी अधिक कठिनाइयों का वर्णन है। वहाँ का राजकुमार महावल वड़े सयोगवश ही मलयसुन्दरी के प्रेम में पड़ता है और वह भी उसी प्रकार प्रभावित होती है। परन्तु इसके अनन्तर वे एक से अधिक बार एक दूसरे से विलग होते हैं। और फिर मिल भी जाया करते हैं। इस कथा में यह वात अत्यन्त स्पष्ट रूप में दरशायी गई है कि किस प्रकार भाग्य-चक्र का प्रभाव किसी को चैन नहीं लेने देता और ये सारी कठिनाइयाँ केवल कर्मवाद के सिद्धान्तों द्वारा ही समझा दी जाती हैं। इस कथा में इसका प्रभाव महावल एव मलय सुन्दरी दोनों पर ही पड़ता दीख पड़ता है और क्रमश वे दोनों ही जैन धर्म में दीक्षित होकर अपना भविष्य सुधारते हैं।[1]

जैनों की पौराणिक प्रेमकथाएँ

जैनियों के पौराणिक साहित्य में जो कुछ प्रेमाख्यान मिलते हैं वे उक्त प्रेमकथाओं की भाँति स्वतन्त्र न होकर प्राय, अन्य पौराणिक उपाख्यानों के समान, केवल प्रासगिक रूप में ही मिला करते हैं। उपाख्यानों 'जैनमहापुराण' वाले उत्तर पुराण के ७०वें पर्व में, किसी वश का वर्णन करते समय, प्रसगवश एक वनमाला की प्रेमकथा आई है। वत्स देश की कौशाम्बी नगरी राजा मघवा राज्य करता था जिसकी महारानी का नाम वीतशोका था और उन्हें एक रघु नाम का पुत्र भी था। उसी नगरी में प्रमुख नाम का एक धनी सेठ रहता भी रहता था जो, व्याधों के भय से अपने यहाँ शरणार्थी बने हुमें, वीरदत्त नामक वैश्य की वनमाला नाम की स्त्री के ऊपर आसक्त हो गया। तदन्तर उस मायाचारी सेठ ने वीरदत्त को बहुत भारी आजीविका देकर उसे १२ वर्षों के लिए बाहर भेज दिया और उसकी स्त्री को स्वय अपना लिया। जब वीरदत्त बाहर से लौटता तो उसे अपनी पत्नी वनमाला के मनोल्कि़ा पर बड़ी ग्लानि हुई और

१ Dr Winternitz, A History of Indian Literature, p 533 (Vol II)

उसने प्रोष्ठिल मुनि से दीक्षा ले ली।[1] इस कथा के रचयिता ने पत्नी के प्रेम की अस्थिरता तथा तज्जन्य विषाद को उदाहृत किया है। यहाँ ऊपर की 'भविसत्त कहा' वाली घटनाओं के नितान्त विपरीत उदाहरण का वर्णन किया या है।

परन्तु उक्त 'महापुराण' वाले 'उत्तरपुराण' के ही ७१वें पर्व में एक अन्य प्रकार की भी कथा आती है। इसके अनुसार उज्जयिनी के राजा वृषभध्वज का पुत्र वज्रमुष्टि उसी नगरी के सेठ वही विमलचन्द्र की पुत्री मंगी से प्रेम करता है। मंगी किमी दिन वसन्त ऋतु के समय एक कलश में से माला निकालने जाती है जिसमें उससे ईर्ष्या करने वाली सास पहले से ही एक सर्प डाल दिये रहती है। वह सर्प मगी को डस लेता है जिससे वह निश्चेष्ट हो जाती है और उसकी सास उसे पयाल में लपेटकर श्मशान छोड़ आती है। वज्रमुष्टि जब आकर उसके विषय में अपनी माँ से पूछता है, तो वह टालमटोल करती है जिससे असन्तुष्ट होकर वह एक नगी तलवार लेकर निकल पड़ता है और अन्धेरी रात के समय ही उसे ढूँढने लग जाता है। श्मशान के वरधर्म नामक मुनिराज की कृपा से वह मंगी को पा लेता है, जब उसमे केवल कुछ थोड़ी-सी ही चेतना शेष रह जाती है और वह उसे उन्हीं के यहाँ लाता है। मुनिराज का चरण स्पर्श कर वह विषरहित होकर उठ बैठती है। वज्रमुष्टि मुनिराज के लिए सहस्रदल कमल लाने जाता है। इधर मथुरा का शूरसेन जो कहीं से वृक्षों में छिपा-छिपा यह दृश्य देख रहा है मंगी की परीक्षा लेना चाहता है। जिस समय वह मीठी-मीठी बातें करके उसे अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल होता रहता है वज्रमुष्टि कमल के साथ आ जाता है। वह अपनी तलवार अपनी प्रिया के हाथ में थमाकर जब मुनिराज के चरणों पर कमल चढ़ाने के लिए झुकता है उसी समय मगी उस तलवार को उठाकर उसे मार डालने का प्रयत्न करती है, किन्तु शूरसेन उसे छीन लेता है जिससे उसकी उंगली कट जाती है। शूरसेन पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वह तप करने की सोचने लगता है।[2] इस कथा में भी स्त्रियों के बनावटी प्रेम का उदाहरण उपस्थित किया गया है और

---

१. श्लोक ६४,७१, पृ० ३४३, (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सं० २०११)

२. श्लोक २०६-३१, पृ० ३८६-९० ।

धनमाला वाली कथा से भी अधिक उल्लेखनीय प्रसंग उपस्थित किया गया है।[1]

बौद्ध एवं जैन प्रेमाख्यानों की विशेषता

इस प्रकार जैन-साहित्य के अन्तर्गत जो प्रेम कथाएँ उपलब्ध हैं उनमें से अधिकतर वैसी ही हैं जिनमें या तो प्रेम-सम्बधी विविध व्यापारों को गौण स्थान दिया गया है अथवा उनका आश्रय समझी जाने वाली स्त्रियों के विरुद्ध कहा गया है। वास्तव में सयम, तपस्या, ब्रह्मचर्य आदि की शिक्षा देने वाले धर्मग्रन्थों से इससे अधिक आशा भी नहीं की जा सकती। फिर भी जो जैन धर्म-कथाएँ, थोड़ी-बहुत साहित्यिक दृष्टि से भी लिखी गई हैं अथवा जिन पर जैनेतर शृङ्गारिक रचनाओं का भी कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़ा है उनमें सर्वत्र ऐसी बात नहीं पाई जाती। इसके सिवाय यह बात केवल जैन-साहित्य की ही विशेषता नहीं है, प्रत्युत् इसके अनेक उदाहरण हमें बौद्ध साहित्य में भी मिल सकते हैं। उसमें तो सर्वप्रथम ऐसी रचनाओं की सख्या ही अधिक नहीं दीखती और जो उदाहरण उसमें पाये जाते हैं उनकी वर्णन-शैली में विविधता भी नहीं पाई जाती। बौद्धों एवं जैनियों के भी साहित्यों में पाई जाने वाली प्रेम-कथाओं की एक बड़ी विशेषता यह है कि उनके पात्रों में अधिकतर वे ही आते हैं जो या तो मध्यम श्रेणी के सेठ आदि हैं अथवा निम्न वर्ग के व्यक्ति रहा करते हैं। केवल राजपरिवारो के अथवा स्वर्गीय प्रदेश के लोगों को इनमें स्थान नहीं मिलता और इस प्रकार इनकी घटनाएँ भी साधारण जनसमाज के अधिक अनुकूल रहती हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि इनकी कथाएँ बहुधा लोक-कथा के स्रोतों से सम्बंध रखती हों जिस बात का प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। इसके सिवाय बौद्ध एव जैन-लेखकों ने अपनी रचनाओं का माध्यम अधिकतर पाली, प्राकृत अथवा अपभ्र श को ही बनाया था, जिन्हें पढ़ने, सुनने व समझने वाले प्राय साधारण वर्ग के व्यक्ति हुआ करते थे और उनके बोधगम्य विषय का देना आवश्यक भी था।

१ गुजराती में बहुत से जैनी कवियों ने 'रासो-साहित्य' की भी सृष्टि की है जिसका प्रमुख लक्ष्य ऐसी प्रेमकथाओं द्वारा धर्म का प्रचार करना रहा है।

कथा-साहित्य और काव्यों में प्रेमाख्यान

प्रेमाख्यानों के कथात्मक रूप का महत्त्व

वैदिक साहित्य, पौराणिक साहित्य अथवा श्रमण-साहित्य (जिसमें बौद्ध एवं जैन साहित्यों की गणना की जाती है) में प्रेम-कथाओं को केवल प्रसंगवश, या उपदेश-प्रदान की दृष्टि से, स्थान दिया गया है। उनमें कथाओं का संग्रह इनके पृथक् महत्त्व को ध्यान में रखकर नहीं किया गया है। इस प्रकार का प्रयत्न कथा-साहित्य में मिलता है जहाँ प्रचलित कथाओं को संगृहीत कर अथवा उनकी नवीन सृष्टि करके रखा गया है। कहते हैं कि यह कार्य, सर्वप्रथम, गुणाढ्य नाम के किसी पंडित ने अपनी 'बृहत्कथा' की रचना द्वारा आरम्भ किया था। यह ग्रन्थ पैशाची भाषा में लिखा गया बतलाया जाता है और वह इस समय हमें उपलब्ध भी नहीं है। किन्तु उसके आदर्श पर पीछे बहुत-सी अन्य रचनाएँ प्रस्तुत की गई हैं जिनमें से बुद्धस्वामी के 'बृहत्कथा श्लोक-संग्रह', क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथा मंजरी', सोमदेव के 'कथासरित्सागर' अथवा जैन-कवि हरिषेण के 'बृहत् कथा कोश' आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इसके सिवाय इस प्रकार की रचनाओं को दृष्टि में रखकर बाण, दंडी और सुबन्धु जैसे कवियों ने अपने कथा-काव्यों का भी निर्माण किया है। इनमें से क्षेमेन्द्र, सोमदेव आदि ने तो सम्भवतः गुणाढ्य के ही अनुकरण में, 'कथापीठ', 'कथावतार' जैसे प्रसंगों से आरम्भ करके विविध प्रकार की कथाओं को क्रमिक रूप में दे दिया है, किन्तु बाण, दंडी, आदि ने अपने विषय को कुछ और भी सीमित कर दिया है और ये स्पष्ट रूप में केवल कतिपय व्यक्तियों को ही ध्यान में रखकर तथा उन्हीं के नाम से भी अपनी रचना करते हैं।

क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथामञ्जरी' एवं सोमदेव के 'कथासरित्सागर' की रचना कश्मीर में केवल कुछ ही वर्ष आगे-पीछे हुई थी। दोनों रचनाओं

'कथासरित्सागर'

के क्रमादि भी, लगभग एक ही ढग से और बहुत कुछ एक ही उद्देश्य से, स्थिर किये गए हैं। फिर भी दूसरी रचना पहली से बहुत बड़ी है। इसमें कहा गया है कि शिव ने पार्वती से कुछ मनोहर कथाएँ कही थीं जिन्हें उनके प्रिय 'गण' पुष्पदन्त ने चुपके से सुन लिया था और इस बात का पता चल जाने पर पार्वती ने उसे शाप दे दिया था कि तुम मर्त्यलोक में जन्म लो। फिर उन्हीं के कथनानुसार उसे इस कथा को काणभूति के प्रति कहना पड़ा जिससे फिर माल्यवान् ने भी सुना। कहते हैं कि यही माल्यवान् सुप्रतिष्ठ नगर का गुणाढ्य पडित हुआ जिसने 'वृहत्कथा' की कथाओं को व्यवस्थित किया और उसके आधार पर 'कथासरित्सागर' भी बना। परन्तु कुछ विद्वानों का अनुमान है कि सोमदेव ने गुणाढ्य से कहीं अधिक बुद्ध स्वामी के आदर्श पर लिखा है। 'कथासरित्सागर' १२४ तरगों व अध्यायों में विभक्त है और ये तरग १८ लम्बकों में रखे गए हैं। इसमें प्रेमी एव प्रेमिकाओं के प्रेम-व्यापार के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के विषयों पर भी कथाओं की रचना की गई है। इसके सिवाय इसकी सभी कथाएँ मौलिक अथवा नवीन नहीं कही जा सकतीं, प्रत्युत् इनमें बहुत सी ऐसी भी छोटी-बड़ी कहानियाँ हैं जिनका समावेश वैदिक और पौराणिक साहित्यों में हो चुका है और जो 'वृहत्कथामञ्जरी' जैसे अन्य कथा-सग्रहों में भी पाई जाती हैं। इसके 'सागर' नाम की सार्थकता इस बात में समझी जा सकती है कि इसकी कथाओं में न केवल विविधता है अपितु उनकी सख्या भी बहुत बड़ी है।

उसकी प्रेम-कथाएँ

जहाँ तक इस 'कथा सरित्सागर' में समाविष्ट प्रेमाख्यानों का प्रश्न है वे भी एक ही प्रकार के नहीं हैं। इसमें न केवल उर्वशी और पुरूरवस्,[1] अहल्या और इन्द्र[2] तथा सीता एव राम[3] की जैसी पौराणिक प्रेम-कहानियाँ हैं अथवा वत्सराज उदयन और उनकी रानी वासवदत्ता[4] की जैसी ऐतिहासिक प्रेम-कथाओं की चर्चा आती है, अपितु इसमें बहुत सी काल्पनिक दतकथाओं को भी सम्मिलित किया गया है। इसके अतर्गत इस प्रकार की भी छोटी कहानियाँ आती हैं, जैसे, "मथुरा नगरी का कोई इल्लक नाम का वैश्य

---

१ The Ocean of Story (ch 17 st 18)
२ Do st 21
३ Do (ch 51 st 64)
४ Do (ch 16 st 16)

था जो व्यापार के लिए बाहर गया। उसकी प्रिय पत्नी उसके घर पर ही उससे वियुक्त होकर रह गई। पति के वियोग में उसका देहांत भी हो गया। फिर जब उसका पति लौटा और उसने उसे जीवित नहीं पाया तो वह भी उसके विरह में तड़पकर मर गया।''[१] इसमें 'महाभारत' वाली रुरु एवं प्रमद्वरा की भी कथा आती है जिसके अनुसार, अपनी, विवाह के लिए पसंद की गई, प्रिया के सर्प द्वारा डस लिये जाने पर, एक ऋषि उसे अपनी आयु का अर्ध भाग देकर पुनर्जीवित करा लेते हैं। किंतु प्रमद्वरा यहाँ पर पृषद्वरा हो गई है।[२] अहल्या, उर्वशी, सीता, वासवदत्ता[३] आदि की कहानियाँ क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथामञ्जरी' में भी प्रायः जैसी-की-तैसी आ गई हैं और इन दोनों रचनाओं की अनेक कथाओं की तुलना करने पर भी बहुत अंतर नहीं दीख पड़ता।

देवसेन और उन्मादिनी की कथा

इन दोनों रचनाओं के अंतर्गत एक प्रेमाख्यान देवसेन तथा उन्मादिनी का आता है जिसे क्षेमेन्द्र ने दो स्थलों पर दिया है।[४] इस कथा का देवसेन राजा अवन्तिका का अधिपति है जिसे उसके राज्य का एक वणिक् बतलाता है कि मेरी कन्या परम सुन्दरी है, उसका नाम उन्मादिनी है और वह आपकी रानी होने योग्य है। इस पर वह राजा अपने यहाँ से कतिपय ब्राह्मणों को भेजता है कि वे इस बात की सचाई की जाँच कर आवें। वे ब्राह्मण जाकर उन्मादिनी को देखते हैं और यह अनुमान करके कि इससे प्रभावित हो जाने पर देवसेन अवश्य प्रेम द्वारा पागल हो उठेगा, वे लौटकर उसे दुर्लक्षिणी बतला देते हैं। अतः राजा उस कन्या को अस्वीकार कर देता है और वह अपने पिता द्वारा सेनापति को दे दी जाती है। परंतु एक दिन जब हाथी पर चढ़कर देवसेन उधर जा निकलता है उन्मादिनी उसे कोठे पर दीख पड़ती है और वह उस पर मोहित हो जाता है। सेनापति को जब यह बात विदित होती है तो वह उसे राजा को अर्पित करने लगता है, किंतु वह धर्म के विचार से फिर अस्वीकार करता है। इस पर सेनापति प्रस्ताव करता है कि वह उसे सुरालय में नर्तकी बना देगा जिससे अधर्म का कोई प्रश्न नहीं उठेगा। देवसेन इस पर भी बिगड़ खड़ा होता है

१. Do (ch 15 st 14)
२ Do (ch 14 st 10)
३. 'बृहत्कथामञ्जरी' (काव्यमाला) पृ० ८१, ७७, ७५-६।
४. बृहत्कथामञ्जरी, पृ० ७०-१ और ३६३।

और उसकी भर्त्सना करता है कि वह ऐसा अनुचित कर्म क्यों करेगा। फिर भी सेनापति के चले जाने पर वह उन्मादिनी के प्रेम से मूर्छित हो प्राण दे देता है। इसे कवि ने कामदेव का प्रभाव बतलाया है।

यह कथा क्षेमेन्द्र ने 'लावानक' नामक तृतीय लम्बक के तृतीय गुच्छ में दी है और इससे विधाता का विधान उदाहृत कर इसका नाम भी 'देवसेनाख्यायिका' दिया है। परन्तु अन्यत्र फिर

उसका अन्य रूप

इसी कथा को कुछ अधिक विस्तार दे दिया गया है और वहाँ पर इसे 'वेताल पञ्चविंशतिका' के शीर्षक में 'सप्तदशोवेतालः' के रूप में रखा गया है। यहाँ पर नगर का नाम रूठक वा कनकपुर पाया जाता है और राजा का नाम भी देवसेन की जगह यशोधन आता है। किन्तु कथा का प्रारम्भ लगभग पूर्ववत् ही होता है, अन्तर केवल यही है कि राजा जब चैत्र के उत्सव में निकलता है तो उन्मादिनी जान-बूझकर उसे दीख पड़ती है। वह यहाँ पर उसे देखकर उक्त ब्राह्मणों का धोखा देना भी ताड़ जाता है और उन्हें, रुष्ट होकर, नगर से निर्वासित कर देता है। वह फिर विरह के कारण अस्वस्थ हो जाता है और यहाँ तक संकेत करता है कि, पर-स्त्री का अपनाना उचित न होने से, मेरा मरना ही ठीक होगा। दूसरे दिन उसका बलधर नामक सेनापति अपनी उस पत्नी को जब उसे देना चाहता है तो वह राजधर्म की दुहाई देने लग जाता है। इसी प्रकार, सेनापति के उसे देवदासी बना देने के प्रस्ताव पर भी, वह न केवल इस बात की निंदा करता है, अपितु वह मर भी जाता है। यशोधन का इस प्रकार देहान्त हो जाने पर उसका वह सेनापति भी यहाँ अग्नि में प्रवेश करके अपने प्राण दे देता है। कथा में इसके अनन्तर यह भी आता है कि बेताल इस घटना के अनन्तर राजा विक्रम के प्रति प्रश्न करता है कि बतलाओ बलधर और यशोधन में कौन अधिक 'सत्त्ववान्' था। सोमदेव के 'कथासरित्सागर' ग्रन्थ में भी ये दोनों कथाएँ हैं व एक ही कथा के ये दोनों रूप आये हैं।[१]

'कथासरित्सागर' के अन्तर्गत, 'वेताल पचविंशति' की ही, एक यह कथा भी आती है—"अर्कदत्त नामक किसी वैश्य की एक परम सुन्दरी पुत्री थी जिसका नाम मदनसेना था और जिसके

धर्मदत्त और मदनसेना की कथा

सौंदर्य पर धर्मदत्त नामक वैश्य रीझ गया था। यह उसे देखे बिना बराबर तड़पा करता और इसे उसके बिना एक क्षण भर भी चैन नहीं मिलता। एक

---

१ 'The Ocean of Story' (ch 15 st 13 and ch 91 st 163)

दिन किसी प्रकार इसने मदनसेना से भेंट की और उसके प्रति अपने विवाह का प्रस्ताव किया। किन्तु मदनसेना ने उसे बतलाया कि मेरी शादी समुद्रदत्त नामक एक अन्य वैश्य के साथ तय हो चुकी है और वह विवश है। धर्मदत्त पर इस बात का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा और वह बराबर आग्रह करता रहा। इसलिए मदनसेना को यह वचन देना पड़ गया कि, अपना विवाह हो जाने पर भी, मैं पहले तुम्हारे यहाँ ही आऊँगी, तदनन्तर समुद्रदत्त के साथ रमण करूँगी। धर्मदत्त इस बात को मान गया और जब विवाह की विधि सम्पन्न हो गई और वह समुद्रदत्त से मिली तो उसने उससे सारा हाल कह सुनाया तथा उससे आज्ञा लेकर धर्मदत्त के यहाँ चल पड़ी। परन्तु रास्ते में उसे एक चोर मिला। उसने भी उससे कहा कि मेरे साथ रमण करो तथा उससे भी उसने अपनी विवशता दिखलाई और फिर आने का वचन दिया। परन्तु जब वह धर्मदत्त के पास पहुँची और उसने सारा वृत्तांत सुना तो उसने प्रभावित होकर अपना पूर्व विचार छोड़ दिया। धर्मदत्त के यहाँ से जब वह चोर के निकट लौटकर आई तो उसने भी धर्मदत्त की भाँति व्यवहार किया, और मदनसेना अन्त में, अपने पति समुद्रदत्त के पास, बिना किसी प्रकार कलुषित हुए ही, वापस आ गई। समुद्रदत्त के पूछने पर उसने सभी बातें स्पष्ट शब्दों में बतला दीं और अपनी पत्नी के सत्याचरण का पता पाकर वह और भी अधिक आनन्दित हुआ। कथा का वेताल यहाँ पर भी राजा त्रिविक्रम से प्रश्न करता है कि कहो उन दोनों वैश्यों में अधिक उदारता थी अथवा उस चोर में थी।[1]

'वेताल पंचविंशति' वाली रत्नवति की कथा

वेताल के ही प्रसंग में फिर इस रचना के अन्तर्गत एक अन्य कथा इस प्रकार आती है—अयोध्या नगरी में वीरकेतु नामक एक राजा थे और उनके राज्यकाल में रत्नदत्त नामक एक वैश्य रहता था। रत्नदत्त की एक सुन्दरी पुत्री थी जिसका नाम रत्नवती था और जो विवाह का नाम तक सुनना पसन्द नहीं करती थी। उस नगर में उन दिनों चोरों और डकैतों का आक्रमण सदा होता रहता था जिससे प्रजा बहुत कष्ट में थी। अतएव, एक रात को राजा स्वयं निरीक्षण करने निकला और एक चोर के मिलने पर उससे बतला दिया कि मैं भी चोर हूँ। इस प्रकार वे दोनों पहले एक जंगल की गुफा में गये जहाँ चोरों का अड्डा था और जहाँ की एक दासी से उसे पता चल गया कि वहाँ उसे अपना प्राण खो देने तक का भय हो

१. 'The Ocean of Story' (ch 84 st. 1634 G)

सकता है। राजा लौटकर घर आया और उसने तैयारी कर ली। परन्तु चोर भी एक बहुत बड़ा योद्धा था और वह राजा के सिपाहियों से बड़ी देर तक लड़ता रहा तथा उनमें से कइयों को उसने मार भी डाला। राजा ने, अन्त में, उस पर अकेले ही विजय पाई, उसे अपने घर बंदी करके ले आया और उसे मार दिये जाने की आज्ञा दे दी। इधर वैश्य की पुत्री ने जब उसे क्षत-विक्षत रूप में बन्दी होकर जाते देखा तो वह उसके रूप पर मोहित हो गई। उसने अपने पिता से कहा कि मैं इस चोर को ही चाहती हूँ तथा यदि द्रव्य देकर इसे छुड़ा नहीं लाओगे तो मैं अपने प्राण तक दे दूँगी। उसने अपने गुरुजनों की बातों पर ध्यान नहीं दिया और जब उसके पिता ने उसकी बात को मानकर वीरकेतु के सामने प्रस्ताव रखा जिसे उसने ठुकरा दिया तो वह पालकी पर चढ़कर उस स्थान पर चली गई जहाँ चोर को मारा जा रहा था। चोर को जब सारी बातों का पता चला तो वह पहले रोया और फिर हँसने भी लगा। बेताल ने यहाँ भी प्रश्न किया है कि वह चोर पहले क्यों रोया, किंतु फिर पीछे वह क्यों हँसने लगा और त्रिविक्रम ने उसका उत्तर दिया है।[1]

'कथासरित्सागर' में यही कथा फिर अन्यत्र भी दी गई है और वहाँ पर अयोध्या के राजा का नाम वीरबाहु है। यह कथा यहाँ कुछ संक्षेप में कही गई है और यहाँ पर दिखलाया गया है कि वैश्य की वह कन्या (जिसे यहाँ पर वासवदत्ता नाम भी दिया गया है) अपने प्रेमपात्र चोर के मारे जाने पर उसके शव के साथ सती भी हो जाती है।[2] इसी प्रकार इल्लक वैश्य और उसकी पत्नी की कथा जिसका उल्लेख इसके पहले किया गया है, इसी रचना के अन्तर्गत फिर, सूरसेन और सुषेना नामक एक राजपूत दम्पती के नाम से, दी गई है, किंतु यहाँ पर उनकी कुलदेवी चण्डी उन्हें फिर से जिला भी देती है।[3]

उसका अन्य रूप

'कथासरित्सागर' के अन्तर्गत कुछ ऐसी भी प्रेम-कथाएँ पाई जाती हैं, जो निम्न श्रेणी के प्रेमियों तथा राजकुमारियों के सम्बध में हैं और ऐसी दशाओं में भी उन प्रेमियों का विवाह सम्पन्न हो जाया करता है। इनमें से एक प्रेमकथा के अनुसार सुप्रतिष्ठ नगर के राजा प्रसेनजित् की सुन्दरी पुत्री कुरंगी को, उद्यान में, कोई हाथी मारना

कथा सरित्सागर की अन्य प्रेम-कथाएँ

---

१ 'The Ocean of Story' (ch 88 st. 163 G)
२ Do (ch 112 st 168 D)
३ Do (ch 111 st 167).

चाहता है और जब वह उसे अपनी सूंड से उठाकर अपने दांतों पर रख लेता है तो राजा के अनुचर भय खाकर भाग चलते हैं। इसी बीच में एक युवक चांडाल वहाँ पर आ जाता है और हाथी पर आक्रमण कर उसे मार देता तथा कुरंगी को बचा लेता है। कुरंगी अपने घर पहुँचा दी जाती है, किन्तु उसे उस युवक चांडाल की स्मृति बनी रह जाती है और वह उस पर मोहित भी हो जाती है। उधर उस युवक चांडाल की भी वही दशा हो जाती है और वह अपनी जातिगत विषमता से क्षुब्ध होकर चाहता है कि चिता पर दग्ध हो जाय तथा यही अभिलाषा रखकर मरे कि उसे दूसरे जन्म में वह राजकुमारी मिले। परन्तु अग्निदेव उसे ऐसा करने से रोक देते हैं और जब प्रसेनजित् को स्वप्न में पता चल जाता है कि चांडाल अग्निपुत्र है तब विवाह भी हो जाता है। इसी प्रकार एक मछुए का लड़का राजगृह की राजकुमारी मलयवती पर आसक्त हो जाता है और उसके विरह में कष्ट सहने लगता है। उस लड़के की माँ उसके लिए राजकुमारी के पास क्रमश. जाना आरम्भ कर देती है और उसे प्रतिदिन एक मछली की भेंट करती है। जब राजकुमारी उस पर प्रसन्न हो जाती है और वह उससे कुछ माँगने को कहती है तो वह रहस्य प्रकट करती है जिस पर उस युवक मछुए को बुलाकर मलयवती उसे स्पर्श करती है और वह उसके महल में सो भी जाता है। किन्तु रात को जब उसकी नींद टूटती है और वह मलयवती को अपने निकट नहीं पाता तो उसके वियोग में तड़पकर मर जाता है। मलयवती इस बात को जानकर उसके शव के साथ सती हो जाना चाहती है और वह अपने पिता के मनाये भी नहीं मानती। अन्त में, आकाशवाणी के होने पर कि युवक मछुआ पूर्वजन्म का ब्राह्मण है, राजा उसका विवाह मलयवती के साथ कर देते हैं और वह जी भी उठता है।

इस प्रकार कथा-साहित्य का अध्ययन करने पर भी हमें पता चलता है कि उसमें प्रेमाख्यानों की कमी नहीं है। इसमें पूर्वागत आख्यानों को सम्मिलित करके कभी-कभी उनके रूपों में कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिये गए हैं अथवा नई कथाएँ जोड़ी गई हैं। इनमें जो कहानियाँ पौराणिक साहित्य से ली गई हैं उनके रूपों में उतनी पौराणिकता नहीं रह गई है, प्रत्युत् वे पीछे के दिनों में प्रचलित

कथा-साहित्य के प्रेमाख्यानों की विशेषता

१. 'The ocean of Story' (ch. 112 st. 168 B)

२. Do. (st. 168 C).

कहानियों के स्तर तक ला दी गई हैं और उनके पुराने प्रसगों में परिवर्तन आ जाने से भी, ऐसा हो गया है। इन प्रेम-कथाओं में बौद्ध जातकों तथा जैन-धर्म-कथाओं वाले मध्यमवर्ग तथा निम्नवर्ग वाले व्यक्तियों की भी चर्चा आई है। इनमें जनसाधारण का हाथ यहाँ तक अधिक है कि यहाँ पर एक मछुआ वा एक चाण्डाल तक किसी राजकुमारी के प्रति प्रेमासक्त हो जाता है और वह इस प्रकार सोचने का साहस भी करता है कि उसका विवाह तक सम्पन्न हो जाय। यह बात दूसरी है कि सामाजिक भेदों का प्रचार हो जाने के कारण, कथाकार को ऐसे उदाहरणों में किसी-न-किसी पूर्व-जन्म के संस्कारों का समाधान उपस्थित करना पड़ता है और वे अग्निदेव अथवा आकाशवाणी से सहायता लेते हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार के कथानकों के प्रयोग में आ जाने मात्र से भी, हमें इस ओर एक बड़ा परिवर्तन दीख पड़ता है। कथा-साहित्य के इन आख्यानों को हम कभी-कभी आत्मचरितों के रूप में कहे जाते हुए पाते हैं अथवा कभी-कभी वे किसी-न-किसी प्रकार की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए दृष्टान्त के रूप में भी, दिये जाते हैं। परन्तु जहाँ कहीं वे किसी मूल कथा के क्रम में उसकी घटनाओं आदि का स्पष्टीकरण करने के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं वहाँ वे उपदेशों का भी काम करते हैं। कभी-कभी इन प्रेम-कथाओं में बौद्ध या जैन प्रेम-कहानियों की भाँति प्रेमभाव दबा-सा भी प्रतीत होता है, किन्तु ऐसे प्रसग कम आये है। जैनकवि हरिषेण के 'बृहत्कथाकोश' में कहीं-कहीं पौराणिक कथाओं तक पर भी जैन प्रभाव लक्षित होता है।[१]

कथा-साहित्य के ही अन्तर्गत कुछ ऐसी भी रचनाएँ आती हैं जिनका उद्देश्य अधिकतर काव्य-कौशल का प्रदर्शन रहा करता है। इनकी रचना

उनकी शैली

'बृहत्कथाश्लोक सग्रह', 'बृहत्कथामञ्जरी' अथवा 'कथासरित्सागर' से पहले हो गई रहती है। इनकी विशेषता यह है कि जिस कथा को ये प्रधान-रूप में लेकर उसके अन्तर्गत अन्य कथाएँ गुंफित करती हैं उसी के नाम से ये अभिहित भी हुआ करती हैं तथा उसमें गुंफित की गई कथाओं का उसके साथ बहुत स्पष्ट और प्रत्यक्ष सम्बध भी रहता है। इनमें कथा का आरम्भ होकर उसकी विविध घटनाओं का प्रवाह चलता है, उसमें समय-समय पर कतिपय बाधाएँ उपस्थित होती रहती हैं और तदनुसार

१ 'बृहत्कथाकोश' (भारतीय विद्याभवन, बबई, स० १६६६) पराशर सत्यवती प्रसग (पृ० २३१), रुक्मिणी प्रसग, पृ० (पृ० २७६-८०), आदि।

उन्हें दूर करने के लिए युक्ति के रूप में वैसी उपकथाएँ निर्मित कर ली जाती हैं। इस प्रकार की शैली के कारण कथा के अन्तर्गत एक विचित्र पौराणिक वातावरण उपस्थित हो जाता है जिसके चमत्कार प्रदर्शन द्वारा पाठक व श्रोता के लिए अधिक रोचकता भी आ जाती है तथा सारी कृति सरस और मनोहर रूप धारण कर लेती है। ऐसी रचनाओं के दो उत्कृष्ट प्रेमकथात्मक उदाहरण सुबन्धु की 'वासवदत्ता' और बाण की 'कादम्बरी' में मिलते हैं। इन दोनों में से 'वासवदत्ता' के कतिपय पात्रों तथा घटनाओं का ऐतिहासिक होना भी कहा जा सकता है, 'किन्तु 'कादम्बरी' कदाचित् सर्वथा, काल्पनिक बातों से ही भरी हुई है और इसकी रचना-शैली में भी वासवदत्ता' से अधिक काव्य-कौशल का प्रदर्शन दीख पड़ता है।

पतंजलि कृत 'महाभाष्य' के एक स्थल पर वासवदत्ता, सुमनोत्तरा उर्वशी एवं भैमरथी नाम, आख्यायिका के प्रसंग मे, आते हैं।[1] इससे अनु-

भास के नाटकों मे वासवदत्ता

मान किया जा सकता है कि इस प्रकार की आख्यायिकाएँ बहुत पहले भी रही होंगी। परन्तु उनका कहीं पता नहीं चलता। वासवदत्ता की कथा के आधार पर भास कवि की स्वप्नवासवदत्ता, तथा 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' नाम की दो नाटक-रचनाएँ ही प्रसिद्ध थीं और उनमें से भी पहली के कथानक की घटनाएँ दूसरी वाले की दृष्टि से केवल पूरक ही कही जा सकती हैं। 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' की कथा में आता है कि अवन्ति के राजा प्रद्योत ने वत्सराज उदयन के गुणों से आकृष्ट होकर उन्हें अपनी कन्या वासवदत्ता के लिए वर पसन्द किया, किंतु, उनके किसी प्रकार भी राजी न होने पर, इसके लिए छल का प्रयोग किया। उसने एक बार जब उदयन मृगयार्थ नाग वन में गये हुए थे नील हस्ती के प्रदर्शन के प्रलोभन द्वारा उन्हें बंदी बनवा लिया और अंत:पुर में लाये जाकर वे वासव-दत्ता को वीणा वादन की शिक्षा देने लगे। तदुपरांत उदयन के मंत्री यौगं-धरायण ने ऐसी युक्तियों के प्रयोग किये कि उन्हें बंदी की दशा से मुक्ति मिल गई और, वासवदत्ता के साथ क्रमशः प्रणय-सम्बंध स्थापित हो चुकने के कारण, दोनों प्रेमी वहाँ से चुपके से निकल आये। प्रद्योत को, कदाचित्, उनके षड्यंत्र की पूरी खबर भी नहीं लगने पाई और वे दोनों वत्सदेश में पहुंच गए। 'प्रतिज्ञा' वाली कथा यहीं आकर समाप्त हो जाती है और इन

१. 'वासवदत्ता मधिकृत्य कृताऽख्यायिका वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, उर्वशी, नच-भवति भैमरथी' (४-३-८७२)।

कहानियों के स्तर तक ला दी गई हैं और उनके पुराने प्रसगों में परिवर्तन आ जाने से भी, ऐसा हो गया है। इन प्रेम-कथाओं में बौद्ध जातकों तथा जैन-धर्म-कथाओं वाले मध्यमवर्ग तथा निम्नवर्ग वाले व्यक्तियों की भी चर्चा आई है। इनमें जनसाधारण का हाथ यहाँ तक अधिक है कि यहाँ पर एक मछुआ वा एक चाडाल तक किसी राजकुमारी के प्रति प्रेमासक्त हो जाता है और वह इस प्रकार सोचने का साहस भी करता है कि उसका विवाह तक सम्पन्न हो जाय। यह बात दूसरी है कि सामाजिक भेदों का प्रचार हो जाने के कारण, कथाकार को ऐसे उदाहरणों में किसी-न-किसी पूर्व-जन्म के सस्कारों का समाधान उपस्थित करना पड़ता है और वे अग्निदेव अथवा आकाशवाणी से सहायता लेते हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार के कथानकों के प्रयोग में आ जाने मात्र से भी, हमें इस ओर एक बड़ा परिवर्तन दीख पड़ता है। कथा-साहित्य के इन आख्यानों को हम कभी-कभी आत्मचरितों के रूप में कहे जाते हुए पाते हैं अथवा कभी-कभी वे किसी-न-किसी प्रकार की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए दृष्टान्त के रूप में भी, दिये जाते हैं। परन्तु जहाँ कहीं वे किसी मूल कथा के क्रम में उसकी घटनाओं आदि का स्पष्टीकरण करने के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं वहाँ वे उपदेशों का भी काम करते हैं। कभी-कभी इन प्रेम-कथाओं में बौद्ध या जैन प्रेम-कहानियों की भाँति प्रेमभाव दबा-सा भी प्रतीत होता है, किन्तु ऐसे प्रसग कम आये हैं। जैनकवि हरिषेण के 'बृहत्कथाकोश' में कहीं-कहीं पौराणिक कथाओं तक पर भी जैन प्रभाव लक्षित होता है।[१]

उनकी शैली

कथा-साहित्य के ही अन्तर्गत कुछ ऐसी भी रचनाएँ आती हैं जिनका उद्देश्य अधिकतर काव्य-कौशल का प्रदर्शन रहा करता है। इनकी रचना 'बृहत्कथाश्लोक सग्रह', 'बृहत्कथामञ्जरी' अथवा 'कथासरित्सागर' से पहले हो गई रहती है। इनकी विशेषता यह है कि जिस कथा को ये प्रधान-रूप में लेकर उसके अन्तर्गत अन्य कथाएँ गुंफित करती हैं उसी के नाम से ये अभिहित भी हुआ करती हैं तथा उसमें गुंफित की गई कथाओं का उसके साथ बहुत स्पष्ट और प्रत्यक्ष सम्बध भी रहता है। इनमें कथा का आरम्भ होकर उसकी विविध घटनाओं का प्रवाह चलता है, उसमें समय-समय पर कतिपय बाधाएँ उपस्थित होती रहती हैं और तदनुसार

१ 'बृहत्कथाकोश' (भारतीय विद्याभवन, बबई, स० १६६६) पराशर सत्यवती प्रसग (पृ० २३१), रुक्मिणी प्रसग, पृ० (पृ० २७६-८०). आदि।

उन्हें दूर करने के लिए युक्ति के रूप में वैसी उपकथाएँ निर्मित कर ली जाती हैं। इस प्रकार की शैली के कारण कथा के अन्तर्गत एक विचित्र पौराणिक वातावरण उपस्थित हो जाता है जिसके चमत्कार प्रदर्शन द्वारा पाठक व श्रोता के लिए अधिक रोचकता भी आ जाती है तथा सारी कृति सरस और मनोहर रूप धारण कर लेती हैं। ऐसी रचनाओं के दो उत्कृष्ट प्रेमकथात्मक उदाहरण सुबन्धु की 'वासवदत्ता' और बाण की 'कादम्बरी' में मिलते हैं। इन दोनों में से 'वासवदत्ता' के कतिपय पात्रों तथा घटनाओं का ऐतिहासिक होना भी कहा जा सकता है, 'किन्तु 'कादम्बरी' कदाचित् सर्वथा, काल्पनिक बातों से ही भरी हुई है और इसकी रचना-शैली में भी वासवदत्ता' से अधिक काव्य-कौशल का प्रदर्शन दीख पड़ता है।

पतंजलि कृत 'महाभाष्य' के एक स्थल पर वासवदत्ता, सुमनोत्तरा उर्वशी एवं भैमरथी नाम, आख्यायिका के प्रसंग में, आते हैं।[1] इससे अनुमान किया जा सकता है कि इस प्रकार की

भास के नाटकों मे वासवदत्ता

आख्यायिकाएँ बहुत पहले भी रही होंगी। परन्तु उनका कहीं पता नहीं चलता। वासवदत्ता की कथा के आधार पर भास कवि की स्वप्नवासवदत्ता, तथा 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' नाम की दो नाटक-रचनाएँ ही प्रसिद्ध थीं और उनमें से भी पहली के कथानक की घटनाएँ दूसरी वाले की दृष्टि से केवल पूरक ही कही जा सकती हैं। 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' की कथा में आता है कि अवन्ति के राजा प्रद्योत ने वत्सराज उदयन के गुणों से आकृष्ट होकर उन्हें अपनी कन्या वासवदत्ता के लिए वर पसन्द किया, किंतु, उनके किसी प्रकार भी राजी न होने पर, इसके लिए छल का प्रयोग किया। उसने एक बार जब उदयन मृगयार्थ नाग वन में गये हुए थे नील हस्ती के प्रदर्शन के प्रलोभन द्वारा उन्हें बंदी बनवा लिया और अंतःपुर में लाये जाकर वे वासवदत्ता को वीणा वादन की शिक्षा देने लगे। तदुपरांत उदयन के मंत्री यौगंधरायण ने ऐसी युक्तियों के प्रयोग किये कि उन्हें बंदी की दशा से मुक्ति मिल गई और, वासवदत्ता के साथ क्रमशः प्रणय-सम्बंध स्थापित हो चुकने के कारण, दोनों प्रेमी वहाँ से चुपके से निकल आये। प्रद्योत को, कदाचित्, उनके षड्यन्त्र की पूरी खबर भी नहीं लगने पाई और वे दोनों वत्सदेश में पहुँच गए। 'प्रतिज्ञा' वाली कथा यहीं आकर समाप्त हो जाती है और इन

---

१. 'वासवदत्ता मधिकृत्य कृताऽख्यायिका वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, उर्वशी, नन्त्र-भवति भैमरथी' (४-३-८७२)।

दोनों के जीवन की अन्य कई बातों पर इससे कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता।

'स्वप्नवासवदत्ता' नामक दूसरे नाटक की कथा का आरंभ इसके अनंतर वाली घटनाओं से होता है। उदयन जिस समय वासवदत्ता के साथ आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करते रहते हैं, वही उनके राज्य के कुछ भाग पर आरुणि नाम का एक शत्रु अपना अधिकार जमा लेता है और उसे वहाँ से भगाने के लिए उन्हें मगधराज दर्शक की सहायता अपेक्षित होती है। उसके लिए यह आवश्यक भी हो जाता है कि उदयन को मगधराज की बहन पद्मावती के साथ विवाह करना पड़ेगा जो वासवदत्ता के जीवित रहते सम्भव नहीं जँचता। अतएव यौगंधरायण रूमण्वद् आदि अमात्यों तथा स्वयं वासवदत्ता की भी सम्मति से यह प्रख्यापित कर देता है कि वासवदत्ता मर चुकी है। जनरव इस प्रकार का प्रचलित होता है कि लावाणक ग्राम में आग लग जाने के कारण उसमें वासवदत्ता और यौगंधरायण दोनों दग्ध हो गए हैं। इधर यौगंधरायण वासवदत्ता को अवंति की स्त्री घोषित-कर उसके साथ परिव्राजक बनकर निकल पड़ता है तथा उसे कहीं रख देने की युक्ति सोचकर वह पहले मगध के निकटवर्ती एक तपोवन में चला जाता है। वहाँ वह वासवदत्ता को अपनी प्रोषित भर्तृका भगिनी के रूप में पद्मावती के आश्रम में रखकर कहीं अन्यत्र चला जाता है। उधर मगधराज, पद्मावती के उदयन के साथ विवाहार्थ, प्रयत्नशील होता है और उसे सफलता भी मिलती है, किंतु उदयन वासवदत्ता के विरह का अनुभव सदा करता रहता है इस कारण वह एक बार पद्मावती के यहाँ भी स्वप्न में उसकी स्मृति में बड़-बड़ाने लग जाता है। उसे फिर बड़ा मनस्ताप होता है और वह किसी प्रकार दर्शक की सहायता से शत्रुविजय के ही बहाने कुछ शांत हो पाता है। फिर भी उसे रह-रहकर कष्ट का अनुभव होता रहता है जिसको दूर करने के लिए वासवदत्ता की माँ उसका चित्रफलक भेज देती है जिसे देखकर पद्मा-वती को संदेह होने लगता है कि कहीं वह उस कन्या की ही प्रतिकृति न हो जिसे अवंति का परिव्राजक उसके न्यास में रख गया है। तब तक, दोनों के सादृश्य की परीक्षा करते समय, यौगंधरायण भी आ जाता है और वास्तविक रहस्य को प्रकट कर देता है। अंत में राजा उदयन वासवदत्ता एवं पद्मावती दोनों को साथ लेकर अपने श्वसुर से मिलने उज्जयिनी चला जाता है।

परंतु यह कथा सुबंधु की रचना में ठीक इसी रूप में नहीं दीख पड़ती। सुबंधु की रचना की कथा का सारांश यह है—चिंतामणि राजा का

सुबंधु की वासवदत्ता

एक सुन्दर पुत्र कंदर्पकेतु नाम का है जो किसी दिन स्वप्न में एक परम सुन्दरी कन्या को देखता है। दूसरे दिन वह अपने मित्र मकरंद के साथ उसे ढूँढ़ने निकल पड़ता है और विंध्य के जंगलों में जब वह लेटा रहता है उसे सुनाई पड़ता है कि एक मैना अपने पति से किसी शृङ्गार शेखर नामक राजा की सुन्दरी पुत्री वासवदत्ता का परिचय बतला रही है। वह कह रही है कि किस प्रकार वासवदत्ता ने स्वप्न में किसी सुन्दर युवक को देखा है और उस पर मोहित होकर अपनी सखी तमालिका को उसने अपने प्रिय पात्र को इसका पता देने के लिए भेजा है। फिर कंदर्पकेतु और वासवदत्ता पाटलिपुत्र में मिल जाते हैं, किंतु उस प्रेमी को यह जानकर अत्यंत दुःख होता है कि उसकी प्रेमपात्री किसी पुष्पकेतु नामक विद्याधर के साथ ब्याही जाने वाली है। इसीलिए ये दोनों वहाँ से चुपके, एक जादू के घोड़े पर भागकर विंध्य की ओर ही चले जाते हैं। वहाँ जब कंदर्प केतु सोया रहता है वासवदत्ता वहाँ से चली जाती है और वह जागने पर बहुत घबड़ाता है। परंतु आकाशवाणी के इस आश्वासन पर कि दोनों का पुनर्मिलन होगा, वह आत्महत्या नहीं करता। अंत में बहुत घूमने-घामने पर वह किसी एक मूर्ति के सहारे उसे पा लेता है, क्योंकि उसका स्पर्श पाते ही वह वासवदत्ता होकर जी उठती है और फिर दोनों कंदर्पकेतु की राजधानी में सुखपूर्वक रहने हैं। इस प्रकार उक्त नाटकों वाली कथा के साथ इसका साम्य नहीं दीख पड़ता। केवल नायिका का नाम एक समान 'वासवदत्ता' है और दोनों कथाओं के प्रेमी, नायिका के पिता के अनजाने में ही, नायक के घर पहुँच जाते हैं। किंतु नाटक में जहाँ वासवदत्ता का पिता उसे उदयन को दे देना चाहता है और इसके लिए प्रयत्न भी करता है वहाँ यहाँ पर वह किसी अन्य के साथ विवाह करना चाहता है। पता नहीं कथा-साहित्य के सर्वप्रथम समझे जाने वाले कवि गुणाढ्य ने इस कथा के सम्बंध में अपनी 'बृहत्कथा' में क्या दिया था। 'बृहत्कथामञ्जरी' तथा 'कथासरित्सागर' के रचयिताओं ने उपर्युक्त नाटकों वाली कथा को ही अपने लिए आधार माना है,[1] किंतु इसके मूल का पता नहीं।

बाण की 'कादम्बरी' की कथा 'वासवदत्ता' वाली कथा से कहीं अधिक गुंफित प्रतीत होती है और उसके भी किसी आधार का पता नहीं चलता।

१. देखिए 'बृहत्कथामञ्जरी' द्वितीय लम्बक और तृतीय लम्बक तथा The Ocean of Story (ch. 16 st. 16).

कादम्बरी की कथा

इसकी चर्चा, विभिन्न नामों के साथ, 'बृहत्कथा-मञ्जरी' तथा 'कथासरित्सागर' में आती है, किन्तु ये दोनों पीछे की रचनाएँ हैं। 'कादम्बरी' की कथा का संक्षिप्त साराश इस प्रकार दिया जा सकता है—वेत्रवती नदी तटवर्ती विदिशा नाम के नगर वाले शूद्रक के दरबार में एक चाडाल-कन्या एक तोते को लेकर आती है और पूछने पर कहने लगती है कि यह पक्षी अपने शिशु-काल में ही अपने माता-पिता से वंचित हो गया था और जब इसे हारीत अपने पिता जाबालि के यहाँ ले गए तो उन्होंने इसका परिचय दिया। "सुना है कि उज्जैन के तारापीड नामक राजा को चन्द्रापीड नामक पुत्र हुआ और उसके मंत्री शुकनास के घर वैशम्पायन का जन्म हुआ। दोनों आपस में मैत्री रखते थे और चन्द्रापीड एक इन्द्रायुध नाम का घोड़ा तथा एक पत्रलेखा नाम की कन्या भी पा गया था। एक दिन जब दो किन्नरों का पीछा करता हुआ वह अपना मार्ग भूल जाता है तो उसे किसी झील के किनारे कोई महाश्वेता नाम की विरहिणी मिल जाती है। वह किसी ऋषियुवक पुण्डरीक को देखकर उस पर आसक्त हो चुकी रहती है और वह मर गया भी रहता है। जब वह अपनी कथा चन्द्रापीड से कहने लगती है तो वह संज्ञाहीन हो जाया करती है। अंत में, उसे बतलाती है कि पुण्डरीक के शव के फिर जी जाने की आशा में ही वह जीती है। प्रसंगवश वह अपनी सखी कादम्बरी का भी परिचय देती है जिसका प्रण है कि बिना अपनी सखी का विवाह हुए वह भी ऐसा नहीं करेगी। महाश्वेता फिर दोनों को मिला भी देती है, किंतु जब तक वे दोनों वचनबद्ध भी नहीं हो पाते तब तक वह पत्रलेखा को वहीं छोड़कर पिता की आज्ञा से चला जाता है। उज्जैन लौट आने पर वह विरह-पीड़ित रहा करता है और केवल पत्रलेखा के पत्र व्यवहार द्वारा ही वह चैन पाता है। उधर वैशम्पायन भी उक्त झील के ही पास रह गया रहता है। इस कारण वह उसे लेने जाता है, किंतु उसे पता चलता है कि वह महाश्वेता के प्रेम में पड़ जाने के कारण, शाप से मर चुका है। इस पर अपने मित्र के वियोग में चन्द्रापीड भी मर जाता है। महाश्वेता और कादम्बरी वहीं पर चन्द्रापीड के शव की रक्षा करती रहती हैं तब तक वहाँ तारापीड और शुकनास भी आ जाते हैं।" जाबालि की कथा यहीं समाप्त हो जाती है और पता चलता है कि तोता इतना ही सुनकर उड़ गया था और फिर पकड़ा गया था, जिस दशा में वह शूद्रक के यहाँ लाया गया। यहाँ चाण्डाल-कन्या अपने को तोते की माँ लक्ष्मी बतलाती है और उसके

परामर्श से राजा और तोता दोनों मर जाते हैं। इनके मरते ही उधर चंद्रापीड और पुंडरीक दोनों ही जी उठते हैं और सभी का पारस्परिक मिलन भी हो जाता है तथा चंद्रापीड पुण्डरीक को अपने राज्य के सिंहासन पर बिठा देता है।

बाण की 'कादम्बरी' में इस कथा को बहुत विस्तार दिया गया है और वह रचना अनेक प्रकार के सुन्दर वर्णनों से भी भरी हुई है। सुबंधु ने भी अपनी 'वासवदत्ता' में यही किया है, किंतु बाण का रचनाकौशल और भी अधिक उल्लेखनीय है। इन रचनाओं में एक विशेषता इस रूप में भी दीख पड़ती है कि इनकी भाषा जान-बूझकर आडम्बर-पूर्ण बनाई गई है। कथा की घटनाओं में भी सर्वत्र चमत्कार एवं रोचकता लाने के प्रयत्न किये गए हैं जिनके कारण पाठकों और श्रोताओं को उनकी ओर आकृष्ट होते देर नहीं लगती। फिर भी 'कादम्बरी' के अंतर्गत बार-बार पाये जाने वाले शापों तथा पुनर्जन्मों के उल्लेखों द्वारा प्राय. जी ऊब जाता है। ऐसा लगता है कि इस प्रकार की बातें केवल कथा के मूल रूप को एक व्यापक, किंतु साथ ही एक सुसंगत ढाँचे में लाने के लिए गढ़ दी गई हैं। प्रेमभाव का वह रूप जो एक शुद्ध और स्वाभाविक वातावरण में विकसित होता देखा जाता है यहाँ उपलब्ध नहीं। यह जनसाधारण के समाज में लक्षित होने वाले प्रेम से किसी पृथक् वर्ग का जान पडता है और कभी-कभी कृत्रिम एवं काल्पनिक तक प्रतीत होने लगता है। अपने इस रूप में इन रचनाओं के प्रेमाख्यानों के सभी पात्र केवल किसी लोकोत्तर प्रेम का अनुभव करने ही के लिए देह धारण करते समझ पड़ते हैं। 'कादम्बरी' के अंतर्गत पुनर्जन्मों का बाहुल्य देखकर जैनियों की धर्म-कथाओं का स्मरण हो आता है; किंतु उन रचनाओं में जहाँ इस प्रकार की घटनाओं का कारण बहुधा कर्मों का प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखलाया गया रहता है वहाँ यहाँ पर शापों द्वारा यह काम हुआ करता है। जैन-कवि हरिभद्र की 'समराइच्च कहा' नामक रचना में 'निदान' अर्थात् बुरे कर्म को इन पुनर्जन्मों का कारण बतलाया गया है। उसकी मूलकथा में अग्निशर्मा के गुणसेन के प्रति क्रोध को निदान कहा गया है जिसके कारण उसे जन्म लेना पडता है और वह लगा भी रहता है। इसी प्रकार उस कथा के दूसरे 'भव' में निदान का काम 'माया' (छल) करती है, तीसरे 'भव' में 'लोभ' और चौथे में 'अनृत' करते

बाण की कादम्बरी
आलोचना

हैं।[1] किंतु 'कादम्बरी' में इस प्रकार की बातें नहीं पाई जातीं, प्रत्युत् कहीं महाश्वेता, वैशम्पायन को शाप देती है तो कहीं पुण्डरीक वही चन्द्रमा के साथ करता है और कपिंजल किन्नरों द्वारा शप्त कर दिया जाता है जिससे बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं और उत्सुकता के बढ़ने का अवसर भी उपस्थित होता है।

प्रेमाख्यानों के काव्यात्मक रूप

कथा-साहित्य के अतिरिक्त प्रेमाख्यानों का उपयोग संस्कृत, प्राकृत, एवं अपभ्रंश भाषाओं के विभिन्न काव्य-ग्रंथों में भी हुआ है। उनके कथानकों को लेकर कतिपय उत्कृष्ट महाकाव्यों, नाटकों तथा चम्पू ग्रंथों की रचना हुई है। नाटकों में से भास कवि के 'प्रतिज्ञा यौगंधरायण' एवं 'स्वप्नवासवदत्ता' तथा इसी प्रकार कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' एवं 'विक्रमोर्वशीयम्' की चर्चा की जा चुकी है। कालिदास का एक तीसरा नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्', भवभूति का 'मालती माधव' हर्ष की 'रत्नावलि नाटिका', कालिदास का खंडकाव्य 'मेघदूत', श्रीहर्ष का महाकाव्य 'नैषधीयम्' तथा त्रिविक्रम का 'नल चम्पू' आदि अनेक अन्य रचनाएँ भी गिनाई जा सकती हैं तथा उनके आधार पर उनके आधारभूत प्रेमाख्यानों का मूल्यांकन भी किया जा सकता है। कथा-साहित्य के 'वासवदत्ता' और 'कादम्बरी' की भाँति इन रचनाओं में भी कथा की अपेक्षा वर्णन-शैली या रचना-शैली की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है। कथा-साहित्य में तो रचयिता प्राय कथा के स्वाभाविक क्रम तथा प्रासंगिक घटनाओं को पूरा महत्त्व भी देता है, किंतु महाकाव्यों, नाटकों अथवा चम्पू-ग्रंथों के कवि सदा ऐसा करते नहीं जान पड़ते। ये उनके उन्हीं अंशों का उपयोग करते हैं जिनके विस्तृत वर्णन द्वारा वे पाठकों, श्रोताओं अथवा दर्शकों पर अधिक से-अधिक प्रभाव डाल सकते हैं। ये बहुधा चुनी गई सामग्री का ही अपेक्षाकृत अधिक उपयोग करते हैं और शेष अंश का संक्षिप्त वर्णन अथवा संकेत-मात्र ही करके छोड़ देते हैं। ऐसे काव्य-ग्रंथों की रचना के लिए कुछ विशेष नियम भी हुआ करते हैं जिनका पालन उनके लिए आवश्यक हुआ करता है, किंतु कथा-साहित्य में ऐसा कठोर बंधन नहीं है। कथा-साहित्य में विविध संवादों के आधार पर कथा का कलेवर प्राय बढ़ा ही दिया जाता है, उसे संकुचित नहीं किया जाता। काव्यात्मक प्रेमाख्यानों

---

१ 'समराइच्च कहा' (कलकत्ता, सन् १९०९ ई०) Dr Jacobi's Introduction, P XIX.

के सम्बंध में एक यह बात भी उल्लेखनीय है कि उनमें साहित्यिक गुणों की प्रचुरता आ जाने के कारण, उनका मूल रूप भी जन-साधारण वाले स्तर के लिए सदा बोधगम्य नहीं रहने पाता। इस प्रकार, उनके महत्त्व में उतनी व्यापकता नहीं आ पाती।

लोकगाथात्मक प्रेमाख्यान

इस प्रकार भारतीय प्रेमाख्यानों की परम्परा, अपभ्रंश भाषा में रचनाओं के होने लगने तक, क्रमशः विकसित होती हुई, सीधी सादी एवं अकृत्रिम कृतियों से लेकर साहित्यिक नियमों द्वारा बँधे हुए काव्य-ग्रन्थों तक के द्वारा, उदाहृत होती चली आई। परंतु जिस समय से आधुनिक प्रांतीय भाषाओं का विकास आरम्भ हुआ और बहुत सी जन-साधारण की बोलियों को भी रचनाओं का माध्यम बनने का अवसर मिलने लगा, मौखिक रूप में प्रचलित रहने वाली लोकगाथाएँ भी लिपिबद्ध होने लग गईं। फलतः जो प्रेमाख्यान उन दिनों तक साधारण जनता में ही प्रसिद्ध थे अथवा कभी-कभी वे भी जिनके कुछ रूप संस्कृत व प्राकृत रचनाओं में प्रयुक्त हो चुके थे लेखकों एवं कवियों की दृष्टि आकृष्ट करने लगे और उनका महत्त्व बढ़ने लगा। ऐसे बहुत से प्रेमाख्यान पहले अपभ्रंश के विविध रूपों में ही स्थान पाते रहे, किंतु फिर प्रांतीय बोलियों ने भी उन्हें अपनाना आरंभ किया और जिस समय तक उन पर संस्कृत अथवा प्राकृत काव्यों का प्रत्यक्ष प्रभाव न पड़ा ये उनके प्रमुख विषय भी बने रहे। इसीलिए हम देखते हैं कि प्रत्येक प्रांतीय भाषा के आरंभिक साहित्य में हमें या तो 'महाभारत'-'रामायण' जैसे धर्मग्रंथों के अनुवाद मिलते हैं अथवा कुछ ऐसी रचनाओं का ही पता चलता है जो साधारण जन-समाज के अनुरूप हैं। इनमें कहीं-कहीं खेतिहरों की कहावतें मिलती हैं तो कहीं लोकगीत मिला करते हैं और उनके भीतर ठेठ जीवन के रूप की अभिव्यक्ति भी हुआ करती है। इन लोकगीतों में ही हमें बहुधा वे प्रेमाख्यान भी मिल जाया करते हैं जिनमें प्रेम-भाव की व्यंजना अत्यंत मौलिक और स्वाभाविक ढंग से की गई है। इनकी समानता केवल वैदिक युगीन संवादों अथवा बौद्धों के जातकों में ही उपलब्ध कही जा सकती है। ऐसे लोकगीतों का कोई रचना-काल निश्चित नहीं किया जा सकता और न रचयिताओं का ही पता चल सकता है। मौलिक मानवीय प्रवृत्तियों

लोकगाथात्मक प्रेमाख्यान

का यथातथ्य वर्णन करने के नाते वे सर्वकालीन हैं और, भाषा की विभिन्नता के होते हुए भी, सर्वदेशीय हैं।

उनका उदयकाल

जान पड़ता है कि उत्तरी भारत की ऐसी लोकगाथाओं का निर्माण अधिकतर उस युग में ही हुआ जब बाहर से आकर मुस्लिम जाति अपना प्रभाव क्रमश जमाने लगी थी और यहाँ की राजनीतिक एव सामाजिक स्थिति में उथल-पुथल थी। पश्चिम की ओर गुजरात, राजस्थान एव पजाब जैसे प्रदेशों में तथा पूर्व में बगाल तक मुसलमानों के आक्रमण का प्रभाव स्पष्ट हो चुका था और परिस्थिति के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में अपभ्रंश की रचनाएँ आरम्भ हो चुकी थीं। स्थानीय बोलियों ने भी ऐसे ही अवसर पर अपना कार्य करना आरम्भ किया और उनमें लोक-साहित्य का निर्माण होने लगा। इसीलिए हम देखते हैं कि उपलब्ध रचनाओं के वर्ण्य विषय, जहाँ तक वे सामाजिक अथवा सास्कृतिक बातों से सम्बंध रखते हैं अधिकतर वे ही हैं जो भारतीय इतिहास के पूर्वमध्यकालीन युग के अनुकूल हैं। यदि वे 'रामायण' 'महाभारत' अथवा किन्हीं पुराणों की बातों की चर्चा करते हैं तो वह भी तत्कालीन रंग में ही रँगी हुई दीख पड़ती है। जान पड़ता है कि उस समय की साधारण जनता जिसकी विचारधारा अथवा जीवनचर्या में कोई विशेष अन्तर नहीं था लगभग एक ही साथ जागृत हो उठी थी और नये माध्यमों के प्रयोग का अवसर पाकर अपने भावों की अभिव्यक्ति भी प्राय एक ही प्रकार से करने लग गई थी। उत्तरी भारत की प्रातीय भाषाओं के मौखिक साहित्य में जो लोकगीत आज उपलब्ध हैं उनकी कई बातों में हमें आश्चर्यजनक साम्य दीखता है। दक्षिणी भारत के सुदूर तमिल प्रात में इस प्रकार की घटना कुछ पहले ही हो चुकी थी। वहाँ पर ऐसी रचनाओं का आरम्भ कदाचित् उस काल में ही हो चुका था जब उत्तर की ओर से वहाँ क्रमश पहुँचने वाले आर्यों का प्रभाव बढ़ने लग गया था। वहाँ की द्रविड़ बोलियों ने भी, लगभग उत्तरी भारत जैसी परिस्थिति में ही, अपने ऐसे साहित्य का निर्माण-कार्य आरम्भ किया था और ईसा के पूर्व प्राय पाँचवीं शताब्दी से लेकर उनके पीछे दूसरी-तीसरी तक वहाँ ऐसे बड़े-बड़े काव्यों तक की रचना होने लगी थी।

तमिल भाषा के उपलब्ध प्राचीनतम व्याकरण-ग्रंथ 'तोलकाप्पियम' पर लिखने वाले भाष्यकारों के उल्लेखों से पता चलता है कि पाड्यों के देश में पहले तीन साहित्य-परिषदों की स्थापना हुई थी और उनमें से तीसरी

तमिल के प्रेमाख्यान

के ग्रंथ अभी तक मिलते हैं। ये परिषदें 'संघ' के नाम से प्रसिद्ध थीं और इनमें से सर्वप्रथम की स्थापना का समय कदाचित् ईसा के पहले की पाँचवीं शताब्दी था।[1] तीसरे संघ की स्थापना का काल, इसी प्रकार ईसा के पूर्व की द्वितीय शताब्दी मानी जाती है। इस संघ के उपलब्ध ग्रंथों के तीन संग्रह कहे जाते हैं जिनमें से 'एट्टुतोगै' की बहुत सी रचनाओं का प्रमुख वर्ण्य-विषय प्रेम है। इसी प्रकार, उसके दूसरे संग्रह 'पत्तुपाट्टु' में संगृहीत 'कुरिंजिपट्टु' के अंतर्गत एक प्रेम-कहानी भी आती है। एक सुन्दरी ग्रामीण युवती किसी अन्य स्त्री के साथ अपने ज्वार के खेत की रखवाली करने के लिए भेजी जाती है। वहाँ कोई आखेट के लिए निकला हुआ राजपुरुष पहुँच जाता है, उसे देखते ही प्रेमासक्त होता है और वे दोनों गांधर्व-विवाह की रीति से एक दूसरे के हो जाते हैं। उस दिन से वे दोनों प्रतिदिन मिला करते हैं, किंतु उनके इस सम्बध का पता उस युवती के माता-पिता को नहीं चल पाता। एक बार जब उसे पीली और कृशांगी देखकर उसकी माता संदेह करती है तो उपर्युक्त स्त्री उसे बतलाती है कि क्या हो चुका है। इस प्रकार भेद के खुल जाने पर ही उन दोनों का सम्बध फिर सामाजिक रूप में भी दृढ़ हो पाता है। 'कुरिंजिपट्टु' का रचयिता कपिलर कवि है जिसके विषय में कहा जाता है कि एक बार जब वहाँ पर कोई उत्तरी भारत का राजा गया था और उसने तमिल काव्य की निंदा की थी उस समय उसके जवाब में कपिलर ने यह रचना प्रस्तुत की थी जिससे वह राजा अत्यंत प्रभावित हुआ था। उस राजा का नाम 'पिरकत्तण' बतलाया जाता है और कहा जाता है कि उसने फिर स्वयं भी तमिल सीखकर कोई कविता लिख डाली थी।[2] इस प्रेमाख्यान को ठेठ लोकगाथा कहने में आपत्ति की जा सकती है क्योंकि इसके रचयिता के नामादि का पता है। किंतु, कथानक की सरलता एवं भाव-चित्रण की सादगी तथा घटनाओं में किसी पेचीदगी के अभाव को भी देखते हुए, हम इसे 'बौद्ध-जातक' की कहानियों की कोटि में रख सकते हैं। एक राजपुरुष के किसी किसान की कन्या के फेर में पड़ जाने की कथा हमें 'कट्ठहारि जातक' की लकड़हारिन के प्रति प्रेम का भी स्मरण दिला देती है।

---

१ V R Ramachandra Dikshitar Studies in Tamil Literature and History (University of Madras, 1936) p 21

२ वही, p 36, 55

तमिल के दो महाकाव्य

इसी प्रसंग में हम यहाँ, तुलना की दृष्टि से, तमिल भाषा के उन दो प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथों की भी चर्चा कर देना चाहते हैं जिनमें प्रेम-कथा का विषय बहुत विस्तार ले लेता है तथा जिनमें पूरे वर्णन के लिए विविध घटनाओं की सृष्टि करनी पड़ती है। इनमें से प्रथम का नाम 'शिलप्पधिकारम्' और दूसरे का 'मणिमेखलै' है और ये दोनों एक-दूसरे के उसी प्रकार पूरक माने जाते हैं जिस प्रकार भवभूति के नाटक 'महावीर-चरित' एवं 'उत्तर चरित' समझे जाते हैं। 'शिलप्पधिकारम्' की कथा के अनुसार चोल नरेशों की राजधानी में किसी भासात्तुवाण नामक एक धनी वैश्य का पुत्र कोवलण था जिसे एक दूसरे धनी वैश्य मानाइकण की पुत्री कण्णकी ब्याही थी और दोनों का जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता था। अपने परिवार के उच्चस्तरीय होने के कारण कोवलण प्रचलित सामाजिक मनोरंजनों में भाग लेता था। एक दिन जब वह नगर में किसी प्रसिद्ध नर्त्तकी माधवी का नृत्य देखने गया हुआ था वह उसकी कला के साथ-साथ उसके सौंदर्य पर भी मुग्ध हो गया। वह फिर क्रमश उस वारागना के ही पास रहने लगा और उसने अपनी सारी सम्पत्ति भी उसे भेंट कर दी। परंतु एक दिन जब उससे और माधवी से किसी बात पर मतभेद हो गया और वह विषादपूर्ण होकर घर लौटा तो उसने फिर अपनी साध्वी पत्नी को ही अपनाना चाहा। इधर अपने घर में कुछ बचा न रहने के कारण उसने व्यापार करने की भी ठानी और दोनों एक साथ घर से निकल पड़े।

सती कण्णकी

कण्णकी परम साध्वी स्त्री थी और जब वे दोनों कोई धंधा आरम्भ करने पाड्यों की राजधानी की ओर चले तथा उस नगर में पहुँचे तो उसने कोवलण को अपने बहुमूल्य नूपुरों के जोड़े में से एक दे दिया कि उसे बेचकर वह द्रव्य प्राप्त करे। किन्तु संयोगवश उन्हीं दिनों वहाँ की रानी का भी एक नूपुर चोरी जा चुका था जिसे किसी सुनार ने चुराया था। इसलिए जब कोवलण कण्णकी के नूपुर को उसके यहाँ बेचने के लिए ले गया तो उसे एक उपाय सूझा और उसने राजा से जाकर कहा कि रानी के नूपुर का चोर पकड़ा गया है जिसके अनुसार कोवलण बंदी बना और राजाज्ञा द्वारा उसका वध भी कर दिया गया। सती कण्णकी को जब इस बात का पता चला तो वह बहुत घबड़ाई, किंतु साहस करके वह फिर वहाँ के राजा के पास गई तथा बड़ी योग्यता के साथ एवं तथ्य के भी बल पर उसने अपने पति

की निर्दोषता भी सिद्ध कर दी। राजा को जब अपनी अयोग्यता का भान हुआ कि मैंने क्यों न पहले जाँच कर ली थी तो वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर गया और उसका भी देहान्त हो गया। फिर भी कण्णकी का क्रोध कम न हुआ और उसके शाप से सारा मथुरा नगर जलकर भस्म हो गया। कण्णकी अपने सतीत्व के बल से स्वर्ग पहुँची और उसके स्मारक रूप में एक मंदिर बना जिसके लिए हिमालय से पत्थर मँगवाये गए। 'शिलप्पधिकारम्' चेर नरेश के भाई इलंगो की रचना है जिन्होंने अपनी युवावस्था में ही जैन-धर्म ग्रहण कर लिया था और यह भी संघकालीन ही कही जा सकती है।[1] इस काव्य-रचना की प्रमुख विशेषता सतीत्व के प्रभाव का प्रदर्शन जान पड़ती है और प्रेमासक्ति का दुष्परिणाम भी इसमें दीख पड़ता है जिससे सूचित होता है कि इसके रचयिता के धार्मिक विचारों का प्रभाव इस पर बिना पड़े नहीं रह सका है।

तमिल भाषा के उपर्युक्त दूसरे काव्य-ग्रंथ की कथा का सारांश इस प्रकार है : जिस समय माधवी को कोवलण की हत्या का समाचार मिला वह बहुत उदास हो गई और उसने बौद्ध धर्म अपना लिया। कोवलण एवं माधवी से उत्पन्न एक लड़की थी जिसका नाम मणिमेखलै था और उसने भी अपनी

मणिमेखलै

माता के अनुसरण में बौद्ध धर्म अपना लिया था। वह प्रतिदिन फुलवारी में जाकर फूल तोड़ लाया करती थी। एक दिन उसे देखकर उदयकुमारण नामक राजकुमार मोहित हो गया। पर मणिमेखलै किसी दिन मणिपल्लव द्वीप में जा पहुँची जहाँ बुद्ध भगवान् की चरण-पादुका थी और जहाँ उसे पता चला कि उदयकुमारण राजकुमार उसके पूर्व जन्म में उसका पति रह चुका है। किन्तु अपने यहाँ लौटने पर भी वह बराबर परमार्थकारी काम करती रही और किसी कायशण्डिकै के नाम से विख्यात हो गई तथा उदय-कुमारण इस बात का पता पाकर उसके पीछे लगा रहा। एक दिन जब वास्तविक कायशण्डिकै किसी उद्यान में आई थी उसे वह भूल से अपनी प्रेमपात्री समझ बैठा और उसे आलिंगन करने दौड़ा जिस पर उसके पति ने राजकुमार की हत्या कर दी। इस बात को सुनकर मणिमेखलै भी क्षुब्ध हो गई। उसने सोचा कि मैं ही इस दुर्घटना का मूल कारण हूँ और मुझसे यह बहुत बड़ा पाप हो गया। राजा ने उसे पकड़वा भी मँगवाया, किन्तु रानी के कहने-सुनने पर वह छोड़ दी गई और तब वह अनेक तीर्थों में

१ वही, p 77

भ्रमण करने लगी तथा अंत में उसने अपना जीवन कांची में बिताया। इस कहानी में भी प्रेम-व्यापार की सफलता नहीं दिखलाई गई है प्रत्युत उसे गौण स्थान ही दिया गया है। इसका कवि शात्तणार नामक एक अन्य व्यक्ति था जो इलगो की भाँति जैनधर्मी न होकर बौद्ध था। उसने इसमें सर्वत्र यही प्रयत्न किया है कि किसी-न किसी प्रकार बौद्ध धर्म का महत्त्व सिद्ध किया जा सके। इसके सिवाय, शिलप्पधिकारम्' की भाँति इस काव्य रचना में भी घटनाओं की सख्या बढ़ाकर, अपना उद्देश्य सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। इस कहानी में केवल एक बात का कोई समाधान नहीं दीखता कि जब मणिमेखलै को पता चल गया कि उदयकुमारण उसके पूर्व जन्म का पति है तो एक धार्मिक भावना की स्त्री होकर भी उसने इसे क्यों छिपाया तथा वह फिर उसका पति ही क्यो न बना।

उत्तरी भारत की प्रातीय भाषाओं में राजस्थानी अपने लोकगीतों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। इसकी एक प्रेमगाथा ढोला एव मारवणी से सम्वध रखती है जिनमें ढोला कछवाहा वश के राजा नल का पुत्र था जिसका समय स० १००० के लगभग है। मारवणी पूगल के राजा की कन्या थी। दोनों का विवाह एक ऐतिहासिक घटना है। किन्तु उनके उक्त प्रेमाख्यान के अतर्गत घटनाओं का क्रम एवं प्रेमियों के पारस्परिक व्यवहार आदि के वृत्तात इस प्रकार प्रचलित हो गए हैं कि उनकी कहानी में एक अपूर्व सरसता आ गई है। कथा इस प्रकार है. एक बार जब पूगल देश में अकाल पड़ा तो वहाँ के राजा पिंगल सपरिवार नल के देश नरवर में चले आए। नल के बालक ढोला को देखकर पिंगल की रानी रीझ गई और आग्रह करके उससे अपनी पुत्री मारवणी का विवाह कर दिया। ढोला उस समय केवल तीन वर्ष का था और मारवणी की भी अवस्था डेढ़ वर्ष से अधिक की नहीं थी। इसलिए मारवणी अपने माता-पिता के साथ पूगल लौट गई और तब से कई वर्ष बीत गए। फिर नल राजा ने भी ढोला का दूसरा विवाह मालवा की राजकुमारी मालवणी से कर दिया और दोनों सुखपूर्वक रहने लगे।

राजस्थानी की ढोला-मारवणी कथा

इधर मारवणी जब सयानी हुई तो उसके पिता पिंगल ने उसे बुलाने के लिए कई दूत भेजे जो यहाँ पर मालवणी के सौतियाडाह के कारण एक बार भी ढोला तक पहुँच न सके। उसी समय मारवणी ने एक बार सोते समय स्वप्न में ढोला को

वही

देखा और विरह-यातना से पीड़ित हो गई। घोड़ों के एक सौदागर ने उन्हीं दिनों पूगल आकर बतलाया कि मैं नरवर गया था तथा वहाँ पर ढोला का एक दूसरा ब्याह भी हो गया है। राजा पिंगल ने इस पर कतिपय ढाढियों को नियुक्त किया कि वे जाकर उसका संवाद नरवर के राजा नल से कहें। ढाढियों ने नरवर पहुँचकर वहाँ मालवणी के पहरेदारों को अपने गाने से प्रसन्न कर दिया और वे भीतर उसके महल के नीचे रात-भर गाते रहे। वे वहाँ मारवणी के भेजे गए प्रेम-संदेश का गान करते रहे जिसे श्रवण करके ढोला व्याकुल हो उठा और प्रातःकाल के समय उन्हें बुलाकर उसने सारी बातें जान ली तथा उन्हें आदरपूर्वक विदा भी कर दिया। मालवणी को जब यह पता चल गया तो उसने ढोला का जी बहलाना चाहा, किंतु उसके बार-बार आग्रह करने पर भी वह पूगल जाने पर दृढ़ हो गया। अंत में एक दिन आधी रात को वह मालवणी को सोती हुई छोड़कर चल पड़ा। मालवणी जब उठी तो वह बहुत घबड़ाई और उसने अपने तोते को मनाने के लिए भेजा जिसने यहाँ तक कह डाला कि मालवणी मर गई है। परन्तु ढोला पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सका और मार्ग में फिर एक चारण के भी बहकावे में न आकर, वह पूगल पहुँच गया।

ससुराल में उसका बड़ा स्वागत हुआ और मारवणी के आनन्द का ठिकाना न रहा। पन्द्रह दिनों तक वहाँ रहकर ढोला बहुत से दायज के साथ मारवणी को भी लेकर वहाँ से नरवर के लिए

वही

चला। मार्ग में विराम-स्थल पर किसी सांप ने मारवणी को 'पी लिया' जिस कारण ढोला विलाप करने लगा और वह चिन्ता में जलकर मरने पर उद्यत हुआ। किंतु एक योगिनी के अनुरोध से किसी योगी ने जल छिड़ककर मारवणी को फिर से जीवित कर दिया। फिर आगे ऊमर सूमरा नामक एक व्यक्ति ने जो मारवणी से ब्याह करना चाहता था ढोला से उसे छीनने का उपक्रम किया। ढोला उसके धोखे में पड़ने ही वाला था कि मारवणी ने किसी गायिका से संकेत पाकर अपने ऊंट को जोर से छड़ी से मार दिया और जब ढोला उसे सँभालने गया तो मारवणी ने उसे चुपके-से बतलाकर सचेत कर दिया और दोनों उस पर चढ़कर भाग चले। ऊमर ने उनका पीछा भी किया, किंतु वे उसके हाथ न लग सके और दोनों सकुशल नरवर पहुँच गए। यहाँ आकर ढोला ने अपनी दोनों पत्नियों के साथ आनंदपूर्वक अपना जीवन व्यतीत किया। इस प्रकार कहानी के ऐतिहासिक होने पर भी, प्रबंध में रसात्मकता लाने के लिए,

उस पर पौराणिकता का रंग चढ़ा दिया गया है।• इसकी रचनाएँ अधिकतर मौखिक रूप में ही प्रचलित रही हैं, किंतु इसके अनेक रूपातर भी उपलब्ध हैं। 'ढोला मारूरा दूहा,' 'ढोला मारुवणी दूहा,' 'ढोलै मारूरा दूहा,' 'ढोला मारवणीरा दूहा,' 'ढोला मारूरी वात,' 'ढोला मारूई चउपई' तथा 'वारता ढोलानें मारवणीरी' आदि इसके कुछ ऐसे रूपातर हैं जो उदाहरण में दिये जा सकते हैं।

परतु इस प्रेमाख्यान का प्रचार केवल राजस्थान तक ही सीमित नहीं है। गुजराती में भी इसके कथानक को लेकर कम-से-कम तीन-चार पुस्तकें, केवल १६ वीं १७ वीं शताब्दी की लिखी प्रसिद्ध हैं जिनमें कुशललाभ की रचना महत्त्वपूर्ण है। कुशललाभ एक जैन कवि थे और उन्होंने सभवत. सन् १५६१ में 'मारू ढोला चुपई' की रचना की थी।- इस रचना की भी प्रमुख कथा वही है जिसकी चर्चा ऊपर की गई है, केवल दो-तीन बातों का अंतर है कुशल-लाभ की रचना में मारवणी के पिता पूगल के भी, उसकी मा उमादेवी के साथ विवाह की कथा कही गई है। ढोला से, उसकी माँ द्वारा भी, मारवणी के साथ विवाह की सूचना दिलवाई गई है। ढोला द्वारा किसी चारण से मारवणी के पास अपने आने का सदेश भिजवाया गया है। पूगल में ढोला के आने पर उससे मारवणी की भेंट पहले किसी कुएँ पर ही हो जाती है और मारवणी के सर्पदश द्वारा मर जाने पर उसे पार्वती के साथ स्वय शकर आकर जिलाते हैं। ये अंतर उतने उल्लेखनीय नहीं हैं और न कथा के मूल रूप के ऊपर इनका कोई वैसा प्रभाव ही पड़ता है जिससे प्रेम-कहानी की सरसता में कमी पड़े। स्पष्ट है कि राजस्थानी एव गुजराती में प्रचलित रूपों का कोई एक ही मूल रहा होगा।

उसके अन्य रूप

परतु ढोला की कथा जो छत्तीसगढ़ में प्रसिद्ध है उसका रूप इससे कुछ भिन्न दीख पड़ता है। यहाँ पर ढोलालाल नरहुल के नल का इकलौता पुत्र है और मारू पिंगला के नरेश वेन की पुत्री है। विवाह दोनों का बालकपन में ही हो जाता है, किंतु ढोलालाल का पिता यहाँ अपने पुत्र को रेवा नाम की एक जादूगरनी के भय से छिपाये रहा करता है। लगभग बारह वर्ष व्यतीत होने पर ढोलालाल एक दिन, अपना राज्य देखने की प्रबल इच्छा से, किसी प्रकार बाहर निकलता है और नगर को देखता-देखता वह रेवा के उद्यान तक जा पहुँचता है। वहाँ पर वह रेवा के पालतू तोते का शिकार

छत्तीसगढ़ी रूप

करता है। किंतु रेवा उसके सौंदर्य पर मुग्ध होकर इस घटना से लाभ उठाना चाहती है। वह किसी प्रलोभन में नहीं आना चाहती और अपने ही तोते के लिए हठ करके उससे बार-बार जिलवाना चाहती है। अंत में वह स्वयं उसे इस शर्त पर जिलाती है कि ढोलालाल उसके साथ विवाह सम्बध कर ले। इस प्रकार वह उसी के घर रहने लग जाता है। एक दिन वह उसे नशे में चूर करके भी भागकर अपनी माँ के यहाँ रहना चाहता है, किंतु वह इसे फिर पकड़ ले जाती है।

ढोला की पत्नी मारू इधर सयानी हो जाती है और वह इसकी दशा का पता पाकर किसी तोते के द्वारा अपना संदेश भेजती है। वह तोता ढोलालाल के हाथ पर बैठता है और यह मारू का वही पत्र पढ़ता रहता है कि रेवा आ जाती है और तोता किसी-किसी प्रकार बचता है। यह दशहरे के दिन संध्या तक लौट आने की अनुमति से अपने घर जाता है और फिर लौट भी आता है। एक दिन ढोलालाल फिर रेवा को विषाक्त मिष्टान्न खिलाकर आधी रात को एक 'जुरहा ऊँट' पर भाग निकलता है। किंतु रेवा अपनी माया फैलाती है, और विवश होकर इसके मार्ग में रुक जाने पर ऊंट के भी घुटनों में 'सब्बल' ठोक दी जाती है। उधर मारू अत्यंत व्यग्र हो उठती है और इसे लाने के लिए 'ढोढा बाबा' नामक एक जादूगर को भेजती है जो रेवा के घर पहुँचकर उससे दान माँगने लगता है। किंतु रेवा इस बात को ताड़ जाती है और अपने शरीर में फफोले निकल आने के कारण, ढोढा-बाबा को असफल ही लौट जाना पड़ता है। तब मारू फिर एक तोता भेजती है जिसे पकड़कर रेवा उसे भूनकर खा जाना चाहती है। वह फिर किसी-किसी प्रकार बच पाता है। तोता नाली से होकर भागता है और शंकर के मंदिर तक जाकर वह फिर उड़ना चाहता है कि एक सर्प उसे रोक लेता है। किंतु वह लौटने का वचन देकर उड़ जाता है और वहाँ पिंगला में मारू को समाचार देता है। इधर ढोलालाल फिर एक दिन रेवा के चंगुल से भागता है और अब की बार इसका ऊंट वहाँ पहुँच जाता है। फिर पिंगला में उसका अपूर्व स्वागत होता है और बेन के पुत्रहीन होने से वह वहाँ का भी उत्तराधिकारी बनता है, किंतु रेवा के डर से इधर नहीं आता। इस प्रकार, 'ढोला मारूरा दूहा' के राजस्थानी रूप से यहाँ बहुत कुछ भिन्न कहानी दीख पड़ती है और यहाँ पर न केवल नामों में ही कुछ अन्तर आता है, अपितु सबसे प्रमुख भाग यहाँ पर रेवा जादूगरनी ले लेती

है जिसका उक्त कहानी में कहीं पता न था।

ढोला की इस कथा को ब्रजभाषा की लोक-गाथाओं में भी स्थान मिला है, किंतु वहाँ पर यह और भी विचित्र ढंग की है। वहाँ पर जो कहानी मिलती है उसके अनुसार नरवर का राजा पिरथम है जिसकी पत्नी मंझा है। जब उसे गर्भ रहता है तो वह कलंकित बनाकर घर से निकाल दी जाती है कि उसकी आँखें न रहने पावें। परन्तु वह जंगल में छोड़ दी जाती है जहाँ नल जन्म लेता है। नल को फिर उसकी माता के साथ कोई वणिक अपने घर ले जाता है और उसे अपना भाजा बना लेता है। फिर कुछ दिन पीछे जब सेठ के दो लड़के व्यापार करने जहाज से जाते हैं तो उन्हें भौमासुर राक्षस की लड़की की छोड़ी हुई पासे की एक गोट एक द्वीप में मिल जाती है, जब वे उसे लाकर राजा पिरथम की भेंट करते हैं तो वह उनसे अन्य गोटें भी माँग बैठता है और छ महीनों का समय मिलता है। अब की बार नल इस भार को लेकर जहाज से जाता है और उसी द्वीप पर ठहरता है। वहाँ पर उसे एक बुढ़िया मिलती है जो भौमासुर की पुत्री मोतिनी का पता देती है और नल दुर्गा की सहायता से एक पत्थर हटाकर दुर्ग में प्रवेश करता है। दोनों एक-दूसरे को देखकर मोहित हो जाते हैं और मोतिनी उसके साथ प्राय पासे खेलती रहती है। एक दिन मोतिनी अपने पिता से पूछती है कि आपके प्राण कहाँ रहते हैं और उसके बतलाने पर कि अखैवर पेड़ पर टँगे पिंजड़े की बगुलिया में है, नल बगुलिया को मार देता है और इस प्रकार ये दोनों प्रेमी स्वतंत्र होकर परस्पर ब्याह भी कर लेते हैं। किंतु जब चौपड़ और मोतिनी को लेकर नल जहाज से चलता है सेठ के लड़के उसे जहाज से ढकेल देते हैं और स्वयं गोटों के साथ मोतिनी को लेकर राजा से भेंट करते हैं। फिर भी मोतिनी निश्चय कर लेती है कि छः महीनों तक मैं किसी से भी बातचीत नहीं करूँगी।

ब्रजभाषा रूप

उधर नल पानी में डूबकर पाताल चला जाता है और वहाँ उसके भौमासुर को मार डालने के कारण, वासुकी नाग उसका बड़ा सत्कार करता है। वासुकी ने न केवल इसे किनारे पहुँचवा दिया, अपितु इसे उसने एक अँगूठी भी दे दी जिससे यह अपना रूप परिवर्तन कर सकता था। नल वृद्ध बनकर नरवर पहुँचा और मोतिनी की इच्छा से उसे वहाँ नल पुराण सुनाया। नल के द्वारा ही राजा पिरथम को पता चला कि मंझा जीवित है और नल उसी का पुत्र है

वही

जिससे वह स्वयं जाकर उसे ले आया और इधर नल को मोतिनी भी दे दी। उधर जब गंगा दशहरा का दिन आया पिरथम और मंझा को स्नान करते समय, किसी फूलसिंह पंजाबी ने पकड़ लिया और उन्हें कैद भी कर लिया। फूलसिंह ने जादू से पिरथम की सेना को पत्थर बना दिया। नल और मोतिनी ने जाकर सभी को मुक्त कराया और तब नल राजा भी हो गया। एक दिन नल से हंस ने आकर राजा भीम की बेटी दुमैंती का वर्णन सुना और उसके निमंत्रण पर मोतिनी से छिपकर उसके स्वयंवर में गया। इन्द्र ने नल को दूत बनाकर भेजा किंतु दुमैंती ने उसके अतिरिक्त किसी भी दूसरे को वरण करना नहीं चाहा। सभी देवों का नल का भेस बनाकर बैठने पर भी उसने नल को ही वरा और जब नल उसे अपने घर लाया तो मोतिनी रुष्ट होकर पछाड़ खाकर गिर गई और मर भी गई। किंतु नल के ऊपर सभी देवता प्रसन्न हुए। एक शनिश्चर को ही बड़ा दुख रहा। इसलिए नल एक बार शनिश्चर के ही अपने शरीर में प्रवेश कर जाने के कारण अपने भाई पुष्कर के साथ जुआ खेलकर सब-कुछ हार गया। नल और दुमैंती राज्य छोड़कर चल दिये और आपत्तियों के झेलते समय उन्हें पिंगल के रंगू तेली ने आश्रय दिया। नल के पहुँचते ही रंगू समृद्धिशाली बन गया और उसकी पिंगल के राजा बुध से मैत्री भी हो गई। बुध के यहाँ एक दावत में रंगू के परिवार-भर का निमंत्रण आया जिसमें नल के ऊपर बैलों का भार छोड़कर वे चले गए। नल बैलों को पानी पिलाने भँवरताल ले गया जहाँ उसका सिपाहियों से झगड़ा हो गया, जिसमें कुछ सिपाही मारे गए कुछ बंदी बन गए। सिपाहियों को पीठ-से-पीठ भिड़ाकर बेड़ी पहनाई गई थी, जो 'सावर की बेड़ी' कहलाती थी। उसे राजा के कहने पर नल ने एक ठोकर से ही तोड़ दिया और तब राजा उस पर बहुत प्रसन्न हो गया और उसकी रंगू से भी घनी मित्रता हो गई।

एक बार राजा बुध रंगू के साथ पासे खेल रहे थे जिसमें रंगू सभी कुछ हार गया। किंतु जब उसे नल ने अपने पासे दिये तो वह फिर अपना सब-कुछ लौटाकर बुध के मारवाड़ परगने को भी लेने लगा। इस पर बुध ने नल से ही पासा खेला और दोनों ने अपनी-अपनी गर्भिणी स्त्रियों को दांव पर

वही

रखा। नल जीत गया। निश्चय यह हुआ कि यदि एक लड़की और एक लड़का हो तो दोनों का विवाह-सम्बंध कर दिया जायगा। नल के ढोला हुआ बुध के मारू उत्पन्न हुई। बुध ने मारू की सगाई ढोला के यहाँ भेज दी, किंतु नल को इसलिए कई कठिन शर्तें भी स्वीकार करनी पड़ीं। नल सभी

में विजयी हो गया और तदनुसार ढोला और मारू का विवाह भी सम्पन्न हो गया और दुमैंती को नरवर के अच्छे दिनों की आशा हुई। तब नल और दुमैंती उधर की ओर चले, किंतु करमलपुर के अनतर भीषमपुर का दूसरा पड़ाव आते ही वहाँ के राजा ने उनके तबू जलाकर दुमैंती को उठवा मँगाया। राजा नल ने तब दुर्गा का और फिर वासुकी का स्मरण किया तथा वासुकी ने भीषम को डस लिया और उसका विष दुमैंती के मिल जाने पर ही दूर हुआ। नल को फिर आगे भी कष्ट झेलने पड़े और दुमैंती उससे बिछुड़कर अपने पिता भीम के यहाँ पहुँची। इधर स्वय नल को भी कर्कोटक सर्प ने डस लिया जिससे वह काला पड़ गया और उसकी बाँहें भी छोटी हो गईं। तब राजा नल कोशल के ऋतुपर्ण के यहाँ पहुँचा और वहाँ से दमयंती के दूसरे स्वयवर में भी गया जहाँ उसे दमयंती मिल गई। नल ने फिर पुष्कर को जुए में हरा दिया।

ढोला जब इधर विवाह योग्य हो गया तो उसके गौने का सदेश पिगल भेजा गया। ढोला चला किंतु मार्ग में रेवा जादूगरनी ने उसे बन्दी बना लिया और करिहा ऊँट की सहायता से वह
वही किसी प्रकार छूटकर पिंगल पहुँचा। यहाँ पर शर्त थी कि ढोला सिंहद्वार से आवे जिसकी दीवारों में एक दानव चुन दिया गया था और इसकी सूचना मारू ने भेज दी। ढोला सिहद्वार से बड़ी फुर्ती से निकला, किंतु उसके करिहा की एक टाग दीवार गिरने से टूट गई और फिर भी ढोला गौना करा लाया। कथा में नल के किसी किशुनलाल नामक भतीजे के विवाह का भी वर्णन आता है जिसमें ढोला भी भाग लेता है। उसे तथा किशुनलाल को भी चंदना और चुनिया जादूगरनी चुरा लाती हैं तथा नल की प्रार्थना पर दुर्गा, मोतिनी वासुकी आदि सहायक बनकर उन्हें मुक्त करते हैं। कथा इस प्रकार, एक बहुत बड़ा और विराट् रूप धारण कर लेती है और इसके अन्तर्गत अनेक और कथाएँ भी जुड़ जाती हैं। इसमें जादू के प्रभाव तथा मनुष्येतर प्राणियों के मनुष्यवत् व्यापार का भी बहुत अ श जोड़ दिया गया है। यहाँ पर इसके बृहत् रूप को अत्यन्त संक्षिप्त रूप दिया गया और बहुत सी बातों की काट-छाँट भी कर दी गई है, किंतु, फिर भी इससे प्रकट हो जाता है कि इसके विशाल कलेवर का निर्माण क्रमश. तथा भिन्न-भिन्न क्रमों के भी अनुमार किया गया होगा।

इस कथा के रूप में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि ढोला की कथा

कहे जाने पर भी यह वस्तुत. नल की ही कहानी है। यह नल भी हमें प्रत्यक्षत. उस राजा नल से अभिन्न ही प्रतीत होता है जिसकी चर्चा इसके पहले की जा चुकी है। उस राजा नल की मूल कथा में भी यहाँ बहुत सी बातें लाकर जोड़ दी गई हैं। फिर भी नल का द्यूत के साथ सम्बंध तथा उसके अपनी पत्नी के साथ अनेक प्रकार के कष्टों के झेलने की चर्चा यहाँ बराबर होती चली जाती है। इस कहानी में न केवल इंद्रादि देवों की चर्चा की गई है, अपितु यहाँ पर भौमासुर दानव तथा वासुकी नाग तक भाग लेते दीख पड़ते हैं। नल पर कलि का कोप यहाँ पर शनिश्चर का कोप रहता है और नल यहाँ पर किसी रंगू तेली के यहाँ भी आश्रय पाता देखा जाता है। रेवा जादूगरनी द्वारा ढोला का कष्ट पाना छत्तीसगढ़ वाली ढोला मारू की कथा में भी वर्णित है, किंतु वहाँ यह अन्य प्रकार से आया है। यहाँ पर समुद्र की यात्रा तथा भौमासुर के कई बंदियों की भी चर्चा आती है जो नल की कथा में नहीं है। इसी प्रकार अन्यत्र दुर्गा की बार-बार सहायता पाना भी नहीं है। जिसका कारण यहाँ संभवत शाक्त मत का प्रभाव हो सकता है। नल को यहाँ पर उसके जन्म के पहले से ही महत्त्व देना आरम्भ कर दिया गया है और वह फिर एक वणिक का पोष्य पुत्र भी बन जाता है जो सर्वथा नवीन है। इस नल का, जो इतनी बातों के बढ़ाए जाने पर भी हमें पौराणिक उपाख्यानों के नल-सा ही लगता है, राजस्थान के ढोला के साथ सम्बंध कैसे और कब जुड़ गया, यह एक रोचक प्रश्न है। हो सकता है कि नल को विपत्तियों के झोंके सहने के लिए अत्यत विख्यात पाकर,ढोले के साथ एक समान समझा गया हो और इसे उसका पुत्र बना दिया गया हो। इसके लिए एक संकेत भी यहाँ पर था, क्योंकि ढोला के पिता का नाम भी मूल कथा के अन्तर्गत 'नल' करके ही प्रसिद्ध था। फिर भी ढोला की प्रेम-कहानी कहने के प्रथम उसके पिता के भी पूरे जीवन वृत्तात का दे देना कहाँ तक ठीक था यह स्पष्ट नहीं। ढोला मारू की प्रेम कथा का अस्तित्व मालवा, मिथिला एवं पजाब के लोकगीतों मे भी बतलाया जाता है, किंतु उसके रूप यहाँ उपलब्ध नहीं। अनुमान किया जा सकता है कि जिस प्रकार छत्तीसगढ़ी में वहाँ की नदी नर्मदा के रेवा नाम पर एक जादूगरनी निर्मित कर दी गई है उसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी कोई-न-कोई नये पात्र सम्मिलित किये गए होंगे अथवा घटनाएँ बढ़ा ली गई होंगी।

आलोचनात्मक विवेचन

ढोला एवं मारू जैसी ही एक प्रेम-कहानी लोरिक और मैना

में विजयी हो गया और तदनुसार ढोला और मारू का विवाह भी सम्पन्न हो गया और दुमैंती को नरवर के अच्छे दिनों की आशा हुई। तब नल और दुमैंती उधर की ओर चले, किंतु करमलपुर के अनंतर भीषमपुर का दूसरा पड़ाव आते ही वहाँ के राजा ने उनके तंबू जलाकर दुमैंती को उठवा मँगाया। राजा नल ने तब दुर्गा का और फिर वासुकी का स्मरण किया तथा वासुकी ने भीषम को डस लिया और उसका विष दुमैंती के मिल जाने पर ही दूर हुआ। नल को फिर आगे भी कष्ट झेलने पडे और दुमैंती उससे बिछुड़कर अपने पिता भीम के यहाँ पहुँची। इधर स्वयं नल को भी कर्कोटक सर्प ने डस लिया जिससे वह काला पड़ गया और उसकी बाँहें भी छोटी हो गई। तब राजा नल कोशल के ऋतुपर्ण के यहाँ पहुँचा और वहाँ से दमयंती के दूसरे स्वयंवर में भी गया जहाँ उसे दमयंती मिल गई। नल ने फिर पुष्कर को जुए में हरा दिया।

ढोला जब इधर विवाह योग्य हो गया तो उसके गौने का संदेश पिंगल भेजा गया। ढोला चला किंतु मार्ग में रेवा जादूगरनी ने उसे बन्दी बना लिया और करिहा ऊँट की सहायता से वह किसी प्रकार छूटकर पिंगल पहुँचा। यहाँ पर शर्त थी कि ढोला सिंहद्वार से आवे जिसकी दीवारों में

वही

एक दानव चुन दिया गया था और इसकी सूचना मारू ने भेज दी। ढोला सिंहद्वार से बड़ी फुर्ती से निकला, किंतु उसके करिहा की एक टांग दीवार गिरने से टूट गई और फिर भी ढोला गौना करा लाया। कथा में नल के किसी किशुनलाल नामक भतीजे के विवाह का भी वर्णन आता है जिसमें ढोला भी भाग लेता है। उसे तथा किशुनलाल को भी चंदना और चुनिया जादूगरनी चुरा लाती हैं तथा नल की प्रार्थना पर दुर्गा, मोतिनी वासुकी आदि सहायक बनकर उन्हें मुक्त करते हैं। कथा इस प्रकार, एक बहुत बड़ा और विराट् रूप धारण कर लेती है और इसके अन्तर्गत अनेक और कथाएँ भी जुड़ जाती हैं। इसमें जादू के प्रभाव तथा मनुष्येतर प्राणियों के मनुष्यवत् व्यापार का भी बहुत अंश जोड़ दिया गया है। यहाँ पर इसके बृहत् रूप को अत्यन्त संक्षिप्त रूप दिया गया और बहुत सी बातों की काट-छाँट भी कर दी गई है, किंतु, फिर भी इससे प्रकट हो जाता है कि इसके विशाल कलेवर का निर्माण क्रमशः तथा भिन्न-भिन्न क्रमों के भी अनुसार किया गया होगा।

इस कथा के रूप में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि ढोला की कथा

दौलत काजी के काव्य का पूरक बन जाती है। परतु दोनों कथाओं का उद्देश्य न केवल लोर तथा चंद्राली का प्रेम-व्यापार है, अपितु मयनावती के लोर के प्रति सतीत्व के भाव का प्रदर्शन भी है। वास्तव में इस दूसरे उद्देश्य को ही लेकर कई अन्य कवियों ने भी अपनी रचनाओं का निर्माण किया होगा। लोर और चंद्राली अथवा लोर एवं मयनावती की यह कथा कई प्रांतीय भाषाओं की भी लोकगाथाओं में किसी-न-किसी रूप में मिलती है।[1]

छत्तीसगढ़ी रूप

छत्तीसगढ़ी में 'लोरिक' और 'चदैनी' की प्रेम-कहानी प्रसिद्ध है और वहाँ पर इसका गीत भी गाया जाता है। वीर बावन दो सौ पचास गायों को दुहकर उनका दूध पी जाता था और वह सुन्दरी चंदैनी का पति था। चदैनी उसके घर आई, उसने रसोई तैयार की और वीर बावन को खिला-पिलाकर उसकी सेवा की, किंतु वह उसकी ओर से अनासक्त-सा रहा। एक दिन चंदैनी ने अपनी ननद से कहा कि मैं अपने मैके जाकर अपने बीमार भाई को देखना चाहती हूँ। जब वह चली तो मार्ग के जंगल में उसे वीर बथुआ मिला जिसने बेर के फल खिलाकर उसे लुभाना चाहा, किंतु वह जिस पेड़ पर चढ़ा था उसे उसने काँटों से रूध दिया और भागी। वीर बथुआ उसका पीछा करता हुआ उसके घर पहुँचा और उसके भय से सभी भयभीत हो गए। किंतु चंदैनी की माँ धीरे से घर से निकली और उसने लोरिक से जाकर कहा कि वीर बथुआ चमार अनर्थ कर रहा है, चलो उसे मारो। लोरिक जाति का रावत अहीर है। वह चलता है और उसके पीछे उसकी पत्नी मंझरिया भी जाती है तथा उसकी सहायता भी करती है। वह किसी प्रकार वीर बथुआ को एक गढ़े में ढकेल देती है जिससे उस पर विजय पाना सरल हो जाता है। वीर बथुवा घायल होकर क्षमा चाहता है। चंदैनी लोरिक की वीरता को दूर से देखती रहती है और वह उस पर आसक्त भी हो जाती है। फिर वह अपने भाई से कहकर एक झूला बनवाती है जिस पर वह लोरिक के आने-जाने के मार्ग में झूला करती है। एक दिन लोरिक से वह कहती है कि मुझे झुला दो किंतु वह अस्वीकार कर देता है और वह रुष्ट होकर उसे भुला देना चाहती है। किंतु ऐसा कर नहीं पाती।

---

१. स्वयं दौलत् काजी का ही कहना है कि उसने 'ठेठा चौपाइ पर दोहा' में कही जाने वाली कहानी के ही आधार पर अपनी रचना की है। देखिए, 'बाङ्गला साहित्यिक इतिहास' (प्रथम खण्ड) सुकुमारसेन रचित पृ० ५६६।

रानी की भी बहुत प्रसिद्ध है। बंगला में इस कहानी का शीर्षक प्रायः लोर

लोरिक और मैनावती

और मयनावती के नामों के साथ पाया जाता है तथा कभी-कभी वह 'सती मयनावती' मात्र ही दिया जाता है। उस भाषा में इसकी कथा के आधार पर दौलत काजी नाम के एक मुसलमान बंगला कवि ने एक सुन्दर काव्य की रचना कर डाली है। कथा का साराश इस प्रकार है गोहारी देश का राजा वा राजपुत्र लोर नाम से प्रसिद्ध है और उसके साथ मयनावती व्याही जाती है, किंतु काल पाकर लोर का प्रेम उसके प्रति कम होने लगता है और एक योगी से एक चित्र द्वारा यह जानकर कि मोहरा देश की एक अत्यन्त सुन्दरी राजकन्या है जिसका चद्राली नाम है और जिसका व्याह किसी नपुंसक बावन वीर के साथ हुआ है वह मोहरा चला जाता है। लोर एवं चन्द्राली एक-दूसरे को देखकर आपस में मोहित हो जाते हैं और उनका मिलन भी हो जाता है। किंतु बराबर मिलते रहने में बाधा की आशका से वे दोनों वहाँ से भाग निकलते हैं और बावन वीर उनका पीछा करता है। वन में कहीं लोर एवं बावन वीर युद्ध करते हैं और बावन वीर मारा जाता है, किंतु चद्राली को भी साँप डस लेता है और वह अचेत पड़ जाती है। तब तक वहाँ पर चद्राली का पिता भी पहुँच जाता है और दोनों को वापस ले जाकर तथा उनका व्याह करके लोर राज्य भी दे देता है।

इधर मयनावती विरह से व्याकुल हो उठती है और वह शिव एवं दुर्गा की आराधना किया करती है। इसके अतिरिक्त उसके पड़ोसी राजा नरेंद्र का

वही

पुत्र छातन भी उसके सौंदर्य पर अनुरक्त हो जाता है। वह इसे वश में करने के लिए दूतियों को भी भेजता है किंतु वह असफल होती हैं। फिर अपनी सखियों के परामर्श से मयनावती एक शुक के साथ किसी ब्राह्मण को लोर के पास भेजती है। ब्राह्मण लोर की स्मृति जागृत कर देता है। इस पर वहाँ अपने पुत्र को राज्य देकर चद्राली के साथ यहाँ मयनावती के निकट आता है। काव्य-रचना की कथा यहीं समाप्त हो जाती है किंतु कवि ने इस प्रसग में अदृष्ट का प्रभाव वर्णन करने के लिए एक अन्य उपाख्यान भी दिया है। कहते हैं कि बगला के ही प्रसिद्ध कवि अलाओल ने, जिसने जायसी की रचना 'पद्मावत' का बगला रूपातर भी लिखा है, लोर एवं चद्राली की कथा का शेषाश लेकर उसके आधार पर 'लोर चद्राली' की रचना कर डाली है जो

दौलत काजी के काव्य का पूरक बन जाती है। परंतु दोनों कथाओं का उद्देश्य न केवल लोर तथा चंद्राली का प्रेम-व्यापार है, अपितु मयनावती के लोर के प्रति सतीत्व के भाव का प्रदर्शन भी है। वास्तव में इस दूसरे उद्देश्य को ही लेकर कई अन्य कवियों ने भी अपनी रचनाओं का निर्माण किया होगा। लोर और चंद्राली अथवा लोर एवं मयनावती की यह कथा कई प्रांतीय भाषाओं की भी लोकगाथाओं में किसी-न-किसी रूप में मिलती है।[1]

छत्तीसगढ़ी में 'लोरिक' और 'चदैनी' की प्रेम-कहानी प्रसिद्ध है और वहाँ पर इसका गीत भी गाया जाता है। वीर बावन दो सौ पचास गायों को

छत्तीसगढ़ी रूप

दुहकर उनका दूध पी जाता था और वह सुन्दरी चंदैनी का पति था। चंदैनी उसके घर आई, उसने रसोई तैयार की और वीर बावन को खिला-पिलाकर उसकी सेवा की, किंतु वह उसकी ओर से अनासक्त-सा रहा। एक दिन चंदैनी ने अपनी ननद से कहा कि मैं अपने मैके जाकर अपने बीमार भाई को देखना चाहती हूँ। जब वह चली तो मार्ग के जंगल में उसे वीर बथुआ मिला जिसने बेर के फल खिलाकर उसे लुभाना चाहा, किंतु वह जिस पेड़ पर चढ़ा था उसे उसने काँटों से रूंध दिया और भागी। वीर बथुआ उसका पीछा करता हुआ उसके घर पहुँचा और उसके भय से सभी भयभीत हो गए। किंतु चंदैनी की माँ धीरे से घर से निकली और उसने लोरिक से जाकर कहा कि वीर बथुआ चमार अनर्थ कर रहा है, चलो उसे मारो। लोरिक जाति का रावत अहीर है। वह चलता है और उसके पीछे उसकी पत्नी मंझरिया भी जाती है तथा उसकी सहायता भी करती है। वह किसी प्रकार वीर बथुआ को एक गढ़े में ढकेल देती है जिससे उस पर विजय पाना सरल हो जाता है। वीर बधुवा घायल होकर क्षमा चाहता है। चंदैनी लोरिक की वीरता को दूर से देखती रहती है और वह उस पर आसक्त भी हो जाती है। फिर वह अपने भाई से कहकर एक झूला बनवाती है जिस पर वह लोरिक के आने-जाने के मार्ग में झूला करती है। एक दिन लोरिक से वह कहती है कि मुझे झुला दो किंतु वह अस्वीकार कर देता है और वह रुष्ट होकर उसे झुला देना चाहती है। किंतु ऐसा कर नहीं पाती।

१. स्वयं दौलत् काजी का ही कहना है कि उसने 'ठेठा चौपाइ पर दोहा' में कही जाने वाली कहानी के ही आधार पर अपनी रचना की है। देखिए, 'बाङ्गला साहित्यिक इतिहास' (प्रथम खण्ड) सुकुमारसेन रचित पृ० ५६६।

एक दिन लोरिक स्वयं उसके घर आता है और उसके घर में सोते समय प्रवेश करता है। वह चंदैनी की रामकहानी सुनकर उसके प्रति आकृष्ट होता है और उसके साथ रहकर फिर प्रात - काल चला जाता है। दूसरी बार वह फिर उसके कोठे पर डोरी के सहारे चढ़कर जाता है और उसके साथ रहता है तथा जाते समय भूल से उसकी साड़ी पहन लेता है। फिर एक बार चंदैनी ही स्वय उसके यहाँ जाती है और दोनों मिलकर भागने का उपाय निकालते हैं। वे चुपके-से चल पड़ते हैं और मार्ग में कई प्रकार के कष्ट झेलते हुए भी उत्साहपूर्वक चले जाते हैं तथा कुछ दूर निकल भी जाते हैं। वीर बावन को जब इसका पता चल जाता है तो वह पीछा करता है। किंतु उसे सफलता नहीं मिल पाती। उसके अनतर लोरिक और चंदैनी हरदीगढ़ के राजा के यहाँ पहुँचते हैं, उनसे युद्ध होता है, लोरिक विजयी होता है और वह फिर पाटनगढ़ जाता है। पाटनगढ़ को भी जीतकर वह हरदीगढ़ लौटता है जहाँ मंझरिया का भेजा हुआ एक नायक वहाँ के समाचार कहता है और लोरिक गौरागढ़ लौट आता है। यहाँ पर चंदैनी को देखते ही मझरिया बिगड़ती है और दोनों में झगडा होता है तथा मझरिया अपने यहाँ की दुर्दशा की कथा कहती है। लोरिक इस पर वहाँ की स्थिति सुधारने लगता है और अत में जब सफल होकर लौटता है तो मझरिया के गदे जल से अपना पैर धोने के कारण रूठकर फिर कहीं निकल जाता है।[1]

वही

इस छत्तीसगढ़ी रूप में कुछ और भी परिवर्तन दीख पड़ते हैं जिनमें वीर बावन का वर्णन अत्युक्तिपूर्ण शब्दों में किया गया है। इनमें से एक में लोरी रावत न होकर धोबी है और एक धोबिन ही चदा और लोरी के बीच प्रेम की बातें तय भी करती है। इसमें मंझरिया का भाग अधिक नहीं दिखलाया गया है और वीर बावन कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण लगता है। छत्तीस-गढ़ी के ही एक दूसरे रूप में चंदैनी लोरिक की बंशी का रव सुनकर उसकी ओर आकृष्ट होती है। वह यहाँ यह भी बतलाती है कि उसका पति महादेव के शाप से निकम्मा हो गया है और लोरिक को झूला झुला देने को कहती है। जिस पर वह उससे पान माँगता है। फिर अत में जब वह झुलाते समय उसे ऊपर की ओर ले जाता है तो उसे डराकर उससे अपने को

वही

१ Dr Verrier Elwin Folksongs of Chhattisgarh (Oxford University Press, 1946) p 342-70

पति-रूप में स्वीकार भी करा लेता है। इसके सिवाय जब दोनों भागने लगते हैं तो अपशकुन होता है और एक मालिन उनके रहस्य को जान भी लेती है। मार्ग में लोरिक एक बाघ को मारता है और, वीर बावन चालीस के साथ एक ही हाथ से लडता हुआ दूसरे से चंदैनी की रक्षा करता है। चंदैनी की इस प्रेम-कहानी के लिए कहा जाता है कि यह छत्तीसगढ़ की मौलिक प्रेमगाथा है और वहाँ के रायपुर जिले के आरंग नामक स्थान पर चंदैनी, उसके प्रेमी लोरिक तथा उनके प्रेम के स्मारक-रूप में एक इमारत भी बनी हुई है।[१]

दक्षिणी रूप

हैदराबाद (दक्षिण) की ओर इस प्रेम-कहानी के चंदा वाले अंश का उतना प्रचार नहीं जान पड़ता है। वहाँ पर किसी अज्ञात कवि की लिखी हुई एक 'मसनवी किस्सा मैना सतवती' नामक रचना पाई जाती है। इसके अनुसार किसी नगर के एक धनी व्यक्ति को लोरक नामका एक पुत्र था और किसी राजा की एक मैना नाम की सुंदरी पुत्री थी। वे दोनों परस्पर प्रेम करते थे और आनंद से जीवन बिताते थे। किंतु वे दोनों संयोगवश निर्धन हो गए और अपना नगर छोड़कर दूसरे स्थान के लिए चल पड़े। वहाँ लोरक पशु चराने लगा। वहाँ पर लोरक ने चंदा नाम की एक सुंदरी को देखा जिसका पति गवार था और जिसे वह चाहती थी। लोरक उसके घर गया और उसके महल पर चढ़कर उसे देखा तथा दोनों में तय भी हुआ कि धन-माल लेकर यहाँ से भाग चलें। पहले लोरक ने आनाकानी की, फिर मान गया। जब दोनों वहाँ से भाग निकले और इस बात का सब कहीं शोर मच गया तो लोगों ने राजा से जाकर कहा, किंतु उसने बतलाया कि वह स्वयं लोरक की पत्नी मैना पर मुग्ध था तथा जबसे उसने उसे देखा था तभी से वह उसके लिए बेचैन था।[२] यह कहानी बहुत संक्षिप्त रूप में मिलती है और यह सम्भव है कि उधर इसके और भी किंचित् परिवर्तित रूप मिलें। इसमें यहाँ मैना के 'सतवंती' होने की कोई कथा भी नहीं है। किंतु इतना अवश्य है कि कथा के मूल रूप को इसमें यथासम्भव सुरक्षित रखा गया है।

मिर्ज़ापुर के जिले में जो इस कथा का रूप मिलता है उसे क्रुक ने संगृहीत किया है। उसके अनुसार चंदैनी की कथा नहीं पाई जाती। लोरिक

१ Elwin V. Folk songs of Chattisgarh, pp 41-8 and pt 7-8.
२. श्रीराम शर्मा 'दक्खिनी का पद्य और गद्य', पृ० २७३-८।

एक दिन लोरिक स्वय उसके घर आता है और उसके घर में सोते समय प्रवेश करता है। वह चदैनी की रामकहानी सुनकर उसके प्रति आकृष्ट होता है और उसके साथ रहकर फिर प्रात -

वही

काल चला जाता है। दूसरी बार वह फिर उसके कोठे पर डोरी के सहारे चढ़कर जाता है और उसके साथ रहता है तथा जाते समय भूल से उसकी साड़ी पहन लेता है। फिर एक बार चदैनी ही स्वयं उसके यहाँ जाती है और दोनों मिलकर भागने का उपाय निकालते हैं। वे चुपके-से चल पड़ते हैं और मार्ग में कई प्रकार के कष्ट झेलते हुए भी उत्साहपूर्वक चले जाते हैं तथा कुछ दूर निकल भी जाते हैं। वीर बावन को जब इसका पता चल जाता है तो वह पीछा करता है। किंतु उसे सफलता नहीं मिल पाती। उसके अनतर लोरिक और चंदैनी हल्दीगढ़ के राजा के यहाँ पहुँचते हैं, उनसे युद्ध होता है, लोरिक विजयी होता है और वह फिर पाटनगढ़ जाता है। पाटनगढ़ को भी जीतकर वह हल्दीगढ़ लौटता है जहाँ मंझरिया का भेजा हुआ एक नायक वहाँ के समाचार कहता है और लोरिक गौरागढ़ लौट आता है। यहाँ पर चदैनी को देखते ही मंझरिया बिगड़ती है और दोनों में झगड़ा होता है तथा मंझरिया अपने यहाँ की दुर्दशा की कथा कहती है। लोरिक इस पर वहाँ की स्थिति सुधारने लगता है और अत में जब सफल होकर लौटता है तो मझरिया के गदे जल से अपना पैर धोने के कारण रूठकर फिर कहीं निकल जाता है।[1]

इस छत्तीसगढ़ी रूप में कुछ और भी परिवर्तन दीख पड़ते हैं जिनमें वीर बावन का वर्णन अत्युक्तिपूर्ण शब्दों में किया गया है। इनमें से एक में लोरी रावत न होकर धोबी है और एक धोबिन ही

वही

चदा और लोरी के बीच प्रेम की बातें तय भी करती है। इसमें मंझरिया का भाग अधिक नहीं दिखलाया गया है और वीर बावन कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण लगता है। छत्तीसगढ़ी के ही एक दूसरे रूप में चदैनी लोरिक की बंशी का रव सुनकर उसकी ओर आकृष्ट होती है। वह यहाँ यह भी बतलाती है कि उसका पति महादेव के शाप से निकम्मा हो गया है और लोरिक को झूला झुला देने को कहती है। जिस पर वह उससे पान माँगता है। फिर अत में जब वह झुलाते समय उसे ऊपर की ओर ले जाता है तो उसे डराकर उससे अपने को

१ Dr Verrier Elwin Folksongs of Chhattisgarh (Oxford University Press, 1946) p 342-70

है और वह पत्थर बन जाता है। लोरी की सगाई पहले से किसी छोटी-सी लड़की सतमनैन से हुई रहती है और उसकी एक बहन का नाम लुर्की रहता है। संवरू लोरी के पिता का पोष्य पुत्र है। लोरी और चदैन जब आगे बढ़े तो लोरी ने मुंगेर के निकट हरदुई के राजा के ऊपर चढ़ाई करके उसे जीत लिया। राजा ने जब कलिंग के राजा से सहायता ली तो लोरी हार गया और वह बंदी बना लिया गया, किंतु दुर्गा की कृपा से वह फिर मुक्त हो गया। उसने फिर हरदुई के राजा को जीता, चंदैन का उद्धार किया तथा उससे उसे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ जिसके अनन्तर वे फिर अपने देश पली की ओर लौटे। तब तक वहाँ पर कोल लोगों ने उसके भाई संवरू को मार डाला था, तथा उसके पशुओं के साथ अन्य सम्पत्ति को भी लूट लिया था। लोरी की सगाई वाली स्त्री सयानी हो गई थी, किंतु अभी तक अपने पिता के ही घर पर थी और लोरी उसके पातिव्रत धर्म की परीक्षा लेना चाहता था। उसने, इसीलिए, अपने फाटक पर एक धोती बाँध रखी थी जिसे अन्य दूध देने वाली नांघ गईं, किंतु उसने नहीं नांघा। लोरी ने प्रसन्न होकर उसकी डलिया रत्नों से भर दी और ऊपर से चावल रख दिया। उसके घर लौटने पर जब उसकी बहन ने ये रत्न देखे तो उसे इसके पातिव्रत में संदेह हुआ और इसके न स्वीकार करने पर भी, संवरू का लड़का अनजाने लोरी से लड़ने चला। किंतु दूसरे ही दिन इन सभी बातों का रहस्य खुल गया और फिर लोरी राज्य करने लगा। इन्द्र ने उसकी सफलता देखकर ईर्ष्यावश उसे नष्ट करना चाहा, किंतु दुर्गा उसकी पत्नी चंदैन बनकर उनके निकट जा पहुँची और उनके छेड़छाड़ करने पर इन्होंने एक थप्पड़ मारा। इस बात से दुखी होकर वह सपरिवार काशी चला आया और वह आज तक वहाँ उन सभी के साथ पत्थर बनकर मणिकर्णिका घाट पर पड़ा है।[1]

इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रांतों में इस प्रेमाख्यान के रूप मिलते हैं, पर उनमें बहुत अंतर नहीं है। कुछ अंतर नामों के सम्बंध में दीख पड़ता है जो उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि 'लोरिक' का नाम सर्वत्र लगभग एक-सा है और यही हाल चंदा का भी है। मयनावती कहीं मैना है, कहीं मंझरिया है और भोजपुरी की लोकगाथा में कहीं-कहीं मंजरी भी है। इस मैना अथवा मंजरी के लिए सबसे प्रमुख बात यह है कि यह सती या सतवंती कहलाती है जहाँ चंदा अधिकतर प्रेमिका ही है। कहीं-कहीं पर तो मैना की केवल सगाई ही हो

तुलनात्मक अध्ययन

१ Folk Songs of Chattisgarh, pp. 340-1.

भोजपुरी रूप

की पत्नी वहाँ पर मजरी है और उसी के साथ लोरिक के प्रेम की कथा कही गई है। कहते हैं कि सोन नदी पर एक अगोरी नाम का दुर्ग था जिसके राजा की किसी अहीरिन दासी का नाम मजरी था और उसे उसकी जाति वाला लोरिक चाहता था। लोरिक तथा उसके भाई सवर ने उससे व्याह करना चाहा जिसे राजा ने पसद नहीं किया। इस पर ये उसे ले भागे और उनके एक हाथी को भो मार गिराया तथा मंजरी की दी हुई एक तलवार से लोरिक ने एक चट्टान को तोड़ दिया और सबको जीतकर ये उसे भगा लाये। क्रुक ने इस कहानी के साथ यह भी लिखा है कि 'मर्कंडे पास' के निकट इस समय भी कोई ऐसा स्थान दिखलाया जाता है जहाँ पर एक कटा हुआ चट्टान है तथा पानी में एक विचित्र घिसा हुआ पत्थर भी है जो बिना शिर के हाथी-सा जान पड़ता है।[1] परन्तु इस प्रकार के कतिपय चिह्न अन्य कई स्थानों पर भी दिखलाए जाते हैं जिनमें से एक स्मारक की चर्चा इसके पहले भी की जा चुकी है। उत्तर प्रदेश के ही सारनाथ के निकट एकाध ऐसे टीले दिखलाए जाते हैं जिनमें वीर लोरिक का कुछ सम्बंध था। भोजपुरी के क्षेत्र में यह कहानी बहुत प्रसिद्ध है और यहाँ पर इसके कलेवर में कुछ वृद्धि हो गई भी दीख पड़ती है। 'लोरिकी' के साथ-साथ 'सोरठी' 'शोभा नाइक बनजारा' 'कुँवर विजयमल' आदि अन्य अनेक ऐसी प्रेम-गाथाएँ भी उस क्षेत्र में प्रचलित हैं।

शाहाबाद जिला (बिहार प्रात) के अन्तर्गत प्रचलित भोजपुरी रूप के अनुसार उसकी कथा इस प्रकार है. शिवधर चदैन से विवाह करता है,

वही

किंतु पार्वती उसे नपुंसक हो जाने का शाप देती हैं। चंदैन इसके अनन्तर अपने एक पड़ोसी लोरी से प्रेम करने लग जाती है और उसके साथ निकल भागती है तथा उन दोनों का पीछा करने वाला शिवधर हार जाता है। लोरी और चदैन की फिर महपतिया नामक एक दुसाध से भेंट होती है जो जुए में लोरी का सर्वस्व जीत लेता है और उसमें चदैन भी सम्मिलित रहती है। चदैन को, इसी कारण, महपतिया को अपना अग दिखलाना पड़ता है, किंतु लोरी के जीत लेने पर वह फिर इसी की हो जाती है। चदैन लोरी से अपने अपमान की बात कह देती है जिस पर लोरी महपतिया को मार डालता

१. Dr Verrier Elwin Folk Songs of Chattisgarh (Oxford University Press, 1944), pp 340-41

लोकगाथात्मक प्रेमाख्यान

ोला मारुरा दूहा तथा लोरिक एवं चंदा की प्रेम-कथाएँ ऐसी हैं
प्रचलित हैं। ढोला की कथा जो बुन्देल खंड में प्रसिद्ध है उसका
भी रूप व्रजभाषा वाली कथा के ही समान है। वहाँ
की कथा पर भी इसके साथ राजा नल एवं दमयंती की कथा
आरंभ में जोड़ दी गई जान पड़ती है जो, सम्भवतः,
ही मूल स्रोत के कारण हो सकता है। इसी प्रकार अनुमान किया
मुल्ला दाऊद की प्रसिद्ध सूफ़ी प्रेम-गाथा 'चंदायन' का 'लोरकचदा'

गई रहती है और विवाह पीछे होता है। इस दृष्टि से 'ढोला मारू' वाले कथानक से इसका कुछ साम्य देखा जा सकता है, किंतु उस दशा में दोनों वार विधिवत् विवाह हो गया दीखता है जहाँ लोरिक व चदा में लोरिक वाहर जाकर चदा को अपने साथ भगा लाता है। लोरिक व चदा में युद्ध एव वीरता की वातें अधिक हैं, 'ढोला मारूरा' दूहे में इन्हें उतना महत्त्व नहीं दिया गया है, प्रत्युत् वहाँ यह गौणरूप में भी है। जहाँ तक प्रेम-व्यापार का सम्वध है लोरिक व चदा में वह अधिक ग्राम्य और असस्कृत-सा लगता है, जहाँ ढोला वाली कथा में ऐसी वात नहीं है। लोरिक को प्राय सभी ने ग्वाल जाति का वतलाया है और उसकी पत्नियों को भी जाति वही है। केवल छत्तीसगढ में कहीं-कहीं वह धोवी कहा गया है और चदा को भी धोविन वतलाया गया है। हैदरावाद वाली कथा में चदा 'शाहजादी' वतलाई गई है[1] और वहाँ लोरिक को 'ग्वाल नायक' भी ठहराया गया है और बगाल में 'लोर' कोई राजपुत्र जान पड़ता है। इस प्रकार ढोला और मारू की कथा जहाँ मध्यकालीन राजस्थान के राजपूतों के समाज के अनुकूल पड़ती है वहाँ लोरिक और चदा की कहानी का सम्वध उससे किंचित् निम्नतर सामाजिक धरातल से लगा प्रतीत होता है। इस कथा का मूल रूप, कदाचित्, बंगाल एव हैदराबाद की कहानियों में ही सुरक्षित है और बीच वाले क्षेत्रों में अधिक दुहराया जाकर वह विस्तृत हो गया है।

१. "ओ ग्वाल नापाक लोरक यो जात
गया शाहजादी को ले रात रात" (दक्खिनी पद्य और गद्य, पृ० ३७७)।

लोकगाथात्मक प्रेमाख्यान

ढोला मारूरा दूहा तथा लोरिक एवं चंदा की प्रेम-कथाएँ ऐसी हैं जो बहुत प्रचलित हैं। ढोला की कथा जो बुन्देल खंड मे प्रसिद्ध है उसका भी रूप ब्रजभाषा वाली कथा के ही समान है। वहाँ पर भी इसके साथ राजा नल एवं दमयंती की कथा आरंभ में जोड़ दी गई जान पड़ती है जो, सम्भवतः, किसी एक ही मूल स्रोत के कारण हो सकता है। इसी प्रकार अनुमान किया जाता है कि मुल्ला दाऊद की प्रसिद्ध सूफ़ी प्रेम-गाथा 'चंदायन' का 'लोरक चंदा' भी लोरिक और चंदा की प्रेम-गाथा पर ही आश्रित होगी। किंतु किस प्रकार ऐसी कथा को किसी साम्प्रदायिक उपदेश का माध्यम बनाया गया होगा बिना उसे देखे पता नहीं चलता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सूफ़ी कवियो ने यहाँ पर जिन प्रचलित प्रेम-कथानकों को अपनी रचनाओं के लिए अपनाया उनमें बहुत सी लोकगाथाएँ भी रही होंगी। उदाहरण के लिए जायसी ने जो कथा राजा रतन और पद्मावती के प्रेम के सम्बंध में दी है उसके मूल कथानक का रूप ऐतिहासिक नहीं सिद्ध होता। स्व० पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने लिखा है—"पद्मावत की कथा का कलेवर इन ऐतिहासिक तथ्यों पर खड़ा किया गया है कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर छः मास के घेरे के अनन्तर उसे विजय किया, वहाँ का राजा रत्नसेन इस लड़ाई में लक्ष्मणसिंह आदि कई सामन्तों सहित मारा गया, उसकी रानी पद्मिनी ने कई स्त्रियों सहित जौहर की अग्नि में प्राणाहुति दी। इस प्रकार चित्तौड़ पर थोड़े समय के लिए मुसलमानों का अधिकार हो गया। बाकी की बहुधा सब बातें कल्पना से खड़ी की गई हैं।"[1] उन्होंने यह भी स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि "उसके (रतनसिंह के) समय मे सिंहलद्वीप का राजा गंधर्वसेन नहीं किंतु राजा-कीर्ति निश्शंक देव पराक्रम बाहु (चौथा या भुवेक बाहु तीसरा) होना चाहिए। सिंहलद्वीप में गंधर्वसेन नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ। उस समय तक कुंभलनेर आबाद नहीं हुआ था तो देवपाल वहाँ का राजा कैसे

---

१. राजपूताना का इतिहास, भा० २, पृ० ४६५।

गई रहती है और विवाह पीछे होता है। इस दृष्टि से 'ढोला मारू' वाले कथानक से इसका कुछ साम्य देखा जा सकता है, किंतु उस दशा में दोनों बार विधिवत् विवाह हो गया दीखता है जहाँ लोरिक व चदा में लोरिक बाहर जाकर चदा को अपने साथ भगा लाता है। लोरिक व चदा में युद्ध एव वीरता की बातें अधिक हैं, 'ढोला मारूरा' दूहे में इन्हें उतना महत्त्व नहीं दिया गया है, प्रत्युत् वहाँ यह गौणरूप में भी है। जहाँ तक प्रेम-व्यापार का सम्बध है लोरिक व चदा में वह अधिक ग्राम्य और असस्कृत-सा लगता है, जहाँ ढोला वाली कथा में ऐसी बात नहीं है। लोरिक को प्राय. सभी ने ग्वाल जाति का बतलाया है और उसकी पत्नियों की भी जाति वही है। केवल छत्तीसगढ़ में कहीं-कहीं वह धोबी कहा गया है और चदा को भी धोबिन बतलाया गया है। हैदराबाद वाली कथा में चंदा 'शाहजादी' बतलाई गई है[1] और वहाँ लोरिक को 'ग्वाल नायक' भी ठहराया गया है और बंगाल में 'लोर' कोई राजपुत्र जान पड़ता है। इस प्रकार ढोला और मारू की कथा जहाँ मध्यकालीन राजस्थान के राजपूतों के समाज के अनुकूल पड़ती है वहाँ लोरिक और चंदा की कहानी का सम्बध उससे किंचित् निम्नतर सामाजिक धरातल से लगा प्रतीत होता है। इस कथा का मूल रूप, कदाचित्, बंगाल एव हैदराबाद की कहानियों में ही सुरक्षित है और बीच वाले क्षेत्रों में अधिक दुहराया जाकर वह विस्तृत हो गया है।

---

१ "ओ ग्वाल नापाक लोरक यो जात
गया शाहजादी को ले रात रात" (दक्खिनी पद्य और गद्य, पृ० ३७७)।

लोकगाथात्मक प्रेमाख्यान

ढोला मारूरा दूहा तथा लोरिक एवं चंदा की प्रेम-कथाएँ ऐसी हैं जो बहुत प्रचलित हैं। ढोला की कथा जो बुन्देल खंड मे प्रसिद्ध हैं उसका भी रूप ब्रजभाषा वाली कथा के ही समान है। वहाँ पर भी इसके साथ राजा नल एवं दमयती की कथा आरंभ में जोड़ दी गई जान पड़ती है जो, सम्भवतः, किसी एक ही मूल स्रोत के कारण हो सकता है। इसी प्रकार अनुमान किया जाता है कि मुल्ला दाऊद की प्रसिद्ध सूफी प्रेम-गाथा 'चदायन' का 'लोरक चंदा' भी लोरिक और चंदा की प्रेम-गाथा पर ही आश्रित होगी। किंतु किस प्रकार ऐसी कथा को किसी साम्प्रदायिक उपदेश का माध्यम बनाया गया होगा बिना उसे देखे पता नहीं चलता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सूफी कवियों ने यहाँ पर जिन प्रचलित प्रेम-कथानकों को अपनी रचनाओं के लिए अपनाया उनमें बहुत सी लोकगाथाएँ भी रही होंगी।

पद्मावती की कथा

उदाहरण के लिए जायसी ने जो कथा राजा रतन और पद्मावती के प्रेम के सम्बंध में दी है उसके मूल कथानक का रूप ऐतिहासिक नहीं सिद्ध होता। स्व० पं० गौरीशंकर हीराचद ओझा ने लिखा है—"पद्मावत की कथा का कलेवर इन ऐतिहासिक तथ्यों पर खड़ा किया गया है कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर छः मास के घेरे के अनन्तर उसे विजय किया, वहाँ का राजा रत्नसेन इस लड़ाई में लक्ष्मणसिंह आदि कई सामन्तों सहित मारा गया, उसकी रानी पद्मिनी ने कई स्त्रियों सहित जौहर की अग्नि में प्राणाहुति दी। इस प्रकार चित्तौड़ पर थोड़े समय के लिए मुसलमानों का अधिकार हो गया। बाकी की बहुधा सब बातें कल्पना से खड़ी की गई हैं।"[1] उन्होंने यह भी स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि "उसके (रतनसिंह के) समय में सिंहलद्वीप का राजा गंधर्वसेन नहीं किंतु राजा-कीर्ति निश्शंक देव पराक्रम बाहु (चौथा या भुवेक बाहु तीसरा) होना चाहिए। सिंहलद्वीप में गंधर्वसेन नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ। उस समय तक कुंभलनेर आबाद नहीं हुआ था तो देवपाल वहाँ का राजा कैसे

---

१. राजपूताना का इतिहास, भा० २, पृ० ४९५।

माना जाय।[1]

जायसी की 'पद्मावत' के कथानक में चितौड़ का राजा रतनसेन विवाहित रहता है और उसके नागमति नाम की रानी रहती है। किंतु एक बार प्रसगवश वह अपने सुए से पद्मिनी वा पद्मावती के सौंदर्य की प्रशसा सुनता है और उस पर अनुरक्त हो जाता है। वह अपनी रानी की इच्छा के विरुद्ध पद्मावती के लिए 'जोगी' का रूप धारण कर उसके देश सिंहल द्वीप के लिए निकल पड़ता है। पद्मावती सिंहलद्वीप के राजा गंधर्व सेन की पुत्री है और वह अपने दुर्ग में रहती है। किंतु किसी प्रकार संयोगवश रतनसेन उसे देखता है और वह प्रेम की मात्रा के अधिक होने से मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है। पद्मावती जो उसके विषय में पहले से ही जान चुकी रहती है और उसके प्रेम द्वारा प्रभावित भी रहती है उसके हृदय पर लिखकर चली जाती है कि "जोगी तुमने भिक्षा प्राप्त करने योग्य योग नहीं सीखा" और वह निराश भी हो जाती है। किंतु महादेव की कृपा से दोनों का ब्याह सम्पन्न हो जाता है और दोनों फिर सिंहलद्वीप से चलकर चित्तौड़ पहुँच जाते हैं। राजा रतनसेन के सुए का नाम हीरामन है। राजा रतनसेन चित्तौड़ से जाते समय तथा सिंहलद्वीप से लौटते समय भी, कई प्रकार के कष्ट झेलता है। इधर उसके प्रवास में चले जाने पर उसकी पहली रानी विरह का अनुभव करती है और उसके लिए बहुत बेचैन रहती है।

'पद्मावत' की कथा

इस कथा के एक दूसरे पिछले अंश में राघव चेतन नामक राजा रतनसेन की सभा का पंडित, उसके द्वारा देश से निकाला जाता है। वह राजा से बदला लेने के उद्देश्य से दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के दरबार में जाता है और वहाँ पद्मावती के सौंदर्य की प्रशसा करता है। अलाउद्दीन पद्मावती के लिए पत्र लिखता है जिसे पढ़कर रतनसेन क्रुद्ध हो जाता है और लड़ाई की तैयारी करने लगता है। कई वर्षों तक चित्तौड़ के घेरने पर भी उसे (बादशाह को) जब सफलता नहीं दीखती तो वह (बादशाह) संधि का प्रस्ताव भेजता है। राजा संधि स्वीकार करके उसे दावत देता है। बादशाह चौपड़ खेलते समय पद्मावती का प्रतिबिम्ब देखकर मूर्छित हो जाता है और जब रतनसेन उसे पहुँचाने दुर्ग के फाटक तक जाता है तो उसे बंदी बनाकर दिल्ली भेज देता है और फिर बैरभाव का आरम्भ हो जाता है।

वही

१. वही, पृ० ४६१।

पद्मावती इधर घबराती है, किंतु एक उपाय सोचकर वह गोरा बादल और क्षत्रिय वीरों को ७०० पालकियों में छिपाकर उनके साथ वह अपने पति से मिलने दिल्ली जाती है। वहाँ मिलते समय एक लोहार रतनसेन की बेड़ियों को काट देता है और पद्मावती के साथ चित्तौड़ पहुँच जाता है। इधर दोनों दलों में लड़ाई होती है उधर पद्मावती और रतनसेन दुर्ग में पहुँचकर रहने लगते हैं। अंत में कुम्भलनेर के राजा देवपाल की दूती से संदेश पाकर क्रुद्ध हो रतनसेन फिर उससे लड़ने जाता है। लड़ता हुआ मारा जाता है और उसकी रानियाँ सती हो जाती हैं।

इस कथानक मे चित्तौड़ पर घेरे डालने का प्रसंग तथा राजा रतनसेन की लड़ाई ऐतिहासिक हैं और रानियाँ भी सती होती हैं, किंतु रतनसेन, कुम्भलनेर के किसी देवपाल के साथ लड़ते समय नहीं मरता। इसके सिवाय अलाउद्दीन के प्रेम के कारण पद्मावती का दिल्ली जाना और डोलियों वाली युक्ति के साथ रतनसेन को छुड़ा लाना भी निर्मूल है। फारसी के इतिहास-लेखकों तथा राजस्थान के भाटों द्वारा कथित पद्मावती की कथा से इस विषय पर अवश्य कुछ साम्य प्रतीत होता है। किंतु जान पड़ता है कि उन्होंने किसी पूर्व प्रचलित लोकगाथा का ही अनुसरण किया है। जायसी की रचना के पूर्व का कोई भी इतिहास लेखक इन बातों का उल्लेख नहीं करता और जो इधर वाले ऐसा करते हैं वे जायसी द्वारा प्रभावित भी हो सकते हैं। इसी प्रकार इस प्रेमगाथा का प्रथम अंश भी अधिकतर पूर्व-प्रचलित लोकगाथाओं पर ही अवलंबित जान पड़ता है। हिन्दी साहित्य में ही पद्मावती के अनेक आख्यान हैं जिनमें किसी-न-किसी पद्मिनी का वर्णन आता है और वह पद्मावत के प्रथम अंश से अधिक साम्य रखता है। 'पद्मावत समय' की पद्मिनी व पद्मावती समुद्र शिखरगढ़ के राजा विजयपाल की पौत्री है जो दिल्ली नगर के एक सुए द्वारा वहाँ के नरेश पृथ्वीराज की प्रशंसा सुनकर उन पर अनुरक्त हो जाती है और उसी के द्वारा संदेश भेजकर पृथ्वीराज को अपने यहाँ बुला लेती है। पृथ्वीराज वहाँ पहुँचकर पद्मावती का हरण करते हैं और लड़ाई में भी वे सफल हो जाते हैं। इसी प्रकार पद्मिनी एव हीरामन सुए को भी लेकर आपस में मिलती-जुलती इधर अनेक ऐसी कहानियाँ चलती हैं जो प्रेमाख्यानों के रूप में हैं।

आलोचनात्मक विवेचन

'पद्मावत' की पद्मिनी की कथा का मूल स्रोत क्या हो सकता है इस

पर विचार करते हुए उसे 'कल्कि पुराण' पर भी आश्रित कहा गया है।[1]

पद्मावती की कथा का मूल स्रोत

'कल्कि पुराण' में आई हुई पद्मावती की कथा के अनुसार पद्मावती सिंहलदेश के राजा बृहद्रथ की पुत्री है जिसे शिव का वरदान प्राप्त है कि उसका पाणि-ग्रहण स्वय नारायण ही करेंगे और यदि अन्य पुरुष चाहेंगे तो उसे कामभाव से देखते ही नारी बन जायँगे तथा पद्मावती के स्वय-वर की रचना करने पर ऐसा हो भी जाता है। उधर कल्कि को ये सारी बातें अपने किसी सर्वज्ञ नामक सुए से विदित होती हैं और वे अपना संदेश उसी के द्वारा पद्मावती को भेज देते हैं। वे सदेश का उत्तर पाकर स्वय सिंहल द्वीप चले भी जाते हैं और पद्मावती के उनसे मिलने के लिए आने पर किसी कदब के नीचे वेदिका पर सो जाते हैं। अंत में बृहद्रथ को जब सभी बातों का पता चलता है तो वे उन्हें अपनी पुत्री पद्मावती को विवाह द्वारा दे भी देते हैं। इस कथा की तुलना करने पर जायसी की 'पद्मावती' की कई बातें इससे मिलती-जुलती जान पड़ती हैं। पद्मावती सिंहल द्वीप की ही है, प्रेमी उसके उत्तर वाले देश का निवासी है और वह सुए की सहायता से उसे अपनाने में भी सफल होता है। यहाँ भी पद्मावती अपने प्रेमी को सर्वप्रथम उसके सोने की ही दशा में पाती है जो जायसी वाली कथा के, उसे देखते ही मूर्छित हो जाने के, समान कहा जा सकता है। परतु कल्कि-पुराण, की रचना का हमें निश्चित समय विदित नहीं है और न यही पता है कि स्वयं उसी की कथा का मूल स्रोत क्या था। जायसी के समय में इस पुराण का कोई अस्तित्व था कि नहीं और यदि था भी तो उसके उपयोग करने का साधन कहाँ तक मिल सका होगा। इस विषय में अतिम निर्णय करना इस समय कठिन प्रतीत होता है। अतएव, यह अनुमान करना कि सम्भवत' दोनों ही रचनाओं के लिए कोई और ही मूलस्रोत था और वह किसी-किसी लोकगाथा के रूप में रहा होगा अधिक समीचीन हो सकता है।

जायसी की 'पद्मावती' वाली कथा के अतर्गत बहुत-सी ऐसी बातें ढूँढी जा सकती हैं जो लोक गाथाओं में मिलती हैं। यदि हम इसकी तुलना

तुलनात्मक अध्ययन

'ढोला मारूरा दूहा' अथवा लोरिक और चदा की कहानियों से करते हैं तो भी पता चलता है कि इसकी कतिपय बातों का उनके कथानकों के ढाँचे से

१. 'साहित्य सन्देश' (भा० १३ अ० ६, पृ० २४६-५०) में डॉ० दशरथ शर्मा का 'आदि पद्मावती' शीर्षक लेख।

कुछ-न-कुछ सादृश्य है। ढोला और लोरिक वाली प्रेम-कथाओं में नायकों की एक पत्नी पहले से ही रहती है अथवा कम-से-कम उसके लिए भूमिका बन गई रहती है और यह बात हमें रतनसेन राजा के सम्बंध में भी प्रायः उसी ढग से दीख पड़ती है। यह अवश्य है कि लोरिक की कथा के किसी-किसी रूप में उसकी मैना के साथ सगाई हुई रहती है और वह चदा के लिए प्रेम-व्यापारो मे प्रवृत्त होता है, जहाँ ढोला को इस प्रकार का प्रयत्न अपनी पूर्व-पत्नी के ही लिए करना पड़ जाता है, किंतु 'पद्मावत' के रत्नसेन की नागमती उसके घर पहले से ही विद्यमान है और वह, लोरिक की मैना के रहते हुए जैसे ही पद्मावती के लिए प्रयत्नशील हो उठता है। फिर ढोला एवं लोरिक की ही भाँति रतनसेन को भी अपने प्रेम-व्यापार में सफल होने के पहले अनेक कष्ट झेलने पड़ते हैं। यहाँ भी उन्हीं की भाँति सहायता ली जाती है और अनेक बार किसी-न-किसी दैवी संयोग से ही इन सभी प्रेमियों की रक्षा हो पाती है। इसी प्रकार समय-समय पर इनमें जोगियों, जादूगरों अथवा राक्षसों आदि द्वारा भी काम लिया गया है जिसके कारण इनमें लौकिक विश्वासो की चर्चा आ जाती है। हो सकता है कि लोरिक, ढोला एवं पद्मावती सम्बंधी इन रचनाओं की मूल कथाओं का निर्माण ठीक एक ही युग में नहीं हुआ हो और जो-कुछ भेद बाह्य रूपों में दीख पड़ता है वह केवल सामाजिक प्रभावों का ही परिणाम हो।

जायसी की 'पद्मावत' की रचना हो जाने पर उक्त कथा की अधिकांश बातें हमें अन्य रचनाओं में भी मिलने लग जाती हैं। बंगला का

अलाओल नामक एक मुसलमान-कवि इसीका अनु-

'पद्मावत' का प्रभाव वाद भी कर देता है, फिर भी कुछ गौण बातों

में अतर रह जाता है। जायसी द्वारा किया गया

सप्तसागरों का वर्णन इस अनुवाद में नहीं आता। विवाह-विधि के विवरणो में बहुत अतर है और हिंदी वाली रचना की पद्मावती जहाँ लक्ष्मी की कन्या रहती है वहाँ वह बंगला मे सागर-कन्या की सखी के रूप में दीख पड़ती है। फिर भी कथानक की प्रमुख बातें जैसी-की-तैसी आ गई हैं और केवल कतिपय वर्णनों में ही दोनों एक समान नहीं हैं। अलाओल की बंगला रचना सं० १७०७ के लगभग निर्मित हुई थी और उसके पहले हिन्दी में अन्य ऐसी रचनाएँ भी हो चुकी थीं। हेमरतन ने अपनी 'पदमिनी चउपई' की रचना स० १६४५ मे की थी, जटमल ने अपनी 'गोरा बादल री बात' का कथा सं० १६८०-६ तक लिख डाली थी और लब्धोदय (लाल चद) ने अपना

'पद्मिनी चरित्र' स० १७०७ में लिखा था। सम्भवतः इन सभी ने, केवल कुछ अंतरों के साथ, जायसी वाली परम्परा को अपनाया, जिस कारण उसका यही रूप प्रचलित हो गया। ऐतिहासिक तथ्य, परम्परागत काल्पनिक वार्तों के सामने, इन रोचक रचनाओं के कारण, दबकर विस्मृत से हो गए और किसी काल के सचमुच जीते-जागते व्यक्तियों को भी हमने पौराणिक रंगों की ही दृष्टि से देखना आरम्भ कर दिया।

सदयवत्स सावलिंगा की कथा

पद्मावती की प्रेम-कथा की ही भाँति एक दूसरी प्रेम-कहानी सदयवत्स सावलिंगा के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह कथा कदाचित्, जायसी की पद्मावत-रचना के समय भी प्रचलित थी और कतिपय पाठांतरों के अनुसार उन्होंने इसका उल्लेख भी किया है। परतु, उस उल्लेख वाली पक्ति के अन्य पाठातरों के भी मिलने से, इस सम्बध में सदेह भी किया जा सकता है। फिर भी इस बात में किसी प्रकार की हिचक की गुंजायश नहीं कि इसकी मूल कथ बहुत पुरानी है जिसके प्रमाण में हम अपभ्रंश के मुसलमान-कवि अब्दुर्रहमान की रचना 'सदेश रासक' से भी उद्धरण दे सकते हैं। उसमें एक स्थल पर आया है—

कहव ठाइ सुदयवच्छ कत्थ व नलचरिउ,
कत्थ व विविह विणोइहि भारहु उच्चरिउ।[1]

अर्थात् उस समय कहीं 'सुदयवच्छ' की कथा, कहीं 'नल-चरित्र' और कहीं विविध विनोदपूर्वक 'महाभारत' कहा जाता सुन पड़ता था। इससे स्पष्ट है कि यह कथा ईसा की ११वीं शताब्दी के आरंभ-काल में भी मुलतान की ओर प्रचलित रही होगी। कुछ लोगों को इस कवि की रचना का वह समय कुछ पीछे जाता प्रतीत होता है और उन्होंने इसे सं० १४०० के आस-पास माना है। फिर भी जायसी के जीवन-काल से यह समय भी पहले ही पड़ जाता है और इस कथा का प्राचीन होना असदिग्ध है।

उसका गुजराती रूप

सदयवत्स सावलिंगा की प्रेमगाथा का प्रचार अधिकतर गुजरात, राजस्थान एवं पजाब की ओर है। इसी कारण, इसके आधार पर गुजराती एवं राजस्थानी में लिखित कई रचनाएँ भी मिलती हैं। कहा जाता है कि गुजराती में यह कथा, सर्वप्रथम, ईस्वी सन् १४१० के लगभग आई होगी और

१ 'सदेश रासक' (सिघी जैन ग्रन्थमाला—विद्याभवन, बम्बई, सन् १९४५) पद्य ४४, प्रक्रम २, पृ० १९।

इसका 'मूल स्रोत' कोई अज्ञात प्राकृत रचना रही होगी।[1] गुजराती रूप के अनुसार उज्जैन के राजा प्रभुवत्स का पुत्र सदयवत्स नाम का था जिसे द्यूत का व्यसन था। प्रतिष्ठानपुर के राजा सालिवाहन की सावलिंगा नाम की पुत्री थी, जिसके स्वयंवर में प्रभुवत्स ने सदयवत्स को अपने मंत्री के साथ भेजा और सदयवत्स एवं सावलिगा का विवाह हो गया। एक बार सदयवत्स ने नगर में बिगड़े हुए हाथी को मारकर एक गर्भिणी ब्राह्मणी की रक्षा की, किंतु उसे राज्य से निकाल दिया गया। फलतःसदयवत्स बाहर चल पड़ा और सावलिगा भी उसके साथ हो गई। मार्ग में सावलिगा के लिए जल का प्रबंध करते समय उसे अपनी कुलदेवी से युद्ध में जय प्राप्त करने का वर मिला और द्यूत में जीतने के लिए पासे और कपर्दिकाएँ भी मिलीं। फिर आगे जाने पर सावलिंगा को लीलावती नाम की एक युवती भी मिली जिसने कहा कि मैं सदयवत्स के लिए प्राण देने वाली हूँ। इस पर सदयवत्स ने उसके नगर में जाकर उससे विवाह कर लिया और श्रावक धर्म स्वीकार कर तथा उसे पितृगृह में छोड़ सावलिगा के साथ आगे बढ़ा।

जब सदयवत्स अपनी ससुराल प्रतिष्ठानपुर के निकट पहुँचा तो वह अच्छे वस्त्रादि के लिए पहले अकेला नगर में गया और पाँच दिन में वापस आ जाने का वचन देकर वह सावलिगा को उसके वही बाहर ही छोड़ गया। वहाँ जाने पर संयोगवश कामसेना नाम की वेश्या उस पर मोहित हो गई और उसने इसे अपने घर ले जाकर पाँच दिन तक रखा। किंतु जब वह नगर के बाहर जा रहा था तो इधर चोरी के अपराध में कामसेना पकड़ी जाकर सूली की सज़ा पा गई जिसे बचाने के लिए उसे लौटना पड़ा। किंतु वहाँ पाँच दिन बीत जाने पर सावलिंगा भी चिता बनाकर जलने जा रही थी। इसीलिए यहाँ की स्थिति को सँभालकर वह उधर जा पहुँचा। कामसेना को बचाने के लिए सदयवत्स को राजा के लोगों से युद्ध भी करना पड़ा और अंत में उसके पहचान लिये जाने पर झगड़ा समाप्त हुआ। तदनुसार राजा ने उसे अपना जामाता समझ सावलिगा को भी बुला लिया और ये दोनों वहाँ कुछ दिन तक आनंदपूर्वक रहे। फिर एक श्रेष्ठि की भी एक कन्या के साथ विवाह करके सदयवत्स सावलिगा और लीलावती को लेकर अपने घर उज्जैन वापस आया। उज्जैन का राज्य फिर इसी को प्रभुवत्स ने दे दिया

१. K. M Munshi : Gujrat and its Literature (Longmans, 1935) p 100

और कालकाचार्य से अपने पूर्व-जन्म की कथा जानकर तथा उसके महत्त्व से अवगत होकर उसने श्रावक धर्म के आराधन में और भी मनोयोग दिया और वह अंत में स्वर्ग को प्राप्त हुआ।[1]

राजस्थानी रूप

सदयवत्स एवं सावलिंगा की प्रेम-कथा का यह सारांश वस्तुतः कवि हर्षवर्द्धन की संस्कृत सदयवत्स-कथा के अनुसार है। किंतु इसी को गुजराती रूपांतर का भी संक्षिप्त रूप कहा गया है और इसमें स्पष्टतः जैन-धर्म-कथाओं का भी अनुसरण किया गया है। इसमें घटनाओं का बाहुल्य आवश्यकता से अधिक प्रतीत होता है और इसे, अंत में, सर्वथा साम्प्रदायिक रूप भी दे दिया गया है। इस प्रेमाख्यान के राजस्थानी रूपांतर का सारांश इस प्रकार दिया जाता है—पूर्व दिशा के कोंकणदेशस्थ विजयपुर में महाराजा महीपाल राज्य करते थे और उनके पुत्र का नाम सदयवच्छ तथा उसके मंत्री की पुत्री सावलिंगा नाम की थी। ये दोनों एक ही गुरु की पाठशाला में पढ़ते थे, किंतु सावलिंगा की पढ़ाई पर्दे में हुआ करती थी। राजकुमार के पूछने पर पंडितजी ने उसके पर्दे में में पढ़ने का कारण उसका अंधी होना बतलाया तथा कन्या को कुमार का कोढ़ी होना बतला दिया। उद्देश्य यह था कि एक-दूसरे को देख न सकें और इसी प्रकार उनमें कोई सम्बंध भी न हो सके। एक दिन जब गुरुजी नगर में गये, उन्होंने सबको पढ़ाने का काम कुमार को ही सौंप दिया और जब कन्या ने, पर्दे में पढ़ते समय, कुछ अशुद्ध पढ़ दिया तो कुमार ने कह दिया, "अरी अंधी अशुद्ध क्यों पढ़ रही हो" जिसके उत्तर में उसने कह दिया, "अरे कोढ़ी जैसा पाटी में लिखा है पढ़ती हूँ।" इस पर कुमार को उसके अंधी होने में संदेह हो गया, क्योंकि यदि वह अंधी थी तो पाटी पर लिखा पढ़ ही कैसे सकती थी। इसी प्रकार उसे अपने कोढ़ी होने का भी रहस्य खुला और उसने सोचा कि ये दोनों बातें केवल भ्रम में डालने के लिए की गई हैं। इसलिए उसके हृदय में सावलिंगा को देखने की उत्सुकता और भी बढ़ गई और फिर वे दोनों एक दूसरे को देखकर प्रेम-बद्ध भी हो गए।

वही

गुरुजी के उद्यान के पास कोई खेत था जिसकी रखवाली के लिए बारी-बारी से सभी शिष्य जाया करते थे। एक बार इस नियम के अनुसार सदयवच्छ खेत में पहुँचा तथा सावलिंगा उसे भोजन देने चली गई। वहाँ एकांत होने के कारण प्रेम

१. राजस्थान भारती, पृ० ५०-८।

और भी दृढ़ हो गया और सावलिगा ने वचन दिया कि विवाह किसी से भी हो मैं पहली रात तुम्हारे ही साथ रमण करूँगी। इधर शिक्षा समाप्त होते ही राजा ने सदयवच्छ का विवाह किसी राजकन्या से कर दिया और सावलिंगा की भी सगाई कर दी गई। यह जानकर कुमार स्त्री के वेश में जाकर सावलिगा से मिला जिसने उसे देवी के मन्दिर में भेंट करने का संकेत किया। निश्चित समय पर पुष्पावती से धनदत्त आया जिससे सावलिंगा का विवाह सम्पन्न हो गया और सावलिगा देवी के मंदिर में भी पहुँची। किन्तु सदयवच्छ ने उस दिन दूना नशा पी लिया था। इस कारण वह मन्दिर में सो गया और सावलिंगा उसे जगा न सकी। निराश होकर वह, अपने घर लौटते समय, अपने वहाँ आने का सूचक-चिह्न राजकुमार के हाथ पर बनाती गई, और अपने फिर एक बार लौटने के सूचक रूप में उसने उस पर एक दोहा भी लिख दिया। आँखें खुलने पर सदयवच्छ को सावलिगा के न आने का बड़ा दुःख हुआ, किंतु दातुन के समय अपने हाथ पर लिखा पढ़कर उसे अपनी ही भूल जान पड़ी और वह 'जोगी' हो गया। तब दोहे की सूचना के अनुसार वह पुष्पावती पहुँचा और हाथ पर लिखा धुल न जाय इस कारण बावड़ी में पशुओं की भाँति मुँह से अपने पानी पीने के प्रसंग में पनिहारियों से बातचीत करता हुआ, वह सेठ धनदत्त के यहाँ चला गया जहाँ दोनों की भेंट हो गई। वहाँ पर वह सावलिंगा के लिए बनाये जाते हुए मंदिर में मजदूरी का काम भी करने लगा।

एक दिन वह जोगी का वेश धारण कर सेठ के घर भीख माँगने गया और भिक्षा देते समय सावलिंगा से मिला। इस पर झरोखे पर बैठकर इस दृश्य को देखने वाली राजकन्या ने कुछ दोहे कहे

वही

जिस पर वह बिगड़कर वहाँ से चला गया। राजकन्या ने फिर दोनों के प्रेम-सम्बंध की बात, सावलिंगा से मिलकर, जान ली और सदयवच्छ ने स्वयं उसको भी वहाँ के राजा भोज से प्राप्त कर लिया। कर-मोचन के समय सदयवच्छ ने अन्य वस्तुएँ न लेकर धनदत्त सेठ को ही बाँध मँगवाया और उससे सावलिगा को दे देने का वचन ले लिया। इस प्रकार सदयवच्छ और सावलिगा आपस में मिलकर प्रसन्न हुए और वहीं कुछ दिन तक रहे। अंत में वह अपनी पत्नियों के साथ अपने नगर में भी पहुँचा और यहाँ सुख भोगते हुए उसके चार पुत्र भी हुए। कथा यहीं पर समाप्त हो जाती है और इसमें गुजराती वाले रूपांतर

की कोई बात, केवल नायक एवं नायिका के नामों को छोड़कर, नहीं दीख पड़ती। वास्तव में गुजराती वाले रूपातर में ऐसी बातों का प्राय. अभाव-सा ही है जिन्हें हम प्रेमाख्यान की विशेषता कह सकते हैं। राजस्थानी वाले रूपांतर में प्रेमाख्यान के सभी लक्षण विद्यमान कहे जा सकते हैं और इस दृष्टि से, यह कहानी भी बहुत सुन्दर एव रोचक बन गई है। गुजराती सस्करण में जहाँ सावलिंगा सदयवत्स की विवाहिता पत्नी है वहाँ राजस्थानी वाले में उसकी केवल प्रेमिका ही रह जाती है। यदि नायक एव नायिका के निवास-स्थान अथवा उनके माता-पिता के नामों पर विचार किया जाय तो दोनों रूपांतरों में बहुत बड़ा अंतर प्रतीत होगा और दोनों की विविध घटनाओं में भी कोई साम्य न दीख पड़ेगा। राजस्थानी वाले रूपातर में जो देवी के मन्दिर में सदयवच्छ के सो जाने तथा सावलिंगा के साथ उसकी भेंट न हो पाने का चित्रण किया गया है वह 'कल्कि पुराण' एव जायसी की 'पद्मावत' नामक रचना के भी वैसे ही दृश्यों का स्मरण दिलाता है। इसमें सदयवच्छ का जोगी बन जाना तथा उसके हाथ पर सोते समय प्रेमिका द्वारा कुछ लिख दिया जाना भी 'पद्मावत' की बातों जैसा ही है।

लेकिन प्रेमगाथाओं के ही प्रसग में हम एक अन्य प्रेम-कहानी 'माधवानल कामकदला' की भी चर्चा कर सकते हैं। इस कहानी के आधार पर

माधवानल काम-कदला—गुजराती रूप

गुजराती में लिखी गई रचना 'माधवानल दोग्धक प्रबध' अधिक प्रसिद्ध है जिसकी रचना सन् १५२८ में हुई थी। इसके कथानक का मूल स्रोत किसी आनदधर का 'काम कन्दला नाटक' बतलाया गया है जिसकी रचना सन् १३०० ई० में हुई थी।[1] गुजराती में फिर, इस विषय को लेकर, क्रमश कुशललाभ ने अपना 'माधव कामकदला रास' लिखा है और शामल कवि ने भी अपनी रचना 'माधवानल' के नाम से निर्मित की है और ये लोकप्रिय भी हैं। इसकी कथा के अनुसार पुष्पावती नगर में कामसेन के राज्य करते समय एक माधव नामक सुंदर ब्राह्मण रहता है। उसके सौंदर्य पर वहाँ की सभी नारियाँ मुग्ध रहती हैं जिस कारण राजा उसे अपने नगर से निकाल बाहर करता है। माधव घूमता हुआ अमरावती पहुँच जाता है जहाँ पर उसके अनुपम गुणों से आकृष्ट होकर वहाँ का राजा अपने दरबार में रख लेता है। एक बार राजा के दरबार की प्रसिद्ध वेश्या

1 K M Munshi Gujrat and its Literature (Longmans, 1935) p 153.

कामकंदला नृत्य करती है जिसे माधव ध्यान से देखता है और उस पर प्रसन्न होकर उसे राजा का दिया बीड़ा दे देता है। राजा इसे अपना अपमान समझता है और माधव को अपने यहाँ से निकाल देता है। पीछे माधव कामकंदला के घर जाकर उससे मिलता है और दोनों एक-दूसरे के प्रति प्रेमासक्त बन जाते हैं। वहाँ से माधव फिर उज्जैन जाता है और वहाँ अपनी रामकहानी एक मंदिर की दीवारों पर लिख देता है जिसे वहाँ के राजा विक्रम पढ़ लेते हैं और उसके लेखक का पता लगाते हैं। माधव से यह जान-कर कि वह कामकंदला पर आसक्त है वे कामसेन राजा को उसे दे देने के लिए लिखते हैं और उसके अस्वीकार करने पर युद्ध ठान देते हैं। इधर वे इन प्रेमियों की परीक्षा भी करते हैं और क्रमशः कामकंदला तथा माधव के भी यहाँ जा-जाकर उन्हें उनके प्रेमपात्र की मृत्यु का संवाद देते हैं जिससे वे चेतनाहीन हो जाते हैं। ऐसी ही स्थिति में बेताल आकर उन दोनों को सचेत करता है और दोनों को मिलाकर वे उनका विवाह भी करा देते हैं।

गुजराती के कवि इस प्रसंग में दोनों प्रेमियों को पूर्वजन्म में भी उसी सम्बंध के साथ रहने वाले सिद्ध करना चाहते हैं। कथा बहुत सीधी-सादी है और अत्यंत सौंदर्य के कारण होने वाली हानि तथा प्रेम की महत्ता का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

हिंदी रूप

हिंदी की लोक-कहानियों में जो इसका कथानक जान पड़ता है उसके अनुसार पुहपावती नगरी का गोपीचंद राजा है जिसके दरबार में माधवानल रहा करता है और वहाँ से उक्त प्रकार से निकाल दिये जाने पर वह कामावती नगरी में पहुँचता है। माधवानल यहाँ राजा के दरबार में नहीं जा पाता और वह फाटक पर ही रोक लिया जाता है जहाँ से वह भीतर बजाये जाते हुए मृदंग की बोल में दोष निकालता है और, इस प्रकार गुणी बनकर वह प्रवेश पा लेता है। किंतु यहाँ पर भी वह राजा द्वारा दी गई भेंट की वस्तुओं को कामकंदला के हवाले कर देने के कारण, दरबार से निकाला जाता है और उसी प्रकार उज्जैन की ओर भी पहुँचता है। वहाँ लगभग ठीक वे ही घटनाएँ होती हैं जो गुजराती में पाई जाती हैं, किंतु बेताल यहाँ पाताल से अमृत लाकर दोनों प्रेमियों को जिलाता है। इसके सिवाय यहाँ पर, परीक्षा करने के उपरांत ही, विक्रम कामसेन के पास कामकंदला के देने का प्रस्ताव भेजते हैं। राजा यहाँ पर माधव को अपना मंत्री बनाता और उसे जागीर भी देता है जिससे वह सुखपूर्वक रहने लगता है।

माधवानल कामकंदला की इस कथा में हमें माधव के एक स्वच्छन्द

जीवन का उदाहरण मिलता है। वह अपने सौंदर्य एवं प्रेमी स्वभाव के कारण मारा-मारा फिरा करता है और कहीं चैन नहीं ले पाता। उसके गुण ही उसके दोष बन जाते हैं। हिन्दी के आलम कवि ने उपर्युक्त कथा को लेकर अपनी काव्य-रचना 'माधवानल कामकदला' नाम से सन् १५८३ (सं० १६४०) में की थी। आलम के अनन्तर फिर इस विषय पर हरनारायण ने लिखा और बोधा ने भी अपना 'विरह वारीश' ग्रंथ लिखा। यह 'विरह वारीश' अभी तक अधूरा ही प्रकाशित जान पड़ता है, किन्तु इससे प्रकट हो जाता है कि आलम की कथा से इसमें अन्तर क्या है। इस रचना की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें माधव के जीवन के उस भाग का भी चित्रण कुछ अधिक विस्तार से किया गया है जो उसने पुहुपावती में, कामावती जाने के पहले, व्यतीत किया था और जिसे उसने अन्त में भी किया। इसके सिवाय यहाँ पर उसे कवि द्वारा, श्रीकृष्ण की विरहिणी गोपियों की ओर से, शप्त कामदेव का अवतार भी बतलाया गया है तथा उसकी पुहुपावती वाली प्रेमिका के लिए कहा गया है कि वह रति से, इस जन्म में, लीलावती बन गई थी। माधव यहाँ पर भी अपने सौंदर्य तथा विशेषकर लीलावती के प्रति प्रेम-व्यापार के कारण, राजा के हुक्म से निकाल दिया जाता है। किन्तु यहाँ से कामावती की ओर वह एक सुए के परामर्श से जाता है और यही सुआ उसे फिर कामावती से उज्जैन जाने का भी परामर्श देता है। लीलावती माधव के लिए यहाँ पर सर्वप्रमुख प्रेमपात्री सिद्ध होती है क्योंकि विक्रमादित्य की सहायता से कामकदला को पा लेने पर भी वह उसे स्वप्न में देखता है। इस स्वप्न का उस पर बहुत प्रभाव पड़ता है और विक्रमादित्य तथा कामसेन की भी सहायता से वह फिर लीलावती से जा मिलता है। बोधा ने बतलाया है कि मैंने 'विरह वारीश' की कथा वही रखी है जो कालिदास ने कही थी और जिसे 'सिंहासन बत्तीसी' के अन्तर्गत भोज राजा के प्रति पुतरियों द्वारा कहलाया गया है और जिसे पिंगल को बेताल ने सुनाया था।[1] किंतु 'सिंहासन बत्तीसी' में लीलावती

[Margin: तुलनात्मक अध्ययन]

---

१ देखिए, सुन सुभान अब कथा सुहाई। कालिदास बहुरुचि सह गाई॥
सिंहासन बत्तीसी माँही। पुतरिन कही भोज नृप पाँही॥
पिंगल कह बैताल सुनाई। बोधा खेतसिंह सह गाई॥
—'विरह वारीश' (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, पृष्ठ ६)।

वाला अंश नहीं है।[1]

यदि बोधा कवि के 'विरह वारीश' के आधारभूत कथानक को ही हम उसकी कथा 'माधवानल-कामकंदला' के मूल रूप के भी अधिक निकट मान लें तो, यह सिद्ध करते हमें विलम्ब न लगेगा कि वह भी ढोला आदि की लोकगाथाओं की ही श्रेणी का होगा। इसके भी दो भाग होंगे, जिनमें से एक में प्रेमी नायक की प्रथम प्रेमपात्री की चर्चा रहा करती है और दूसरे में उस दूसरी को कथा आती है जिसके लिए उसे कई प्रकार के कष्ट झेलने पड़ जाते हैं। लोरिक की चन्दा, पद्मावत की पद्मावती आदि का स्थान यहाँ पर कामकदला ले लेगी और इसी प्रकार क्रमशः मैना, नागमती आदि की जगह पर लीलावती आ जायगी। इस कथा में माधव के साथ लीलावती का विवाह अवश्य नहीं हुआ रहता किन्तु फिर भी वही माधव के हृदय के भीतर अधिक रहती है। ऐसी दो पत्नियों में से कौन अधिक प्रेयसी कहला सकती है इसमें इस प्रकार की कहानियों के अन्तर्गत सादृश्य नहीं पाया जाता। प्रस्तुत प्रेमकथा को अपेक्षाकृत अधिक प्राचीनता तथा इसकी लोकप्रियता के आधार पर भी हम इसकी मूल कथा को लोकगाथा ही कहेंगे। सदयवत्स सावलिंगा की मूल कथा में इस प्रकार के कोई दो अंश नहीं जान पड़ते इसलिए हो सकता है कि उसका रूप पौराणिक हो अथवा उस कोटि का भी हो जिसके प्रयोग बौद्ध जातकों तथा जैन-धर्मकथाओं में किये गए हैं। इस प्रकार के अन्य उदाहरण हमें उन लोकगाथाओं में भी मिल जाते हैं जो पूरनभगत, सोहनी व महीवाल आदि से सम्बन्धित रचनाओं के मूल में हैं। ऐसी प्रेमगाथा 'इकहरी' कही जा सकती है, जहाँ ऊपर वाली कोटि की रचनाओं को हम 'दुहरी' अथवा 'तिहरी' आदि का विशेषण दे सकेंगे।

उसका लौकिक रूप

पंजाबी प्रेमाख्यानों में हमें घटनाओं की पेचीदगी अधिक नहीं दीख पड़ती। किन्तु वहाँ भी विकास मूल रूप की सादगी से घटना-बाहुल्य की ही ओर हुआ जान पड़ता है, और इसी प्रकार कथा से अधिक ध्यान उसकी वर्णन-शैली की ओर होता गया है। यदि हम वहाँ के परम प्रसिद्ध प्रेमाख्यान 'हीर-राँझा' को ही ले लें तो पता चलेगा कि इसे कदाचित् सर्व-प्रथम लिपिबद्ध करने वाले अकबरकालीन दामोदर कवि से लेकर उसके सबसे अधिक सफल लेखक १८वीं शताब्दी के वारिस शाह तक भी अन्तर आ

पंजाबी प्रेमाख्यान हीर राँझा

१. 'सिंहासन बत्तीसी', कथा स० २१

गया है। दामोदर ने जहाँ अपनी कहानी एक सीधे-सादे क्रम में कही है वहाँ वारिसशाह ने उसमें नाटकीयता भी ला दी है। दामोदर के अनुसार सियालों के सरदार चुचक के घर में हीर का जन्म हुआ। वह परम सुन्दरी थी और उसके सयानी होने पर उसकी सगाई खेड़ियों के सरदार अली के पुत्र सैदे के साथ कर दी गई। हीर ने इस बीच एकाध बार शूरवीरता का भी प्रदर्शन किया। उधर तखत हज़ारे के जाट मउजम के चार लड़के थे जिनमें धीदो सबसे छोटा था। वह भी बहुत सुन्दर था और उसे राँझा भी कहते थे। राँझा अपने सभी भाइयों में पिता के लिए अधिक लाड़ला था और बाँसुरी बजाना भी जानता था। उसके बड़े भाई उससे जला करते थे और उसकी सगाई होने पर भी, पिता की मृत्यु हो जाने से, उसका विवाह भी रुक गया। इसके अनतर, अपने भाई तथा भावज के व्यंगों तथा दुर्व्यवहारों से अपने को बचाने के उद्देश्य से, वह अपने यहाँ से झंग को चल पड़ा। उसने मार्ग में दो महीने किसी मसजिद में बिताये और कभी-कभी किसी-न-किसी सहानुभूति प्रदर्शित करने वाले का आतिथ्य ग्रहण करता रहा। किन्तु प्राय. सब कहीं उसे अपने सौंदर्य तथा वंशी-वादन कला के कारण अपने लिए भय उत्पन्न हो जाता।

राँझा के गुणों का क्रमशः चारों ओर प्रचार होता गया और वह जब एक नदी को पार करके सियालों के नगर की ओर गया तथा हीर की कही जाने वाली पलग पर उसने विश्राम किया तो लोगों ने वहाँ उसे घेर लिया। उनमें हीर भी थी जिसके कहने से उसे अपनी बाँसुरी बजानी पड़ी और हीर

वही

उस पर प्रेमासक्त होकर उसे अपने घर ले गई। हीर के कहने से उसके पिता ने राँझा को अपनी भैंसें चराने के लिए नौकर रख लिया और वह उससे भेंट करने सदा चुपके-चुपके जाने लग गई। राँझा को भी हीर के प्रति प्रेम हो गया था, इसलिए दोनों का प्रेम-व्यापार अधिक दिनों तक छिपा न रह सका। चुचक ने उसे बदनामी के भय से अपने यहाँ से निकाल दिया किंतु फिर कुछ सोच-समझकर उसने हीर के विवाह के दिनों तक उसे रख लेना उचित समझा। अपनी सगाई वाले विवाह के लिए हीर स्वभावत राज़ी नहीं थी और उसने आना-कानी भी की, किंतु इसके लिए विवश की गई और अपनी ससुराल भेजी गई। उधर राँझा पर भी उसकी सगाई वालों ने विवाह के लिए दबाव डाला, किंतु उसने स्वीकार नहीं किया। फिर भी राँझा को इस बात का दु ख रहा कि हीर अन्यत्र चली गई और वह उसे फिर किसी-न-

किसी प्रकार देख पाने के प्रयत्न भी करता रहा। वह पहले फकीर बनकर घूमता फिरा और फिर बालानाथ जोगी का शिष्य बनकर उसकी ससुराल रंगपुर की ओर भी गया। तब तक हीर भी उसके लिए बहुत बेचैन रहती थी और अपने पति से उसे कभी प्रेमभाव नहीं हुआ। अंत में जब वह अस्वस्थ हुई तो, उसकी ननद सहेती की सहायता एवं युक्तियों से, जोगी बना राँझा उसे चंगा करने के लिए बुलाया गया और दोनों वहाँ से निकल पड़े। परंतु वे फिर मार्ग में पकड़ भी लिये गए और किसी काजी द्वारा हीर के सँदे को ही दिला देने पर राँझा सम्भवतः मक्के की ओर चला गया।[1]

ऐतिहासिक आधार

कहते हैं कि हीर व राँझा की प्रेम-कथा का मूल आधार कुछ ऐतिहासिक बातें भी हैं। बहलोल लोदी बादशाह के राज्य-काल में तख्त हजारे का एक अमीर मुईजुद्दीन नामक था, जिसे मचजू भी कहा करते थे। उसके कई लड़के थे और सबसे छोटा धेदू था। सबका विवाह हो चुका था और धेदू अपनी बाँसुरी बजाने में भी बड़ा प्रवीण था। धेदू अपनी साधु-सेवा तथा आतिथ्य के लिए भी बहुत प्रसिद्ध था और उसके यहाँ बाहर के आदमी आकर टिक जाया करते। एक बार उसके यहाँ कोई झंग सियाल का आदमी आया जिसने प्रसगवश वहाँ की स्त्रियों के सौंदर्य एवं गुणों की प्रशंसा की। फलत. इस बात से आकृष्ट होकर वह एक बार कुछ बारातियों के साथ झग चला गया। वहाँ पर जनवासे में किसी के आग्रह पर उसने अपनी बाँसुरी बजा दी, जिससे आकृष्ट होकर गाँव के बहुत-से नर-नारी एकत्र हो गए। उन्हीं में से एक स्त्री हीर नाम की भी थी जिस पर वह प्रेमासक्त हो गया और अपने घर वापस आ जाने पर भी, वह उसके विरह में बेचैन रहने लगा। अंत में एक बार अपनी भावजों द्वारा तंग किये जाने पर वह उदास होकर फिर झंग आ गया।[2] पंजाब के कवियों में से दमोदर, मुकबल तथा अहिमद ने, वारिस शाह से पहले ही, इस प्रसंग को लेकर अपनी कविताएँ लिखी थीं।

वारिस शाह ने इस कहानी की घटनाओं में अपनी ओर से एक नवीन क्रम बाँधने का प्रयत्न किया। वारिस ने हीर की बहादुरी का कोई प्रसंग नहीं छेड़ा, प्रत्युत उसकी जगह उसको अधिक प्रेम-परायण,

१. भजनलाल-कृत 'हीर राँझा झूलना' नाम की एक हिन्दी-रचना भी उपलब्ध है, जिसका निर्माण-काल स० १८६८ है। कथा में बहुत कम अन्तर है।

२. 'हीर राँझा', (कुतुब खाना टाहल् वलाग, लाहौर) पृ० ६-७।

तुलनात्मक अध्ययन

किंतु व्यवहार पटु भी दिखलाया है। वारिस ने अपनी रचनाओं में सवादों का भी बहुत अधिक प्रयोग किया है जिस कारण वह एक नाटक-सी लगने लगती है। वारिस ने दामोदर की भाँति राँझा को विरक्त होता हुआ न दिखलाकर उसकी मृत्यु का हो जाना दरसाया है वारिस के अनुसार हीर अत में राँझा की ही हो जाती है, किंतु झंग के लोगों का जी नहीं भरता और वे दोनों का विधिपूर्वक विवाहित हो जाना भी देखना चाहते हैं। तदनुसार वे राँझा को परामर्श देते हैं कि तखत हजारा जाकर वहाँ से एक बारात लाओ और विधिवत् विवाह कर लो। फिर भी जब राँझा वहाँ जाता है और वहाँ से तैयारी करके आता ही रहता है तब तक इनकी राय कुछ बदल जाती है और ये हीर को विष दे देते हैं। फलत. अपनी प्रेम-पात्री की मृत्यु का समाचार पाते ही राँझा भी अत्यन्त दुखी होकर मर जाता है। वारिस की रचना, इसीलिए, दुःखात हो गई है। वारिस का राँझा उस प्रकार का प्रेमी है, जो वस्तुत विवाह के बधन को महत्त्व भी नहीं देना चाहता। वह 'माधवानल काम कदला' के माधव-सा प्रेमधर्मी है और वह उसीकी भाँति सुन्दर तथा सगीत में निपुण भी है। अपने भाइयों की जलन का शिकार बनकर हमें वह ज़ुलेख़ा के प्रेमपात्र यूसुफ़ के समान भी दीख पड़ता है। पजाब के इस प्रकार वाले प्रेमाख्यानों में 'ससि व पुनो' 'सोहनी व महिवाल' तथा 'मिरजा साहिबा' आदि की भी चर्चा की जाती है। इनमें से पहले दो बड़े ही आकर्षक हैं, उनमें स्त्रियों का ही प्रेम अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर है वे इकहरे हैं और दु.खात भी हैं। हीर एव राँझा की प्रेम-कहानी को लेकर किसी गुरदास कवि द्वारा लिखी गई एक हिन्दी-रचना भी सुनी जाती है, किंतु वह उपलब्ध नहीं है। इसके रूपातरों का राजस्थानी एव मध्यभारतीय बोलियों की लोक-गाथाओं में भी पाया जाना प्रसिद्ध है।

पूरन भगत की कथा

पंजाब में प्रसिद्ध पूरन भगत वाली कथा का एक रूप कादर यार नामक कवि के 'वार पूरन भगत दी' में दीख पड़ता है। इसमें कथा का आरम्भ पूरन भगत के पिता सालवाहन के प्रथम विवाह से ही किया जाता है। सालवाहन का उनकी पहली रानी इछरा के साथ विवाह गुरुगोरखनाथ की अनुमति से होता है और इसके लिए राजा को कुछ प्रयत्न भी करना पड़ता है। राजा का एक फिर दूसरा विवाह लूणा से भी होता है, जो उनकी अवस्था की दृष्टि से बहुत कम दिनों की और एक युवती है। फलत. यह

दूसरी रानी राजा से पूर्णतः संतुष्ट नहीं रहा करती और वह अपनी सौत इंछ्रना के पुत्र युवक पूरन पर ही आसक्त हो जाती है। वह पूरन से इस विषय का प्रस्ताव भी कर देती है जिसे सच्चरित्र एवं समझदार पूरन स्वभा-भावतः अस्वीकार कर देता है। लूणा इसकी प्रतिक्रिया में राजा के कान लगकर पूरन को मरवा देती है और उसके वियोग में इन्छ्रना पागल हो उठती है। किंतु गुरु गोरखनाथ की कृपा से पूरन भगत फिर जी जाते हैं और उनके शिष्य जोगी के रूप में रहने लग जाते हैं। पंजाबी का यह आख्यान हिन्दी में भी है। ब्रजभाषा में इसके उत्तरार्द्ध (अर्थात् केवल उतना ही जितने का सम्बंध पूरन भगत से है) का पता उसके खेल के गीतों में भी चलता है।[1] परंतु इसमें एक उल्लेखनीय भेद यह है कि यहाँ पर लूणा के कहने पर भी पूरन अपने अपराध से मुक्त कर दिया जाता है। यह फाँसी पर चढ़ने के पूर्व ही किसी तोते के भेद खोल देने पर बचा लिया जाता है और इसमें बाँदी भी सहायक हो जाती है। हिंदी वाले रूपांतर के अनुसार पूरन भगत रानी की अनुमति से कुएँ में डाल दिये जाते हैं जहाँ से उन्हें गोरखनाथ निकालते हैं। सौतेली माँ के इस प्रकार आसक्त हो जाने तथा दंड दिलवाने के सम्बंध में एक पुरानी कथा कुणाल की भी प्रसिद्ध है। पंजाब में बहुत-सी कथाएँ पूरन भगत के भाई राजा रिसालू के सम्बंध में भी प्रचलित हैं और उनका भी प्रचार अनेक प्रांतीय भाषाओं द्वारा हुआ है।

प्रेमाख्यानों का रूप कभी-कभी खंडश अथवा अधूरा दिया गया भी दीख पड़ता है। बहुत-से लोकगीतों तथा खंडकाव्यों के विषय ऐसे होते हैं जो प्रेमियों के जीवन-वृत्तों से अंशतः निकाल लिये हुए प्रतीत होते हैं और उनके रचयिता उन्हींको सुन्दर रूप दे दिया करते हैं। इनमें प्रेमभाव का केवल संयोगात्मक पक्ष हो सकता है अथवा वियोगात्मक ही होता है और इनमें पूरी गंभीरता आ जाती है। उदाहरण के लिए संयोग वाले पक्ष के सबंध में राजस्थानी का लोकगीत 'पणिहारी' दिया जा सकता है जिसमें प्रेमिका का पति बहुत दिनों तक परदेश में रहकर घर लौटता है और वह अपनी पत्नी को गाँव के बाहर कुएँ पर पानी लेते हुए, देखता है। पति उसे पहचान लेता है, किंतु पत्नी नहीं पहचान पाती और एक साधारण बटोही समझ कर उससे सिर पर घड़ा उठा देने का अनुरोध करती

प्रेमाख्यानों के आंशिक रूप

१. डॉ० सत्येन्द्र : 'ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, (आगरा' १९४९ ई०), पृ० २२४-३०

है। इस पर उसका पति, एक पर पुरुष के रूप में, उसके साथ विनोद की बातें करने लगता है जिसे वह स्वभावत बुरा मानती है और उस पर बिगड़ती, बड़बड़ाती घर पहुँचती है, जहाँ अत में, एक दूसरे से मिलकर आनद मनाते हैं। इस गीत के रूपातर सिंधी, पजाबी, गुजराती एव अवधी और भोजपुरी में भी मिलते हैं, किंतु इनमें कुछ बातें घटा अथवा बढ़ा दी गई हैं। फिर भी पति का विनोदपूर्ण व्यंग और पत्नी का भोलापन, तथा अंत में उसका 'कटकर रह जाना' सर्वत्र बड़ी सरस पंक्तियों द्वारा प्रदर्शित पाया जाता है। इसी प्रकार वियोगात्मक गीतों में भी कभी-कभी बड़े ही मार्मिक ढग से की गई, भावाभिव्यक्ति मिलती है।

विरह पक्ष की बातों को लेकर गीतों अथवा खड काव्यों की रचना करने की परम्परा बहुत पुरानी है। इसके अनुसार की गई रचनाओं में महाकवि कालिदास-कृत सस्कृत का 'मेघदूत' काव्य अत्यत विरहात्मक प्रेमाख्यान प्रसिद्ध है। उसमें अलका से निर्वासित होकर रामगिरि के ऊपर प्रवास में रहने वाले किसी यक्ष द्वारा अपनी प्रेयसी के प्रति मेघ द्वारा भेजे जाने वाले विरह-सदेश की कहानी है। कथावस्तु काल्पनिक है और प्रेमी यक्ष के जीवन के केवल एक ही अंश का इसमें चित्रण भी किया गया है, किंतु जहाँ तक किसी विरही के हृदय की मार्मिक अनुभूतियों का सबध है यह रचना सर्वथा पूर्ण कहलाने के भी योग्य है। 'मेघदूत' पीछे इतना लोकप्रिय बन गया कि इसीके आदर्श पर कई अन्य कवियों ने फिर 'पवनदूत', 'हसदूत'-जैसी बहुत-सी रचनाएँ कर डालीं। विक्रम की १२ वीं शताब्दी में वर्तमान मुल्तान का अब्दुर्रहमान भी कदाचित् ऐसे ही कवियों में था जिसने अपभ्रंश में 'सनेह रासय' लिखा है। उसने अपने इस काव्य ग्रथ में किसी ऐसी स्त्री की चर्चा की है जिसका पति अपनी जीविका के उद्देश्य से विदेश चला गया था। पत्नी उस समय एक प्रोषितपतिका के रूप में किसी बटोही के प्रति अपने विरह भाव प्रकट करती है और अपना सदेश भी भेजती है। ऐसे संदेशों अथवा विरहाभिव्यक्तियों में प्राय बारह-मासा-जैसी रचनाओं का भी समावेश कर लिया जाता है और कभी-कभी विरहिणियों को पूर्व कथा का भी बहुत सा अश, उसकी पृष्ठभूमि के रूप में, आ जाता है। नरपति नाल्ह की रचना 'बीसलदेव रास, में हम इसी के अनुसार उसके नायक के विवाह का शृंगारिक वर्णन तथा नायिका की विरह-दशा का चित्रण देखते हैं।

अब्दुर्रहमान कवि के 'संनेह रासय' का प्रसंग आते ही हमारा ध्यान

स्वभावतः अपभ्रंश की एक अन्य रास-रचना 'मुञ्जरास' की ओर भी गये विना नहीं रहता जिसका सम्बंध मालवा के राजा मुञ्ज की एक प्रेम-कहानी से है। उस कहानी का सारांश इस प्रकार दिया जा सकता है—मुञ्ज राजा एवं कर्नाटक के तैलप राजा में घोर वैमनस्य था जिस कारण मुञ्ज ने उस पर आक्रमण कर दिया और विजित होकर उसका वंदी भी वन गया। वंदीगृह में रहते समय उससे तैलप की विधवा वहन मृणालवती का प्रेम हो गया। मुञ्ज के मित्रों ने चाहा कि उसे किसी योजना द्वारा वंदीगृह से भगा दिया जाय, किन्तु वह केवल इसलिए सहमत न हो सका कि उसकी प्रेयसी लोक-लज्जावश उसके साथ भागने को तैयार न हो सकी। मृणालवती ने इसी-लिए चाहा कि मुञ्ज सदा वंदीगृह में ही वना रहे और तदनुसार उसने उक्त षड्यन्त्र की सूचना अपने भाई को भी दे दी। तैलप ने इस पर विगड़कर न केवल षड्यन्त्र को ही निर्मूल कर दिया, अपितु उसने वंदी मुञ्ज द्वारा घर-घर भीख मँगवाई और अंत में मृणालवती के लिए अत्यंत हृदय-द्रावक घटना होने पर भी, उसने उस प्रेमी राजा को हाथी के पैरों से कुचलकर मरवा डाला। इसी प्रकार राजा मुञ्ज के ही विषय में कहा जाता है कि इसके पहले उसका प्रेम किसी अन्य स्त्री से भी था जिससे मिलने के लिए वह प्रत्येक रात के समय वारह योजन तक की यात्रा किया करता था और उसके यहाँ से लौट आता था। किन्तु फिर किसी कारण उसका प्रेम-भाव उस प्रेम-पात्री के प्रति मंद पड़ गया और उसने वहाँ आना-जाना भी वंद कर दिया। 'सिद्धहेम' में ऐसे स्थल पर उस प्रेमिका द्वारा इस प्रकार कहलाया गया है :

वांह विछोडवि जाहि तुहु, हउँ तेवइँ को दोसु।
हिअ पाडिउ जइ नीसरहि, जाणउ मुंज सरोसु॥

जो प्रायः कवि सूरदास के जीवन-वृत्तों में भी उद्धृत कर दी जाती है।

सूफी प्रेमाख्यान

मुसलमानों के भारत में आ जाने तथा सूफ़ियों द्वारा मसनवी-पद्धति के अनुसार नई रचना करने लगने के अनंतर, भारतीय प्रेमाख्यानों की रचना-शैली में रूपकात्मक वर्णन का समावेश और भी अधिक मनोयोग के साथ किया जाने लगा। सूफियों के मतानुसार लौकिक प्रेम (इश्क मिजाज़ी) तथा अलौकिक प्रेम (इश्क हक़ीक़ी) में कोई मौलिक अंतर नहीं है। यदि पहला वास्तविक और शुद्ध है तो उसका दूसरे में भी परिवर्तित हो जाना कोई आश्चर्य की वात

सूफ़ी प्रेमाख्यान

नहीं और, इसी कारण, हम चाहें तो पहले को दूसरे की पूर्ण परिणति का एक दृढ़ साधन भी बना सकते हैं। सूफ़ियों ने इसी नियम के अनुसार, पहले फ़ारसी में प्रेम वाली मसनवी लिखी और फिर वे प्रांतीय भाषाओं में भी उसी आदर्श का पालन करने लगे तथा ऐसा करते समय, उन्होंने न केवल अभारतीय प्रेमाख्यानों का ही उपयोग किया, अपितु भारतीयों को भी अपनाया। इस प्रकार उनके द्वारा किये गए वर्णनों में प्राय विभिन्न प्रकार की बातों का संमिश्रण भी होता रहा। फिर भी अधिकतर यही देखा गया कि वे लोग, अभारतीय प्रेमाख्यानों का भी उपयोग करते समय, भारतीय वातावरणों से ही विशेष प्रभावित रहा करते हैं। इन सूफ़ी कवियों ने अपनी रचनाओं में आई हुई प्रेम-कहानियों की कभी-कभी अपने आध्यात्मिक ढग से व्याख्या कर देने का भी प्रयत्न किया है, जो अत में ही देखा जाता है। किन्तु उनके आरम्भ में सदा एक विशेष नियम के अनुसार उन्होंने कई अन्य बातें भी जोड़ दी हैं। कथा का प्रारम्भ करने के पहले उन्होंने सृष्टिकर्त्ता की स्तुति की है, पैगंबर आदि की प्रशसा की है, अपने पीर का परिचय दिया है। इसके अनंतर, अपने समय के बादशाह एव अपना परिचय देकर कथा-वर्णन का सूत्रपात किया है।

हिंदी की सर्वप्रथम सूफ़ी प्रेमगाथा

हिंदी में इस प्रकार की प्रेमगाथा, जो सर्वप्रथम लिखी गई वह मुल्ला दाऊद की 'चंदायन' अथवा 'लोरक व चंदा' नाम की थी। इसके विषय में लिखते हुए अल्‌बदायूँनी ने कहा है कि "एक बार शेख से कुछ लोगों ने पूछा कि आपने इस हिन्दी मसनवी को ही क्यों चुना है? शेख ने उत्तर दिया कि यह समस्त आख्यान ईश्वरीय सत्य है। पढ़ने में मनोरजक है, प्रेमियों को आनन्द भरे चिन्तन की सामग्री देने वाला है, कुरान की कुछ आयतों का उपदेश देने वाला है और हिन्दुस्तानी गायकों व भाटों के गीत-जैसा है। जनता में इस गाने से उसके हृदय पर बड़ा ही गहरा प्रभाव पड़ता है"[1] और ये शेख़ तकीउद्दीन वायज़ रब्बानी थे, जो इस रचना को प्रवचन के समय पढ़ा करते थे। यह रचना अभी तक अपने वास्तविक रूप में उपलब्ध नहीं है, किन्तु, यदि 'लोरक' वा 'नूरक' 'लोरिक' हो तो, इसकी कथा प्रसिद्ध लोरिक व चदा की भी हो सकती है जिसके विषय में इसके पहले चर्चा की जा चुकी है। राजस्थान में उपलब्ध एक अधूरी

1 George S A Rankıng Muntakhabut Tawarıkh (Calcutta, 1897) p 333

हस्तलिखित प्रति के अनुसार इसका रचना-काल सं० १४२६ होना चाहिए।[1]

परन्तु इसके अनंतर वाली जो ऐसी सर्वप्रथम रचना उपलब्ध है उसकी प्रेम-कहानी का पता चल जाता है। इस रचना का नाम 'मिरगावति' है, जिसका रचयिता शेख कुतबन हैं और इसका

हिंदी की मिरगावति

रचना-काल भी हिजरी सन् ६०६ अर्थात् सं० १५६० दिया हुआ है। इसकी कथा के अनुसार 'चंद्रगिरी के राजा गणपति देव का पुत्र कंचन नगर के राजा रूपमुरारी की पुत्री मृगावती के रूप पर मोहित हो जाता है जो संयोगवश उड़ने की भी विद्या जानती है। अतएव, जब वह अनेक कष्ट झेलकर उसके यहाँ पहुँचता है तो वह उसे धोखा देकर उड़ जाती है और इसे उसकी खोज में जोगी बनकर निकलना पड़ता है। वह समुद्र से घिरी एक पहाड़ी पर किसी रुकमिनी नाम की सुन्दरी को एक राक्षस के हाथों में पड़ने से बचा लेता है, जिससे प्रसन्न होकर वह उससे ब्याह कर लेती है। तब कहीं, अंत में, वह वहाँ पहुँच पाता है जहाँ पर मृगावती अपने पिता की उत्तराधिकारिणी बनकर राज्य करती है। उसके नगर में यह बारह वर्षों तक ठहरा रहता है और जब इसके पिता को पता चलता है तो इसे बुलाने के लिए वह दूत भेजता है। इस प्रकार वह मृगावती तथा मार्ग में रुकमिनी को भी लेकर चंद्रगिरी की ओर प्रस्थान करता है। वह बहुत दिनों तक उन दोनों के साथ भोग-विलास करता है, किंतु एक बार हाथी से गिरकर मर जाता है और दोनों रानियाँ उसके साथ सती हो जाती हैं। शेख कुतबन ने इस कथा का रूप-रंग भारतीय ही रखा है और इसके अंतर्गत 'माधवानल काम-कंदला' तथा 'नल-दमयंती' की कथाओं की ओर संकेत करता हुआ भी जान पड़ता है, किंतु फिर भी वह इसका आरम्भ अन्य सूफ़ी कवियों का-सा ही करता है। प्रति के खंडित होने के कारण यह पता नहीं चल पाता कि इस कवि ने भी अपनी कथा के रूप को कहीं स्पष्ट करने की चेष्टा की थी या नहीं। इधर उर्दू में लिखी एक पूरी प्रति मिलने का समाचार मिला है।

शेख़ कुतबन की उपर्युक्त 'मृगावती' वा 'मिरगावति' के पीछे की जो सबसे पहली ऐसी रचना मिलती है वह जायसी की 'पद्मावत' है, जिसके नायक रतनसेन तथा नायिका पद्मावती के विषय

'पद्मावत'

में इसके पहले ही चर्चा की जा चुकी है।[2]

---

१. 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', वर्ष ५४ क्रम १ पृष्ठ ४२

२. जायसी की एक अन्य प्रेम-गाथा 'चित्रलेखा' का भी अभी हाल में पता चला चला है, किन्तु अभी तक उसका पूरा परिचय उपलब्ध नहीं है।—लेखक

'पद्मावत' के अनन्तर की लिखी गई मंझन की 'मधुमालती' उसमान की 'चित्रावली' तथा जान कवि की कई ऐसी रचनाएँ हैं, जो उपलब्ध हैं और जिनसे पता चलता है कि उनके रचयिताओं का विशेष ध्यान भारतीय कथानकों की ही ओर जाता था। परंतु ईसा की १७वीं शताब्दी से कुछ कवियों ने फ़ारसी मसनवियों का दखिनी हिन्दी व उर्दू में अनुवाद भी करना आरम्भ कर दिया जिसका एक परिणाम यह हुआ कि अभारतीय प्रेमाख्यानों के आधार पर भी, प्रेमगाथाओं की रचना आरम्भ हो गई। दखिनी हिन्दी में फ़ारसी मसनवी वाले प्रेमाख्यानों के प्रथम अनुवादक संभवत मुल्ला ग़वासी थे जो कुली कुतुबशाह के समकालीन थे। ये अपने काव्य-कौशल के कारण 'मलिकुल शुअरा' तक कहलाए थे। इनका फारसी से अनुवादित मसनवी ग्रंथ 'सैफुल मुल्क व बदरुल जमाल' है जिसमें प्रेमकथा का नायक 'सैफुल मुल्क' मिस्र का बादशाह है और उसकी नायिका 'बदरुल जमाल' अजना के बादशाह की पुत्री है और इस प्रकार, ये दोनों ही अभारतीय हैं। इस रचना का समय सन् १६२५-२६ ई० बतलाया जाता है। इसके अनतर लिखी हुई एक उनकी दूसरी पुस्तक 'तूतीनामा' है, जो संस्कृत 'शुक सप्तति' से अनुवादित फ़ारसी 'तूतीनामा' का दखिनी अनुवाद है। किंतु यह वैसा प्रेमाख्यान नहीं है। इसकी रचना-शैली भिन्न प्रकार की है।

सैफुल्मुल्क की दखिनी प्रेमगाथा

'सैफुल्मुल्क व बदरुल जमाल' के लिए कहा जाता है। कि यह एक अरबी में प्रचलित प्रेमाख्यान पर भी आश्रित है। इसके अनुसार मिस्र का बादशाह आसमनोल है जिसके पुत्र का नाम सैफुल्मुल्क है। उसके जन्म के ही दिन बादशाह के वजीर के यहाँ भी एक पुत्री हुई थी। बादशाह ने स्वयं दोनों की परवरिश की और शिक्षा-दीक्षा भी दी। संयोगवश शाहजादे को एक दिन जरीन कपड़ा खोलते समय एक सुन्दर स्त्री का चित्र दीख पड़ता है जिस कारण वह प्रेमासक्त हो जाता है और बादशाह को भी इसका पता चल जाता है। वह वज़ीर की पुत्री से बतला देता है कि किसी दिन आँधी के समय उन कपड़ों को मुझे परियाँ भेंट कर गई थीं। बादशाह इस बात का भी पता दे देता है कि वह चित्र अजना की राजकुमारी का है और उसकी खोज में आदमी भी भेजता है। फिर स्वयं सैफुल्मुल्क भी वजीर की पुत्री के साथ उसे ढूँढने निकलता है और चीन तक चला जाता है। वहाँ उसे एक १७० वर्ष के वृद्ध से पता चलता है कि यह

कदाचित् तुर्की के कुस्तुन्तुनियाँ नगर में हो सकती है। ये दोनों उधर चलते हैं पर आँधी-तूफान के कारण अलग-अलग हो जाते हैं और शाहज़ादा एक तख्ते से लगा हुआ जिन्नों के देश में पहुँचता है। जिन्ना अपनी शाहज़ादियों के लिए उसे भोजन-रूप में भेजता है किन्तु उनमें से एक उस पर आसक्त हो जाती है। जब विवाह के लिए प्रस्ताव करने पर वह अस्वीकार कर देता है तो वह उसे बंदी बना लेती है। फिर वह किसी प्रकार वहाँ से भाग निकलता है और किसी सफद कस्बे की राक्षसी शाहज़ादी उसे बदरूल जमाल का पता भी दे देती है।

फिर ये दोनों बदरुल जमाल की खोज में चलते हैं और राक्षसी सैफुलमुल्क को अपने अतिथि के रूप में प्रकट करती है। तदनंतर वहीं उसकी खोई हुई वज़ीर की पुत्री से भी भेंट हो जाती है और वही बदरुल जमाल भी पहुँचती तथा उस पर प्रेमासक्त हो जाती है। बदरुलजमाल को अपने पिता का भय था इसलिए उसने अपनी नानी शहरबानू से पैरवी कराई। किन्तु सैफुलमुल्क इधर फिर कुछ राक्षसों के हाथ पड़ गया जिनसे लड़कर बदरुल जमाल के बाप को उसे छुड़ाना पड़ा। तत्पश्चात् विवाह भी हो जाता है और दोनों आनंदपूर्वक घर की ओर लौट आते हैं।[1] इस प्रकार इस कथानक में नायक एवं नायिका दोनों अभारतीय हैं और उनका कार्यक्षेत्र भी यहाँ का नहीं है। यहाँ पर नायिका से पहले नायक, चित्र को देखकर प्रभावित होता है तथा वही अधिक व्यग्र भी जान पड़ता है और वह अन्य कई देशों तक भ्रमण भी करता है। मिस्र एवं अजना-जैसे देशों के दूरवर्ती नायक-नायिकाओं के बीच सम्बंध होने की बात भी एक विशेषता है। भारतीय प्रेमाख्यानों के अंतर्गत अधिक से-अधिक सिंहल एवं बलख तक से दूर के व्यक्तियों में ही ऐसा देखा गया है। इस अभारतीय नमूने के प्रभाव में आकर कुछ ही दिनों पीछे उसमान की 'चित्रावली' तथा कासिम शाह की 'हंसजवाहिर' नामक प्रेमगाथाओं का परिवर्तित रूप दीख पड़ा और फिर क्रमश. शेख निसार की रचना 'यूसुफ और जुलेखाँ' का भी आदर्श स्थापित हो गया।

दखिनी हिन्दी का ही एक अन्य कवि मुल्ला वजही भी था जिसकी रचना 'सबरस' एक उल्लेखनीय प्रेमकहानी सिद्ध हुई। मुल्ला वजही ने इस रचना को गद्य में ही लिखा तथा इसकी सारी कथा में

१. 'सैफुल्मुलूक व बदीउल जमाल' (दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद, १९५५ ई०)

'सबरस' की रूपकात्मक प्रेमगाथा

रूपकों का ही प्रयोग किया। इसकी कथा बहुत लम्बी है और पात्रों के नाम भाववाचक भी होने के कारण, इसके वास्तविक मर्म को, ध्यानपूर्वक पढ़कर ही, समझा जा सकता है। फिर भी इसका सारांश अत्यन्त संक्षिप्त रूप में दे देने की यहाँ चेष्टा की जाती है—'अक्ल' पश्चिम का बादशाह है और 'इश्क' पूर्व का। अक्ल सीस्ता के शहर 'तन' का बादशाह है और उसके पुत्र का नाम 'दिल' है। इसी प्रकार इश्क की पुत्री 'हुस्न' है। अक्ल अपने बुढ़ापे में दिल को बादशाह बना देता है जो आबेहयात (अमृत) पाने के लिए बेचैन रहता है और एक दिन उसके लिए अपने जासूस 'नज़र' को भेजता है। नज़र को मार्ग में आफ़ियात (विश्राम) शहर मिलता है जिसके बादशाह का नाम नामूस (बदनामी) है और वह नज़र से कह देता है कि आबेहयात वस्तुतः काल्पनिक पदार्थ है और मनुष्य को चाहिए कि अपनी प्रतिष्ठा को ही आबेहयात बना ले। आगे फिर नज़र को ज़ोहद (परहेज़गारी) नाम का एक पहाड़ मिलता है जिस पर एक बूढ़ा ज़रख़ रहता है। ज़रख़ भी बतलाता है कि आबेहयात अप्राप्य है और इसकी प्राप्ति स्वर्ग में ही हो सकती है 'यहाँ खोजना है तो आशिकों को आँसुओं में ढूँढो।' फिर आगे उसे 'हिम्मत' मिलती है जो उसे साहस बँधाती है और उसे एक सिफारिश का पत्र भी देती है। इसके अनन्तर नज़र एक चमन में पहुँचता है जिसकी मलिका हुस्न की सखी 'ज़ुल्फ' है। वह पहले कैद का भय दिखलाती है, किंतु फिर परिचय पाकर उसे सहायतार्थ अपने दो चार केश दे देती है जिन्हें संकट-काल में भस्म कर देने पर वह उसे सहायता दे सकेगी। आगे बढ़ने पर नज़र की भेंट बचपन से बिछुड़े हुए भाई हमज़ा से हो जाती है जो उसे मारने दौड़ता है। किंतु जब नज़र की बाज़ू पर वह माँ से बाँधे गये लाल को देखता है तो उसे पहचान लेता है और उसे मलिका हुस्न के पास ले जाता है।

हुस्न के पास भी एक लाल है, जिसे परखने के लिए वह नज़र को देती है और वह उसमें दिल का एक फोटो देखकर आश्चर्य में पड़ जाता है,

वही

तथा उसके दिल की प्रशंसा करने लगने पर, इश्क दिल पर आशिक भी हो जाता है। इस पर नज़र उससे कहती है कि यदि मुझे आबेहयात दिला दो तो मैं तुम्हें शीघ्र ही तुम्हारे प्रेमी दिल से मिला दूँ। हुस्न के वचन-बद्ध हो जाने पर उसकी निशानी याकूत की अगूठी लेकर नज़र दिल के पास लौट जाता है और सारी बातें कह देता है। दिल उस अगूठी में हुस्न का चित्र देखते ही

प्रेमासक्त हो जाता है और उसे भेंटने के लिए तत्काल, शहर 'दीदार' की ओर ससैन्य चल देता है। अक्ल के वज़ीर 'वहम' को जब इसका पता चलता है तो वह उसके मन में संशय उत्पन्न करा देता है और अक्ल उसी समय सेना भेजकर दिल और नज़र को कैद भी करा देता है। इधर नज़र हुस्न की दी हुई अगूठी मुँह में रखकर आँख से ओझल हो कैद से निकल भागता है और वह रुख़सार (गालों) के गुलजार (बाग) में पहुँचता है तथा वहाँ पर आबेहयात का एक चश्मा देखकर थोड़ा पानी पीने के लिए लालायित हो उठता है। किंतु जैसे ही वह पानी पीने को मुँह खोलता है अंगूठी चश्मे में गिर पड़ती है और चश्मा स्वयं आँख से ओझल हो जाता है। उसी समय 'रकीब' (प्रतिद्वन्द्वी) की दृष्टि नज़र पर पड़ जाती है और वह उसे कैद कर लेता है जिस दशा में नज़र को जुल्फ के बालों का स्मरण हो आता है। उनके कुछ ही जलते-जलते जुल्फ वहाँ आ जाती है और नज़र को जेल से छुड़ा लेती है तथा नज़र को लेकर हुस्न के पास पहुँच जाती है जिसे दिल के कैद होने का पता चल जाता है। हुस्न, इसीलिए, 'नखरे' को भेजती है कि किसी भी तरह दिल को मुक्त करा लाये और अक्ल बादशाह की इधर आज्ञा प्रचारित की जाती है कि कैद से भागा हुआ नज़र जहाँ भी मिले कैद कर लिया जाय।

उधर नज़र 'नख़रे' और हुस्न सेना के साथ कई झंझटों को झेलते हुए आगे बढ़ रहे थे, जिसकी सूचना पाकर अक्ल ने पहले दिल को ही समझाने का विचार किया। वह कहता है कि स्त्री का

वही

प्रेम अविश्वसनीय होता है। इस पर दिल उससे सहमत हो जाता है और निश्चय होता है कि हुस्न के प्रेम की परीक्षा लेने के लिए उससे एक बार मिल लिया जाय। दिल इसीलिए दीदार शहर की ओर चल देता है और मार्ग में सुन्दर मृगों को देखकर उनमें से एक के पीछे घोड़ा दौड़ा देता है। यह मृग-समूह वस्तुतः नखरे की सेना थी जो नज़र के साथ दिल को लाने जा रही थी और अक्ल को इस बात का पता चला तो वह स्वयं आत्मग्लानि से भर गया और दिल की खोज में निकल पड़ा। दीदार शहर में जब दिल पहुँचा तो हुस्न के सुख का पारावार न था, किंतु फिर भी उसे अक्ल की ओर से संदेह था जिस कारण उसने अपने पिता को एक पत्र लिखा कि 'ख्याल' नामक सेवक को अक्ल बादशाह ने अपने यहाँ कैद कर रखा है और उसे माँगने पर ससैन्य दीदार शहर पर धावा बोल रहा है। इस प्रेमोन्माद के झूठे संवाद को सुनकर इश्क ने अक्ल के विरुद्ध तत्काल सेना भेज दी। तीन दिनों के युद्ध पर 'नसीम' हवा ने इश्क की सेना

को तितर-बितर कर दिया और अक्ल ने विजयी होकर दिल को बुला लिया तथा उधर हुस्न उसकी विरहाग्नि में जलने लग गई। उसी समय हुस्न को कोहे खाब की जादूगरी का स्मरण हो आया और उसने आग पर एक अंबर का दाना रखकर कोहे खाब को बुला लिया। तब कोहे खाव को अपने युद्ध में विजय मिली और अक्ल बादशाह हारकर लौट गया। किंतु कोहे खाब का एक तीर अनजाने में दिल को भी लग गया जिससे वह घायल हो गया और हुस्न की दाई 'नाज़' को उसकी तीमारदारी में लगा दिया गया। दिल को चाह जखून (Dimple—कपोलों में बन जाने वाला छोटा-सा गढ़ा) में छिपाकर रखा गया, किंतु इतने निकट होने पर भी हुस्न का उससे मिलना कठिन था। उसने, इसीलिए, दिल को अपनी सखी 'वफा' तथा 'ज़ुल्फ' की सहायता से एक सुंदर बाग में सुरक्षित रखा जहाँ से वह प्रतिदिन हुस्न के महल में ले जाने लगा किंतु इतने दिनों की थकान के कारण वह सुगंधित वातावरण में दो क्षणों के लिए सो गया। इसी समय हुस्न उस वाटिका में आकर उसके सिरहाने बैठ गई और उसके मिलने का सुख इतना तीव्र हो गया कि उसकी आँखें भर आई। ये प्रेमाश्रु जब दिल के गालों पर पड़े तो वह जाग उठा और तब दोनों प्रेम-क्रीड़ा में मस्त हो गए।

दोनों यही ने योजना बनाई कि दिन में हुस्न दिल से वाटिका में मिला करे तथा रात को दिल हुस्न के महल में पहुँचाया जाय। किंतु यह चोरी अधिक दिनों तक नहीं चली और हुस्न की एक

वही

'ग़ैर' नाम की सखी जो दिल पर स्वयं भी आशिक थी, ईर्ष्या से जलने लग गई। एक दिन 'ग़ैर' ने हुस्न की अनुपस्थिति में उसका रूप धारण करके दिल को बुलाया जिसका पता हुस्न को लग गया। ग़लतफहमी के कारण दिल को दग़ाबाज समझकर हुस्न ने उसे कैद करा दिया और उसने गैर को भी अपमानित किया। गैर ने यहाँ से छूटते ही यहाँ का सारा भेद अपने बाप 'रक़ीब' से कह दिया जो इश्क का दरबारी भी था। दिल किले का बंदी बना दिया गया। यहाँ पर दिल के कष्टों को न देख सकने के कारण, गैर ने अपनी गलती मान ली और हुस्न को एक पत्र द्वारा सभी बातें खोलकर बतला दीं। हुस्न को तब अपने किये का बड़ा पछतावा हुआ और वह दिल को निर्दोष भी मान गई। उधर हिम्मत को 'जादू' से सब पता चल गया। उसने दिल और बादशाह अक्ल की खोज कराई और स्वयं इश्क ने जाकर बादशाह को हुस्न एवं दिल के प्रेम का वृत्तांत जा सुनाया। हिम्मत के समझाने पर इश्क ने दिल को ठीक-ठीक

समझने के लिए उसे अपने राज्य का मंत्री नियुक्त कर लिया। हिम्मत का एक मित्र क़ायल था जिसने अपने जादू के बल से अक्ल की खोज कर ली और वह उसे शहर दीदार में पहुँचा आया। इश्क ने अक्ल का भी सम्मान किया और उसने उसे अपना मुख्य मंत्री बना लिया। दिल और हुस्न के प्रेम की परख हो जाती है और अंत में, सबकी सहमति से दोनों का विवाह भी कर दिया जाता है।[1]

मुल्ला वजही की इस रचना में उसका पांडित्य प्रत्यक्ष था तथा उसने इसे गद्य में लिखकर और भी नवीनता ला दी। फलत इसका प्रचार होते भी कदाचित् विलम्ब न लगा और वजही की गणना प्रसिद्ध सूफ़ी कवियों और जानकारों में होने लगी। कहते हैं कि वजही ने एक और भी रचना 'कुतुब-मुश्तरी' नाम से पद्य में लिखी थी जो 'सबरस' की ही भाँति प्रसिद्ध हुई, किंतु वह अधिकतर ऐतिहासिक और वर्णनात्मक है।

'सबरस' का प्रभाव : अनुराग बाँसुरी

'सबरस' की इस पुस्तक का प्रभाव उत्तरी भारत के भी सूफ़ी लेखकों पर बिना पड़े नहीं रह सका। इसके सौ-सवा-सौ वर्ष पीछे प्रसिद्ध नूरमुहम्मद ने अपनी 'अनुराग बाँसुरी' नामक रचना लगभग इसी शैली में, पद्य के माध्यम से, कर डाली। 'सबरस' एव 'अनुराग बासुरी' के पात्र तो भिन्न-भिन्न थे ही उनके नामकरण की भाषा में भी अंतर था। वजही ने जहाँ अपने पात्रों का फ़ारसी वा अरबी नामकरण किया था वहाँ नूरमुहम्मद ने उन्हें संस्कृत या हिन्दी के शब्दों द्वारा परिचित कराया। 'अनुराग बाँसुरी' की कथा इस प्रकार है—'मूरतिपुर' नगर का राजा 'जीव' था जिसका पुत्र 'अंतःकरण' था और इसके तीन साथी 'बुद्धि', 'चित्त' एवं 'अहंकार' थे। इन चारों मित्रों में नाम-मात्र का अतर था और 'अंत.करण' के दो मित्र 'संकल्प' 'विकल्प' भी थे। अंतःकरण की पत्नी का नाम महामोहिनी था और वह उस पर सदा मुग्ध रहा करता था, किंतु एक दिन सर्वमंगला के गुणों को श्रवण करके वह उसके प्रति अधिक अनुरक्त हो गया। यह प्रेम और भी दृढ़तर होता गया क्योंकि उसे 'श्रवण' ब्राह्मण के द्वारा सर्वमंगला की एक मणिमाला भी मिल गई थी जिसे वह धारण करता था।

सर्वमंगला स्नेहनगर की रहने वाली थी इसलिए वह वहाँ तक की भी सोचने लगा। राजा जीव से उसने इस विषय में कुछ नहीं बतलाया किंतु उसके भेदिया 'बूझ' ने ये सारी बातें प्रकट कर दीं। राजा ने

१. 'सबरस', (दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद, सन् १९५५ ई०)।

वही उसे प्रेम से विरत करना चाहा, किंतु उसे तथा बुद्धि को भी सफलता नहीं मिली और न सकल्प एवं विकल्प की ही दाल गल पाई। अंत करण दृढ़ बना रहा इधर स्नेहनगर के निवासी स्नेह-गुरु से उसे सर्वमगला का पूरा परिचय भी मिल गया। स्नेह गुरु ने अंत.करण को प्रेममार्ग में दीक्षित भी कर दिया और उसे स्नेहनगर का मार्ग दिखलाने के लिए एक सुवा भी दे दिया, जिसका नाम 'उपदेशी' था। अत करण, इस प्रकार, अपने पिता की आज्ञा से स्नेहनगर की ओर चला और अपनी यात्रा में उसे दो मार्ग मिले। पहले वह दक्षिण मार्ग से इंद्रियपुर पहुँचा, जो बहुत आकर्षक था और वहाँ पर उसे विचलित करने के प्रयत्न भी किये गए, किंतु वह नहीं रुका। त्रह स्नेहनगर पहुँच गया और वहाँ ध्यान-देहरा में बैठ उपदेशी के परामर्शानुसार उसने साधना की। उधर सर्वमगला को भी इसके लिए स्वप्न हुआ और उसने देखा कि एक भ्रमर मँडरा रहा है, जो मना करने पर भी नहीं मानता। फिर उसने साधक 'अत करण' का भी स्वप्न देखा। सर्वमगला को बड़ी बेचैनी हुई और उपदेशी सुवा उसके हाथ पर जाकर बैठ गया तथा उसने अत.करण की सारी कथा कह सुनाई।

सर्वमगला ने तब अत करण का एक चित्र खिंचवा मँगा और उसे एक अपना चित्र भी भेज दिया। फिर दोनों का पत्र-व्यवहार भी चला, जिसके अनतर अत करण सर्वमंगला के महल की ओर

वही गया और दोनों की आँखें चार हो गईं। सर्वमंगला ने तब अत करण को अपने गले की माला भेज दी और उधर 'जीव' ने अतःकरण की खोज करानी आरम्भ की। जीव ने दर्शनराय के यहाँ सहायता के लिए अनुरोध किया और सुए ने यहाँ आकर दोनों प्रेमियों का वृत्तात कह सुनाया। तब दर्शनराय की स्वीकृति से दोनों का विवाह सम्पन्न हो गया और अत करण सर्वमगला के साथ अपने घर वापस आया।[1] इस कथा की, 'सबरस' वाले कथानक के साथ तुलना करने पर, पता चलता है कि यह उससे अधिक स्पष्ट और मनोवैज्ञानिक है। 'सबरस' की कथा में घटनाओं की पेचीदगी भी आ जाती है जिससे रूपक को एक समान बनाये रखने में कठिनाई आ पड़ती है। वजही ने सूफ़ियों के मसनवी-साहित्य में प्रयुक्त होने वाले प्रेम-व्यवहार-सम्बधी प्राय. सभी प्रमुख शब्दों को रखने की चेष्टा की है। उन्होंने प्रेमी एव प्रेमिका के शारीरिक सौंदर्य की

१ 'अनुराग बाँसुरी', (हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) स० २००२

ओर तथा उनके वातावरणों की ओर भी अधिक ध्यान दिया है जहाँ नूर-मुहम्मद ने अधिकतर प्रेमियों की मानसिक प्रवृत्तियों को ही अपनाया है। इसके अतिरिक्त मुल्ला वजही ने जहाँ अपने कथा-नायक के जीवन का उद्देश्य आवेहयात अर्थात् अमृत अथवा अमरत्व की उपलब्धि रखा है और फिर, अंत में, वे उसे हुस्न की प्राप्ति में सफलता प्रदान कर आवेहयात को संभवत: भुला भी देते हैं वहाँ नूरमुहम्मद ने अंत:करण द्वारा आरम्भ से ही सर्वमंगला की अभिलाषा प्रकट कराई है और, अंत में, वह उसे ही पाकर अपने को स्वभावतः कृतकार्य समझ लेता है। प्रत्यक्ष है कि अमरत्व के पाने की इच्छा विशेषतः किसी व्यक्ति की ओर से ही की जाती हुई पाई जाती है और यह अपेक्षाकृत अधिक स्वार्थपरक भी कही जा सकती है। किंतु सर्वमंगला को अभीष्ट मानने के विषय में हम ठीक यही नहीं कह सकते, प्रत्युत इसे उससे कहीं अधिक व्यापक भी ठहरा सकते हैं। 'सर्वमंगला' के द्वारा, यदि इस शब्द के प्रयोग करने का वास्तविक ध्येय सचमुच इसके अर्थानुसार ही रहा हो तो, वह संभवतः यही चाहता है कि सभी का कल्याण हो; जिसका आशय स्वार्थ-परक नहीं हो सकता। 'सर्वमंगला' की प्राप्ति 'सर्वोदय' की उपलब्धि करना है जो परमार्थपरक अभीष्ट है और यह, इस दृष्टि से, निश्चित रूप से अधिक उच्च और उदार भी कहा जा सकता है।

दक्खिनी के अन्य प्रेमाख्यान

दक्खिनी हिंदी में एक 'पद्मावत' नाम की भी रचना मिलती है, जो किसी गुलामअली की कृति है और वह सन् १६८१ ई० में लिखी गई थी। इसमें कवि ने जायसी की ही कथावस्तु को भरसक अपनाने की चेष्टा की है और उसमें केवल थोड़े-से परिवर्तन किये गए हैं। इसी प्रकार कहा जाता है कि इशरती ने सन् १६६९ ई० में 'पद्मावत' का फ़ारसी अनुवाद भी किया था। दखिन के सूफ़ी कवियों तथा उत्तरी भारत वाले ऐसे कवियों का एक दूसरे द्वारा प्रभावित होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। दखिनी वालों ने बहुत-सी स्वतंत्र प्रेमगाथाओं की भी रचना की है, किंतु वे सभी अभी तक प्रकाश में नहीं आ सकी हैं। उनकी ऐसी रचनाओं को उर्दू साहित्य में भी स्थान दिया जाता है, जो उनकी लेखन-शैली के विचार से अधिक उपयुक्त भी कहा जा सकता है। वास्तव में दखिनी की पुरानी रचनाओं में जितना हिंदी-पन अथवा भारतीयता की छाप है उतनी इधर की रचनाओं में नहीं पाई जाती। वली के दिल्ली की ओर चले जाने के अनंतर उर्दू साहित्य में जो ईरानी वा शामीपन का प्रवेश हुआ वह सब कहीं वृद्धि पर ही रहा। शाह-

आलम के समय में मीर तक़ी ने कुछ अफ़साने उर्दू में लिखे, किंतु वे बहुत-कुछ सिद्धांतपरक बन गए। उनके अनंतर मीर हसन ने इस ओर अधिक नाम कमाया और वे पीछे आने वालों के लिए आदर्श रूप भी हो गए। मीर हसन ने अपनी रचना में विवरणों की ओर अधिक ध्यान दिया है और घटनाओं के चित्रित करने में भी बड़ी सफलता प्राप्त की है। इनकी रचना पर 'शाह-नामा' की परम्परा की पूरी छाप है। उर्दू-प्रेमाख्यानों में बहुत कम ऐसे मिलते हैं जिनमें भारतीयता का शुद्ध और अमिश्रित रूप दीख पड़े। उनमें प्रसगवश स्थानीय बातों के सजीव वर्णन तथा ऐतिहासिक घटनाओं के स्पष्ट चित्रण तक तो आ जाते हैं, किंतु उनमें भारतीय वातावरण का परम्परा-गत रंग नहीं जमने पाता और उनके प्राय. प्रत्येक पात्र पर विचार करते समय ऐसा लगता है कि वह किसी शामी प्रदेश में कुछ दिन अवश्य रहा होगा।

परन्तु हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यानक साहित्य में हमें यह बात इस रूप में बहुत कम देखने को मिलती है। इसका कारण यह है कि एक तो इन कवियों ने, सर्वप्रथम, ऐसे कथानक ही लिये हैं जो भारतीय परम्परा से सम्बन्ध रखते हैं। ऐसे कथानकों को लेकर लिखते समय उन्होंने उनके अनुकूल घटना-विकास के क्रम को निभाया है और उनके पात्रों के स्वाभाविक चित्रण पर भी ध्यान दिया है। उन्होंने हिन्दू पात्रों के विषय में लिखते समय उनकी पौराणिक मनोवृत्ति के प्रदर्शन तक पर भी ध्यान रखने की चेष्टा की है तथा उनकी प्रचलित प्रथाओं, शास्त्रीय मर्यादाओं और उनके सामाजिक जीवन के सूक्ष्म अंगों तक को भी अंकित करने से वे विरत नहीं हुए हैं। कभी-कभी तो यह देखकर आश्चर्य होता है कि नूरमुहम्मद-जैसे सूफ़ी कवि, जो प्रसंगवश अपने साम्प्रदायिक उद्देश्य अर्थात् अपने इस्लाम धर्म के प्रचार को स्पष्ट कर देने में भी नहीं चूकते वे, अवसर आ जाने पर हिन्दुओं के शास्त्रीय मन्तव्यों का स्पष्ट परिचय भी किस प्रकार दे देते हैं तथा किस प्रकार बहुधा पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग द्वारा उनका पूरा विवरण तक देने लग जाते हैं। इसके सिवाय इन सूफ़ी कवियों में से जिन लोगों ने भी, जिन्होंने कासिमशाह अथवा शेख़ निसार की भाँति अभारतीय कथानकों को लेकर लिखा है, भारतीय जीवन की ही परम्परा द्वारा अपनी रचनाओं को प्रभावित रखा है। इनकी रचनाओं में से यदि अभारतीय पात्रों तथा उनके कार्य-क्षेत्रादि के नामों को भारतीय रूप दे दिया जाय तो भी उनकी मूल प्रवृत्ति में कोई अन्तर नहीं आ सकता उसके बलख एव चीन अथवा मिस्र

सूफ़ी प्रेम गाथा
एक आलोचना

के होते हुए भी बहुत-से पात्र न्यूनाधिक भारतीय ढंग से ही जीवन-यापन करते पाये जाते हैं। इन रचनाओं में ख़्वाजा ख़िज़्र के हारूँ-रशीद जैसे कुछ पात्र अवश्य आ जाते हैं जिनका सम्बन्ध ठेठ इस्लामी परम्परा के साथ जुड़ा हुआ है किन्तु ऐसे व्यक्तियों की भी मनोवृत्ति अधिक भिन्न नहीं लगती और न उनमें इनकी अधिक संख्या ही पाई जाती है। इसके सिवाय इनके यूसुफ़ जुलेखा वाले प्रेमाख्यान का मूल कथानक भी ऐसा है जिसमें प्रेम की पीर उनकी नायिका में ही अधिक लक्षित होती है और जिसका नायक अपेक्षा-कृत उदासीन रह जाता है, जैसा प्रायः भारतीय परम्परा में ही देखने को मिलता है।

फिर भी सूफ़ी प्रेमाख्यानों की रचना, कुछ अपनी विशेषताओं को लेकर ही हुई थी और उनके प्रभाव का पड़ना भी अवश्यंभावी था। फ़ारसी के मसनवी लिखने वालों ने जिस परम्परा का अनुसरण किया था वह प्रायः सभी प्रकार से अभारतीय थी। वैसी रचनाओं के कथानकों से लेकर उनमें चित्रित वातावरण तथा भाषा एवं शैली, इन सभी पर ईरानी वा शामी रंग चढ़ा हुआ रहता था। किन्तु हिन्दी की प्रेम-गाथाओं को लिखते समय सूफ़ी कवियों को कुछ आवश्यक परिवर्तन भी करने पड़े। भारतीय जनता के लिए लिखे गए तथा तदनुसार यहाँ की हिन्दी भाषा में होने के कारण, ऐसे प्रेमाख्यानों की कथावस्तु भी प्रधानतः भारतीय होने लगी जिसका एक परिणाम यह भी हुआ कि इन कवियों को यहाँ की वैसी कृतियों की पूर्व प्रचलित रचना-पद्धति से भी प्रभावित होना पड़ गया। जैन-कवियों की 'धर्मकथा' एवं 'संकीर्ण कथा' का साहित्य इनके पहले से ही निर्मित होता आ रहा था। उसमें भी कथाओं के द्वारा धार्मिक सिद्धांतों के स्पष्टीकरण और प्रतिपादन का कार्य होता आ रहा था। अन्तर यह था कि जिस प्रेम को सूफ़ियों ने विशेष महत्त्व दिया उसकी प्रतिष्ठा जैनियों के यहाँ नहीं प्रत्युत उनके यहाँ तपबल एवं कर्मवाद की ही प्रधानता थी। इसके सिवाय जिस प्रकार कतिपय जैन-धर्मी कवियों ने केवल मोक्ष की अभिलाषा रखने वालों के लिए यह शुद्ध धर्मकथा, दोनों लोकों की ओर ध्यान देने वालों के लिए संकीर्ण कथाविषयक वर्गीकरण करना उचित समझा था, वैसा सूफ़ी कवियों की दृष्टि से आवश्यक नहीं प्रतीत हुआ, क्योंकि इनके यहाँ के अभीष्ट प्रेम में कोई मौलिक भेद नहीं किया जा सकता था। उनके यहाँ सामाजिक दृष्टान्तों में पाया जाने वाला इश्क़मजाज़ी भी इश्क़हक़ीक़ी में परिणत हो

तुलनात्मक अध्ययन

जा सकता है। फिर भी उक्त दोनों प्रकार के कवियों में इस बात की समानता थी कि वे कथा का प्रयोग अपने धार्मिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिए किया करते थे और वे इसे प्राय: उपमिति कथा का भी रूप दिया करते थे।

जैसा इसके पहले भी कहा जा चुका है, हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने अपनी प्रेमगाथाओं के कथानक अधिकतर पूर्वप्रचलित लोक-गाथाओं अथवा उन कहानियों से भी लिये थे जो संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश द्वारा कही जा चुकी थी।

बंगला की सूफ़ी प्रेम गाथाएँ

शेख कुतबन की 'मृगावती' की दो-एक प्रारम्भिक पंक्तियों द्वारा जान पड़ता है कि उसने अपभ्रंश भाषा के गाथा, दोहा, अरिल्ल एवं आर्या छन्दों में लिखी गई बातों को अपने सोरठा और चौपाई में स्थान दिया।[1] इसके आधार पर यह अनुमान कर लेना कठिन नहीं कि उसकी रचना की कथावस्तु सम्भवतः अपभ्रंश भाषा भी किसी कृति से ही ली गई होगी। इस कथा का अनुसरण बंगला भाषा के सूफ़ी कवियों द्वारा किया गया है। दौलत काजी के लिए कहा जाता है कि उसने अपनी 'लोर चन्द्रानी' नामक प्रेम गाथा को, किसी हिन्दी वा भोजपुरी मूल के आधार पर निर्मित किया था।[2] उससे उसके आश्रयदाता महामात्य अशरफ-खाँ ने कहा था कि लोरकराज व मयना की कथा मैंने ठेठ भाषा में दोहा-चौपाई के द्वारा सुनी है जिसे सभी समझ नहीं सकते, इसलिए तुम इसे 'देशी भाषा' (बंगला) में भी लिख दो।[3] इस प्रसंग से यह भी सूचित होता है कि दोहे और चौपाई में रची गई वह प्रेमगाथा मुल्ला दाऊद की 'लोरक चन्दा'-जैसी ही रही होगी। 'लोरक व चन्दा' की मूल कथा की प्राचीनता का पता इस बात से भी चलता है कि ईस्वी शतक चौदहवीं के ज्योतिरीश्वर कवि शेखराचार्य ने भी अपनी प्रसिद्ध रचना 'वर्णन रत्नाकर' में 'लोरिक नाचो' का उल्लेख किया है।[4] हिन्दी के सूफ़ी कवियों का अनुसरण बंगला में कभी-कभी प्रेमगाथाओं के अनुवाद द्वारा किया गया और कभी केवल कथा-

१ "गाहा दोहा अरेल अरज। सोरठा चौपई कइ सरज" इ०

२ श्री सुकुमारसेन . 'इस्लामी बाङ्गला साहित्य' (वर्द्धमान, १३५८ ब०) पृ० १५।

३ वही, पृ० १७।

४ वही, पृ० २८। (लाहौर म्यूजियम में लोर चन्द्राली की कथा से सम्बन्ध रखने वाले चौबीस चित्र संग्रहीत हैं, किन्तु वे किस काव्य-रचना का अनुसरण करते हैं इसका पता नहीं चलता। दे० बाङ्गला साहित्येर इतिहास (प्रथम-खण्ड) पृ० ५६६।

वस्तु ही लेकर अलाओल ने जायसी के 'पद्मावत' का बंगला अनुवाद किया ही था। मोहम्मद कबीर ने 'मनोहर मालती' तथा सैयद हमज़ा ने 'मधु मालती' और मासूद ने 'मधुमाला मनोहर' नामक तीन रचनाओं को भी हिन्दी से ही अपनी देश-भाषा में परिवर्तित किया। इसी प्रकार कुतुबन की 'मृगावती' के आधार पर भी लिखी गई किसी हिन्दू कवि 'द्विजराज' की रचना 'मृगावती-चरित्र' तथा मुस्लिम कवि मोहम्मद खातिर द्वारा निर्मित 'मृगावती' एवं यामिनी की कहानी प्रसिद्ध है। श्री सुकुमार सेन का कथन है कि सिलहट एव चटगाँव के क्षेत्रों के मुसलमानों के यहाँ हिन्दीमूलक आख्यायिकाओं का प्रचलन बहुत अधिक था। बहुत दिन हुए इस प्रकार की 'चन्द्रमुखी' नामक एक रचना की प्रति नागरी अक्षरों में लिखी सिलहट में मिली थी जिसका उपक्रम 'मृगावती'-जैसा ही था और जिसके रचयिता खलील का निवास-स्थान भी सम्भवतः सिलहट ही था।[1]

परन्तु बंगला-साहित्य के अन्तर्गत केवल अनुवादित अथवा हिन्दी प्रेमगाथाओं पर आश्रित कहानियाँ ही नहीं मिलतीं। स्वयं आलाओल ने ही 'पद्मावती' के अतिरिक्त 'सैफुल मुलुक वदि उज्जामाल', ग्रन्थ रचा है जिसने दौलत् काजी की उपर्युक्त रचना सती मयनावती के शेषांश को पूर्ण किया है और उसके अन्तर्गत किसी अन्य छोटी-सी प्रेमकहानी का भी वर्णन प्रसंगवश कर दिया है। इसी प्रकार लैला मजनूं की प्रेम-कथा को लेकर भी बंगला में कई प्रेमाख्यानों की रचना हुई है जिनमें से चटगाँव के बहराम कवि की 'लायलि-मजनूं', मोहम्मद खातिर की 'लयला मजनूं' आदि अधिक प्रसिद्ध हैं और जिनकी कथावस्तु सम्भवत. फ़ारसी ग्रन्थों से ही ली गई है। इस कथा का सारांश इस प्रकार है—अरब के एक बादशाह को बहुत दिनों बाद एक सुन्दर पुत्र हुआ, जिसका नाम 'कैस' रखा और उसे दस वर्षों के अनन्तर मकतब में भर्ती किया गया। उसी दिन उस मकतब में किसी सौदागार की पुत्री लैला भी भर्ती हुई और ये दोनों क्रमशः एक-दूसरे पर प्रेमासक्त हो गए। फिर इस बात का पता दूसरों को भी लग गाया जिस कारण लैला की माँ ने उसे मकतब से हटा लिया। अतएव लैला को मजनूं का विरह सताने लगा और यही दशा मजनूं की भी लैला के लिए हो चली। फलतः मजनूं भिखारी के वेश में लैला के द्वार पर आने लगा और भीख देने के बहाने उसके निकट लैला भी जाने लगी। जब लोगों को यह बात भी विदित हो गई तो लैला की

लैला मजनूं (हाशिया-शीर्षक)

1. इस्लामी बाङ्गला साहित्य, पृ० ५३

माँ ने मजनूं को वहाँ से निकलवा दिया और वह वन की ओर चला गया। मजनूं का पिता बादशाह उसे लाने के लिए वन में गया जहाँ उसने उसे उन्माद की दशा में 'लैला, लैला' का जप करते हुए पाया। उसने मजनूं को किसी दरवेश से दिखलाकर तदबीर कराई जिससे पागलपन तो दूर हो गया किन्तु उसकी आसक्ति नहीं छूटी। बादशाह ने तब सौदागर के पास मजनूं के लैला के साथ विवाह का प्रस्ताव भेजा और अच्छी वेश-भूषा में उसके घर लेगया। किन्तु वहाँ लैला के एक के कुत्ते को देखते ही मजनू ने उसको गले लिया जिसे देखकर सौदागर को उसमें पागलपन का सन्देह हो गया। बादशाह ने फिर मजनूं को दरवेश से दिखलाया किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ और मजनू वन में जाकर पशुओं के साथ रहने लगा। इधर लैला का विवाह किसी सालाम बादशाह के साथ निश्चित हो गया, किन्तु दोनों प्रेमियों में पत्र-व्यवहार चलता रहा। एक दिन एक बादशाह से मजनू की जगल में भेंट हो गई और उसने प्रभावित होकर लैला के पिता को मजनूं के साथ विवाह के लिए पत्र लिखा तथा उसके न मानने पर उस पर चढ़ाई करके लैला को बुला मँगाया और दोनों प्रेमियों में भेंट हो गई।

इस प्रकार लैला एव मजनूं के विवाह के उपलक्ष में बादशाह ने शर्बत पिलाने के लिए लोगों को निमन्त्रित किया। मजनू के प्याले में विष घोल दिया गया था जिसे भ्रम से पीकर बादशाह मर गया वहाँ और फिर दोनों के मिलने में बाधा पहुँच गई। मजनू एव लैला तव से वन में, एक-दूसरे का निवास-स्थान बिना जाने पृथक्-पृथक् रहने लगे। सौदागर ने चाहा कि लैला को वन से अपने घर लौटा ले, किन्तु मार्ग में लैला का ऊँट किसी प्रकार मजनू के निकट पहुँच गया जहाँ पर लैला ने पहले मजनूं को नहीं पहचाना। किन्तु पीछे उसे पहचानकर तथा उसकी दशा देखकर वह मूर्छित हो गई। फिर जब वह स्वस्थ होकर उससे अपनी करुण दशा का वर्णन करने लगी तो मजनू ने सिर नीचा कर लिया। इस पर लैला सौदागर के घर पहुँचा दी गई जहाँ उसने विरहाग्नि में सतप्त होकर अपने प्राण त्याग दिये। लैला की माँ ने तब उस घटना का पता वन में जाकर मजनूं को दिया जो सुनते ही धूल में लोटने लगा और उसकी मृत्यु से पशु वर्ग तक प्रभावित हुआ। इस कथा-वस्तु के आधार पर लिखी गई, हिन्दी की प्रसिद्ध प्रेमगाथा नहीं है।[1] फिर

१ जान कवि ने इस कथानक के आधार पर एक रचना की है। परन्तु वह अभी तक अप्रकाशित है—लेखक

भी मोहम्मद खातिर की ही रचना लैला मजनूं की कई पंक्तियों के बहुत-से वाक्य तथा कई शब्द हिन्दी के हैं और यह बात उसमें संग्रहीत गीतों में, विशेष रूप से, दीख पड़ती है। इस घटना का कथानक मूलतः अभारतीय है और इसकी घटनाएँ तक शामी जीवन के रंग में ही रँगी हुई हैं। विवाह की योजना-पद्धति, शर्बत के प्यालों की दावत एवं विरह-भाव की अतिशयता आदि कुछ ऐसी बातें है जो यहाँ के लिए उतनी परिचित नहीं। फिर भी इस रचना के कवि की अपने भारतीय संस्कारों की भी छाप, इसमें कम नहीं लक्षित होती।

यूसुफ़ एवं ज़ुलेखा की प्रेम-कहानी भी अभारतीय है और इस विषय पर हिन्दी-कवियों ने भी रचना की है। बंगला भाषा में इसे अपनी रचना का आधार बनाने वाले सर्वप्रथम कवि कदाचित् गरीबुल्ला थे, जो अठारहवीं शताब्दी में वर्तमान थे। इनकी रचना पीर बदर एवं बड़खाँ गाज़ी के संवाद रूप में लिखी गई है और इसमें नबी यूसुफ़ के प्रति श्रद्धा भी प्रदर्शित की गई है।

यूसुफ़ ज़ुलेखा

हिन्दी के कवि निसार ने इस विषय पर गरीबुल्ला से केवल दो ही वर्ष पहले अपनी रचना की थी और उसकी भी मनोवृत्ति ऐसी ही थी। रचना की कथा-वस्तु के अनुसार नबी यूसुफ़ नबी याक़ूब के बारह पुत्रों में सबसे छोटे थे और उनके अत्यंत प्रिय पात्र भी थे। वे बहुत सुन्दर थे और इनके ग्यारहों भाइयों ने इनके प्रति ईर्ष्यावश होकर कुँए में ढकेल दिया तथा प्रचार कर दिया कि इन्हें भेड़िया खा गया जिससे इनके पिता को हार्दिक कष्ट हुआ और अंत में वे अन्धे तक हो गए। यूसुफ़ को कुछ सौदागरों ने कुँए से निकाला किन्तु इनके भाइयों ने इन्हें अपना गुलाम घोषित करके उनसे कुछ द्रव्य भी ले लिया। पश्चिम देश के तैमूस नामक एक सुलतान की लड़की का नाम ज़ुलेखा था जो बड़ी रूपवती थी और जिसने कभी यूसुफ़ को केवल स्वप्न में देखा था। ज़ुलेखा की धाय ने उसके पिता से कहकर उसके विवाह का निश्चय मिस्र के वजीर के साथ कराया और इसने समझा कि यूसुफ़ ही इस पद पर होंगे। किन्तु इसमें धोखा हो गया और ज़ुलेखा को यूसुफ़ के विरह में फिर उसी प्रकार कष्ट झेलना पड़ा।

इधर सौदागर यूसुफ़ को मिस्र के बाजार में गुलाम के रूप में बेचने के लिए पहुँचे और वहाँ उसके अनुपम सौंदर्य की प्रशंसा होने लगी। ज़ुलेखा ने जब यूसुफ़ को देखा तो उसने उसे शीघ्र पहचान लिया और पति से कहकर उसे खरीदवा भी लिया। ज़ुलेखा को अब प्रसन्नता थी। किन्तु यूसुफ़ सदा

वही

उदास रहा करता था और एक दिन, जुलेखा का आलिंगन करने के लिए आकृष्ट होकर भी उसने, अपने पिता की स्मृति के आते ही ऐसा करना अनुचित समझा और जब वह भागने लगा तो उसे पकड़ते समय जुलेखा के हाथ में उसके कुर्ते का पल्ला फटकर आ गया। यूसुफ़ इसीके बहाने बन्दी बना दिया गया जहाँ से किसी सवार को गुज़रता हुआ देखकर उसने अपने पिता के पास सदेश भेजा। जुलेखा की, उक्त घटना के आधार पर, निन्दा होने लगी थी। इस कारण वज़ीर ने उसका परित्याग कर दिया। मिस्र के सुलतान ने पीछे यूसुफ़ द्वारा प्रभावित होकर उसे वन्दीगृह से मुक्त कर दिया और उसे अपना मन्त्री भी बना लिया जिस पद पर रहते समय उसकी अपने पिता से भी भेंट हो गई और उसे मिस्र की गद्दी भी मिल गई। किन्तु जुलेखा उसके विरह में अंधी तक हो गई। एक दिन जब यूसुफ़ सुलतान की सवारी निकल रही थी तो उसने मार्ग में खड़ी हुई स्त्रियों में से जुलेखा को पहचान लिया। नबी याकूब ने आशीर्वाद देकर फिर उसे युवती बना दिया और दोनों का विवाह भी कर दिया। यहीं यूसुफ फिर याकूब के मरने पर नबी के पद पर भी आसीन हुआ। जुलेखा उसके अन्तिम समय तक उसकी सहधर्मिणी बनी रही। इस प्रकार यहाँ पर भी कथावस्तु की अनेक बातें भारतीय सामाजिक जीवन से मेल रखती नहीं प्रतीत होतीं। दास प्रथा, वैवाहिक सम्बन्ध, विरह में अन्धा और अन्धी हो जाने की घटना तथा अन्य भी बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो साधारणतः भारतीय परम्पराओं के प्रतिकूल जान पड़ती हैं। केवल जुलेखा-जैसी प्रेमिका का यूसुफ-जैसे पुरुष के प्रति आकृष्ट होकर अपेक्षाकृत अधिक प्रेमासक्त हो जाना ही एक ऐसी घटना है जो अभारतीय दृष्टिकोण के सर्वथा अनुकूल है। सूफ़ी कवियों के अनुसार तो पुरुष की ही स्त्री के प्रति आसक्ति अधिक स्वाभाविक है। फिर भी इस विषय को लेकर हिन्दी के सूफ़ी कवि नसीर ने 'प्रेमदर्पण' तथा बगला के फकीर महम्मद और अब्दुल हकीम ने भी यूसुफ जुलेखा की रचना की है।

प्रेमाख्यान की प्रसिद्ध कथावस्तुओं में से शीरीं और फरहाद के प्रेम की भी एक ऐसी ही कहानी है जिसे बंगला-कवियों ने अपनी रचनाओं के लिए अपनाया है। ऐसी कृतियों में ताजुद्दीन

शीरीं फरहाद

खाँ और काज़ी रैहानुद्दीन की 'शीरीं फ़रहाद' की गणना की जायगी। इस प्रेम-कथा में भी विरह-भाव के प्रभाव की पराकाष्ठा दीख पड़ती है और यह भी लैला मजनू की प्रेम-कहानी की भाँति दुःखान्त ही है। हिन्दी के सूफ़ी कवियों में से,

कदाचित्, किसी ने भी इसकी कथावस्तु को अपनी प्रेम-गाथा का आधार नहीं बनाया है। सूफ़ी कवियों की सदा यह चेष्टा रही है कि प्रेमी वा प्रेमिका के, अपने प्रेमपात्र के विरह में, असीम कष्ट के झेलने का चित्रण करें तथा उसकी उपलब्धि के लिए किये गए प्रयत्नों में से कठिन-से-कठिन वया असम्भव तक की चर्चा कर देने मे न चूकें। इस प्रकार के वर्णनों के उदाहरण के लिए यदि हम अभारतीय कहानियों पर विचार करने लगें तो, विरह-भाव की तीव्रता की दृष्टि से, मजनूं तथा जुलेखा को भी दशाओं का विवरण उपयुक्त जँचेगा और प्रेमकी ओर से किये गए विकट प्रयत्नों के प्रसंग में फ़रहाद के भगीरथ प्रयत्न तथा सैफुल्मुल्क के भी साहसिक अभियानों के अतिशयोक्तिपूर्ण उल्लेखों का स्मरण हुए विना नहीं रह सकेगा। विरहाधिक्य के कारण विरही अथवा विरहिणी के मर जाने की चर्चा भारतीय प्रेमाख्यानों में भी पाई जाती है। किन्तु यहाँ पर उसके पुनर्जन्म के अनुसार प्रायः फिर प्रकट हो जाने का भो उल्लेख आ जाया करता है, जिससे उसके साथ सहानुभूति रखने वाले पाठकों का ध्यान अपनी हार्दिक समवेदना तक ही सीमित न रहकर चमत्कारों की ओर भी आकृष्ट हो जाता है। इसी प्रकार भारतीय प्रेमाख्यानों में हमें उक्त साहसिक अभियानों के भी उल्लेख प्रचुर मात्रा में मिल जाते हैं किन्तु यहाँ के प्रेमियों को प्रेरित करने वाली भावना सदा उतनी स्पष्ट और अमिश्रित नहीं रहा करती। वास्तव में कोरे प्रेम-व्यापारों को ही यहाँ उतना महत्त्व भी नहीं दिया जाता।

शीरीं फ़रहाद के प्रेमाख्यानों की कथावस्तु का साराश इस प्रकार दिया जा सकता है.—शीरीं ईरान की एक एक परम सुन्दरी युवती थी और

उसकी कथावस्तु

चीन देश का फरहाद नामक एक कलाकार उसके सौन्दर्य के प्रति आसक्त था। ईरान का शाह खुसरो भी शीरीं से प्रेम करता था और उसने किसी-न-किसी प्रकार उसे अपने महलों में बुला लिया। किन्तु शीरीं फ़रहाद के साथ प्रेम करती थी जिस कारण वह उसके विरह में बरावर दुःख उठाती रही और वह फरहाद के सच्चे प्रेमभाव में पूरी आस्था भी रखती थी। खुसरो ने शीरीं की अनुमति से फ़रहाद की परीक्षा लेना चाही और तदनुसार उसने उसे यह प्रस्ताव भेज दिया कि यदि वह पहाड़ से होकर एक नहर निकाल दे और उसे वह उसके महलों तक वहाँ ला सके तो शीरीं उसे दे दी जायगी। परन्तु जब फ़रहाद नहर को काटकर महलों के निकट तक ले आया तो शाह ने उसे धोखे में कहला भेजा कि शीरीं का पहले से ही देहान्त हो चुका है। फ़रहाद के लिए

इतना सुन पाना असह्य था, इसलिए उसने उसी क्षण आत्महत्या कर ली। शीरीं ने भी यह समाचार सुनकर शरीर त्याग कर दिया। भारतीय प्रेमाख्यान 'माधवानल कामकंदला' में आया है कि इसी प्रकार महाराजा विक्रमादित्य ने भी कामकंदला की मृत्यु का झूठा समाचार देकर माधव की तथा माधव की मृत्यु का भी वैसा ही पता देकर कामकंदला की परीक्षा ली और वे दोनों मर गए थे, किन्तु पीछे उन्हें उनके बेताल ने पुनर्जीवन प्रदान किया था। शीरीं फ़रहाद की प्रेम-कहानी का अन्त दोनों की मृत्यु में ही हो जाता है।

पजाबी व कश्मीरी के वैसे प्रेमाख्यान

शीरीं फ़रहाद, यूसुफ़ जुलेखा एवं लैला मजनू की प्रेम-कहानियों के आधार पर पजाबी एव कश्मीरी भाषाओं के साहित्यों में भी प्रेमख्यान के किसी-न-किसी रूप की रचनाएँ पाई जाती हैं। इनके रचयिता अधिकतर मुसलमान कवि ही हैं और वे भी सूफ़ी सम्प्रदाय के अनुयायी जान पड़ते हैं। पंजाबी कवि हाफ़िज बरखुरदार ने, जो बादशाह औरंगज़ेब का समकालीन था, अन्य प्रेमाख्यानों के अतिरिक्त, यूसुफ़ एव जुलेखा की प्रेमकहानी के आधार पर भी लिखा है। परन्तु वर्ण्य-विषय का रूप धार्मिक हो जाने के कारण, उसकी इस रचना में कहीं-कहीं दार्शनिकता की भी गन्ध आ गई है। इस कवि की 'ससी पुन्नू', हीर-राँझा' तथा 'मिरजा साहिबाँ' नामक अन्य प्रेम-कथाओं में यह विशेषता उतनी मात्रा में नहीं दीख पड़ती। पजाबी की ही भाँति कश्मीरी भाषा में भी हमें लोकगाथाओं पर आश्रित अनेक प्रेमाख्यान मिलते हैं, तथा उसके मुस्लिम कवियों ने भी 'लैला मजनू' 'शीरीं फ़रहाद' एव 'यूसुफ़ जुलेखा' की कथावस्तुओं के आधार पर कतिपय प्रेमाख्यानों की सृष्टि की है। किन्तु कश्मीरी जन-समाज में भी जितनी लोकप्रियता वहाँ के प्रसिद्ध 'हिमल ओ नगराय', 'बंबूर ओ लोलारे' तथा 'जोहरा खातून ओहयाबन्द' सज्ञक लोक-गीतों को मिली है उतनी इस प्रकार की रचनाओं को उपलब्ध नहीं हो पाती। कश्मीर के ही सम्बन्ध में कभी-कभी उस प्रेमकथा का भी उल्लेख किया जाता है जिसे अंग्रेजी कवि टामसमूर ने अपनी 'लल्ला रुख' नामक कविता का विषय बनाया है और जो औरंगजेब की एक पुत्री तथा काशगर के बादशाह नवाज़िश के सम्बन्ध में है। कहते हैं कि काशगर के बादशाह अब्दुल्ला ने अपने पुत्र नवाज़िश को अपना राज्य सुपुर्द कर दिया और वह मक्के की ओर चला। मार्ग में वह दिल्ली से जाते समय औरंगज़ेब का अतिथि रहा और वहीं यह निश्चय हुआ कि औरंगज़ेब की सबसे छोटी पुत्री का विवाह उसके पुत्र के

साथ कश्मीर के सुन्दर प्रदेश में किया जाय। तदनुसार पीछे शाहज़ादी, दिल्ली से कश्मीर की ओर, लाहौर होती हुई गई और उसके साथ, मनोरंजन के लिए, अनेक प्रकार के गायकों आदि का प्रबन्ध कर दिया गया। कहते हैं कि ऐसे ही लोगों में एक प्रेम-कहानियों का कहने वाला भी व्यक्ति था जो किसी काश्मीरी कवि-सा प्रतीत होता था। शाहज़ादी उस पर मुग्ध होकर उससे प्रेम करने लग गई और अन्त में, पता चला कि वह स्वयं नवाज़िश ही था, जो दूल्हा होने वाला था।[1] रामसमूर ने एक साधारण-सी ऐतिहासिक घटना के रूप-रंग को बढ़ा-घटाकर उस पर रोमांस का पालिश कर दिया। रूपमती बाजबहादुर तथा देवलदेवी एवं खिज्र खाँ की प्रेमकहानी की भी रचना प्रायः इसी प्रकार की गई है। किन्तु इन दोनों में से किसी पर भी कोई सूफी प्रभाव नहीं पड़ा है, प्रत्युत या तो इनमें राजसी विलासप्रियता का चित्रण अधिक है अथवा प्रेम-व्यापार की गौण बातें ही दी गई हैं। कश्मीर, पंजाब एवं बंगाल पर मुस्लिम समाज एवं संस्कृति का प्रभाव विशेष रूप से लक्षित होता है जिस कारण यहाँ की भाषाओं की प्रेम-कहानियों में भी उस रंग में रँगे हुए प्रसंगों का आ जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किन्तु इनके अभारतीय प्रेमाख्यानों में हमें भारतीयता भी क्रमशः अधिकाधिक अंशों में उपलब्ध होती जान पड़ती है। कश्मीर एवं पंजाब के साहित्यों में जहाँ पौराणिक आख्यानों का भी प्रायः अभाव-सा है वहाँ बंगला साहित्य में यह बात नहीं है। फिर भी बंगला में धार्मिक आख्यानों का जहाँ बाहुल्य है वहाँ शुद्ध प्रेमाख्यान वैसी संख्या में नहीं पाये जाते।

---

1. Dr. G M.D.Sufi. 'Kashir' (Lahore, 1948) vol 1, p. 280 ft note

प्रादेशिक साहित्यों के विविध प्रेमाख्यान

पौराणिक प्रेमाख्यानों के लिए, कदाचित्, सबसे अधिक समृद्धिशाली गुजराती साहित्य कहा जा सकता है। प्रेमाख्यानों के निर्माण की परम्परा जो अपभ्रंश साहित्य के साथ चलती आ रही थी

गुजराती के पौराणिक प्रेमाख्यान

उसमें पूरा योगदान देने के उद्देश्य से गुजराती कवियों ने पौराणिक प्रेमगाथाओं का भी उपयोग आरम्भ किया। यों तो इस ओर गुजराती के सर्व-प्रथम प्रसिद्ध कवि नरसी मेहता ने मार्ग-प्रदर्शन कर दिया था, किन्तु उनका 'सुदामा चरित्र' प्रेमाख्यान की कोटि में नहीं आ सकता। गुजराती का प्रथम पौराणिक प्रेमाख्यान वीरसिंह का 'उषा हरण' काव्य कहला सकता है, जो विक्रम की १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना समझा जाता है और जो सम्भवत 'हरिवंशपुराण' के आधार पर लिखा गया है। फिर इसी विषय को लेकर केवल विभिन्न घटनाओं के न्यूनाधिक वर्णन के अनुसार, जनार्दन अखाड़ी ने 'उषा अनिरुद्धनु विवाह' की रचना की। उनके पीछे अन्य कविया ने भी इसकी कथावस्तु को अपनाया और तदनुसार नाकर एव प्रेमानन्द-जैसे कुशल काव्य-रचयिताओं ने भी इसके आधार पर अपनी-अपनी 'ओखाहरण' नामक सुन्दर कृतियों का निर्माण किया। इसमें सन्देह नहीं कि इन सभी तथा ऐसे अन्य एकाध कवियों के भी लिए मूल आधार का काम प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान ने ही किया। किन्तु इन्होंने अपने-अपने काव्य-कौशल के अनुसार अपनी-अपनी कृतियों में सौन्दर्य की वृद्धि की तथा उन्हे सरस बनाया। इसी प्रकार गुजराती में 'रुक्मिणी हरण' के विषय को लेकर भी गोविन्ददास, काशीसुत, कृष्ण, देवीदास एव हरिराम आदि कवियों ने रचनाएँ की हैं और उनके नामों को किंचित् परिवर्द्धन के साथ भी दिया है। परन्तु इन सभी से अधिक प्रसिद्ध रचना भालण कवि की है जिन्होंने अपने रचना-नैपुण्य द्वारा अन्य ऐसी कृतियों की भी सृष्टि कर डाली है। भालण कवि, नाकर एव प्रेमा-

नन्द गुजराती आख्यानों के सर्वश्रेष्ठ कवि समझे जाते हैं और कहते हैं कि इन्हींके कारण यह विषय गुजराती साहित्य की विशेषता प्रकट करता है। भालण कवि की सर्वश्रेष्ठ रचना 'कादम्बरी' समझी जाती है, जो पौराणिक आख्यानों की कोटि में न आने पर भी बहुत सुन्दर प्रेमाख्यान है। भालण, नयसुन्दर, प्रेमानन्द और नाकर ने नल एवं दमयन्ती की प्रेमकथा को भी अपनी रचनाओं का आधार बनाया है। गोविन्ददास तथा वल्लभ भट्ट ने तो सुभद्रा-हरण पर भी अपनी रचनाएँ निर्मित की हैं और वे भी अच्छी कही जा सकती हैं।

'उषाहरण', 'बल विजय' तथा 'उर्वशी मर्दन'-जैसी रचनाएँ बगला में भी पाई जाती हैं। असमी साहित्य के 'उषा-परिणय' काव्य के रचयिता पीताम्बर द्विज ने, विषय के पौराणिक होने पर भी, अपनी कृति में बहुत-कुछ लौकिक भावों का ही चित्रण किया है। कहते हैं कि इस कवि की 'रुक्मिणीहरण' वाली रचना के अन्तर्गत 'पार्थिव कलुषित काम भाव' तक पाया जाता है। यह बात शंकरदेव के 'रुक्मिणीहरण' में नहीं लक्षित होती, जिन्होंने इसकी कथा के व्याज से बड़े ही मनोहर पारिवारिक जीवन का भी वर्णन किया है।

असमी और मराठी

रुक्मिणीविषयक इस प्रसिद्ध कथावस्तु के आधार पर महाराष्ट्र के संत एकनाथ ने भी अपनी रचना 'रुक्मिणी स्वयम्वर' का निर्माण किया है। यह इतनी लोकप्रिय है कि बहुत-से लोग इसका नित्य पाठ किया करते हैं और इसे एक धार्मिक ग्रन्थ तक के रूप में स्वीकार करते हैं। वास्तव में महाराष्ट्र के अन्तर्गत रुक्मिणी ही श्रीकृष्ण की सबसे विशिष्ट प्रेयसी मानी जाती है। वहाँ राधा को उतनी प्रधानता नहीं दी जाती, महानुभाव पंथ के नरेन्द्र कवि की रचना 'रुक्मिणी स्वयम्वर' की चर्चा इसके पहले की जा चुकी है। इस पंथ के ही नारो व्यास नामक एक कवि ने तो 'रुक्मिणी हरण' के अतिरिक्त 'रुक्मिणी पत्रिका' नाम से भी एक पुस्तक लिखी है। 'रुक्मिणी स्वयम्वर' शीर्षक देकर काव्य रचना करने वाले अन्य मराठी कवियों में नृसिंह जयराम स्वामी वडगाँवकर, नागेश, विट्ठल तथा महदायिसा के नाम प्रसिद्ध हैं। महदायिसा कवयित्री हैं और इनकी रचना का नाम भी 'मातृका रुक्मिणी स्वयम्वर' है। मराठी में एक रचना 'रुक्मिणी स्वयम्वर' (नवखंड) नाम से भी पाई जाती है तथा इसमें एक 'रुक्मिणीहरण' भी है, जो सामराज कवि की सर्वश्रेष्ठ रचना कहला कर विख्यात है। पौराणिक प्रेमाख्यानों के आधार पर लिखी गई मराठी रचनाएँ उतनी उल्लेखनीय नहीं

कही जा सकतीं।

कन्नड और तैलुगु

कन्नड साहित्य के अन्तर्गत पौराणिक प्रेमाख्यानों के अधिक उदाहरण नहीं मिलते। कनकदास के 'नल चरित्र' तथा रघुनाथ नायक की रचना 'रुक्मिणी विलास'-जैसे कतिपय काव्य-ग्रन्थ अवश्य मिलते हैं, किन्तु वे इस दृष्टि से उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। कन्नड कवि नाग वर्मा ने बाणभट्ट की प्रसिद्ध कादम्बरी का भी पद्यानुवाद किया है, किन्तु ऐसी रचनाएँ भी अधिक, सख्या में उपलब्ध नही हैं। तैलुगु भाषा में जो अभिनव वागानुशासन का ग्रन्थ 'रुक्मिणी परिणय' मिलता है, वह १८वीं शताब्दी की रचना है। तैलुगु के एक अन्य कवि नन्दि तिम्मन ने रुक्मिणी की सौत सत्यभामा का प्रसग लेकर अपने 'पारिजातापहरणम्' काव्य-ग्रथ की रचना की है। इसमें यह नायिका एक परम ईर्ष्यालु पत्नी के रूप में चित्रित की गई है, जो अपने प्रेमी नायक श्रीकृष्ण को एक-मात्र अपने लिए ही सुरक्षित रखना चाहती है और अपनी सौत रुक्मिणी के लिए उसके पारिजात का एक पुष्प ला देने पर उससे पारिजात का पूरा वृक्ष ही मँगवा लेती है। सत्यभामा को इस बात का भी विचार नहीं होता कि उसके प्रेमी पति को उसके हठ की बात पूरी करने के लिए सुरेश इन्द्र से लड़ना भी पड़ता है। तैलुगु में नलोपाख्यान के आधार पर लिखी गई सर्वप्रसिद्ध रचना 'शृङ्गार नैषधम्' है जो सस्कृत महाकाव्य का अनुवाद कहा जा सकता है। इसी प्रकार अनिरुद्ध वाले प्रेमाख्यान को लेकर लिखा गया 'अनिरुद्ध चरित्र' भी कहा जा सकता है, किन्तु यह भी उतना उल्लेखनीय नहीं है।

तैलुगु प्रेमाख्यान

तैलुगु के उत्कृष्ट प्रेमाख्यानों के उदाहरण में 'प्रभावती प्रद्युम्न' एव 'कलापूर्णोदय' को बहुत उच्च स्थान प्रदान किया जाएगा ये दोनों रचनाएँ पिङ्गली सुरन्ना की कृतियाँ है और ये बहुत प्रसिद्ध भी हैं। 'प्रभावती प्रद्युम्न' की कथा वस्तु का साराश आ चुका है। यह 'हरिवश पुराण' की कथा पर आश्रित है और इसमें दिखलाया गया है कि किस प्रकार वज्रनाभ नामक दैत्य को मारने के लिए षड्यन्त्र किया जाता है। किस प्रकार एक हस उसके घर जाकर उसकी सुन्दरी कन्या प्रभावती के निकट श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के सौन्दर्य की भूरि-भूरि प्रशसा करता है, किस प्रकार प्रद्युम्न वहाँ पर अभिनेताओं का दल लेकर जाते हैं, वहाँ अभिनय दिखलाते हैं। फिर क्रमश. महल में प्रवेश पा जाते है और किस प्रकार अन्त में वज्रनाभ के साथ युद्ध ठानकर तथा

उसे मारकर भी प्रभावती को वहाँ से भगा ले जाते हैं। इस प्रकार सुरन्ना के इस काव्य-ग्रन्थ का आधार पौराणिक है, किन्तु उसने अपने काव्य-कौशल द्वारा इसे बहुत ही आकर्षक बना दिया है। सुरन्ना की दूसरी रचना 'कला-पूर्णोदय' की कथावस्तु पौराणिक नहीं कही जा सकती, यद्यपि उसके पात्रों के नाम पौराणिक ही है। वह एक पूर्णतः स्वतन्त्र रचना है और सफल भी है। इसकी कथा के अनुसार—स्वर्गीय अप्सरा रम्भा को अपने सौंदर्य पर बहुत गर्व है और उसे दृढ़ विश्वास है कि मैं अपने प्रेमी नलकूवर से कभी वियुक्त नहीं हो सकती, किन्तु नारद का कथन है कि, किन्हीं कृत्रिम रम्भा एवं नलकूवर के कारण, ऐसा होकर ही रहेगा। तब तक कोई कल भाषिणी नाम की स्त्री नल-कूवर से प्रेम करने लग जाती है और इसी प्रकार कोई मणिकन्धर भी रम्भा पर आसक्त हो जाता है। सफलता प्राप्त करने के उद्देश्य से मणिकन्धर नलकूवर का वेश धारण कर लेता है जिस कारण वह रम्भा का ध्यान आकृष्ट कर लेता है। इसी प्रकार, कलभाषिणी भी रम्भा का रूप ग्रहण कर नलकूवर को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। अतः एक पूरी भूलभुलैयाँ खड़ी हो जाती है। अन्त में श्रीकृष्ण तथा उनकी पत्नियाँ एवं काली उपासक के तथा मल-यालीतान्त्रिक इन गुत्थियों को सुलझाने में सहायक हो जाते हैं।[1] कला-पूर्णोदय को तेलुगु साहित्य के कुछ प्रसिद्ध आलोचनाओं ने उसकी सर्वश्रेष्ठ काव्य-रचना ठहराई है। इसे कुछ लोगों ने, पिछली सुरन्ना के समकालीन अंग्रेजी कवि शेक्सपियर के नाटक 'कमेडी आफ़ ऐरर्स' के समकक्ष भी बतलाया है। किन्तु डा० पी० टी० राजू का कहना है कि ऐसा करना सुरन्ना के साथ अन्याय करना होगा, क्यों कि यह तेलुगु की रचना उससे अधिक गौरव की वस्तु कहला सकती है। इनके अनुसार 'कलापूर्णोदय' की समता यदि किसी के साथ की जा सकती है तो वह बाण की 'कादम्बरी' है, यद्यपि वह भी अधिक भारी भरकम हो गई है।[2] कुछ आलोचकों ने सुरन्ना की रचना 'प्रभावती प्रद्युम्न' की भी तुलना शेक्सपियर के 'रोमियो जूलियट' नाटक के साथ की है।

तेलुगु भाषा के प्रेमाख्यानों की चर्चा करते समय हमारा ध्यान राजा कृष्णदेव राय की 'आमुक्त माल्यदा' की ओर भी चला जाता है। यद्यपि इस रचना की नायिका प्रसिद्ध आलवार भक्तिन आंडाल गोदा है और

---

१ P. Chenchiah : Telugu Literature' (Heritage of India series) pp 79-80

२. P. T Raju Telugu Literature' (The P E N Books) qp 41.

'आमुक्त माल्यदा' इसके नायक श्री रङ्गनाथ नामक विष्णु की मूर्ति ही कही जा सकती है, फिर भी उन दोनों का चित्रण यहाँ पर लगभग पौराणिक रूपों में ही किया गया है। पाण्ड्य राज्य के श्री बिल्लुपुत्तूर नामक नगर में विष्णुचित्त नाम का एक सतोगुणी ब्राह्मण रहा करता था। उसे किसी दिन एक पुष्करिणी के किनारे कोई सुन्दरी बालिका मिल गई जिसे उसने अपनी कन्या के रूप में पाला-पोसा और जिसके प्रति वह बहुत स्नेह-भाव भी रखने लगा। जब वह बालिका सयानी हो चली तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह श्रीरङ्गम् के विष्णु-विग्रह रघुनाथ के प्रेम में निरयश घुलती जा रही है। विष्णुचित्त को जब इस बात का निश्चय हो गया तो वह उसे श्रीरङ्गम् के मन्दिर में ले गया और वहीं उसे समर्पित भी कर दिया। कहा गया है विष्णुचित्त को स्वय विष्णु भगवान् ने ने ही स्वप्न दिया था कि तुम आडाल का विवाह मेरे साथ कर दो। इस प्रकार तैलुगु साहित्य के अन्तर्गत प्राय सभी प्रकार के भारतीय प्रेमाख्यानों के कुछ-न कुछ उदाहरण मिल जाते हैं, केवल किसी सूफ़ी प्रेमगाथा का ही पता नहीं चलता और न वैसे ही प्रेमाख्यान उपलब्ध हैं जिनका आधार लोकगाथाएँ हुआ करती हैं।

आध्र देश के उत्तर की ओर प्रचलित उत्कल-साहित्य के विषय में हम ठीक इसी प्रकार नहीं कह सकते। उसमें केवल सूफ़ी प्रेमगाथाओं का ही अभाव है और पौराणिक प्रेमाख्यानोंकी वहाँ प्रचुरता

उड़िया और मैथिली दीख पड़ती है। उषा एवं अनिरुद्ध की प्रेम-कथा के आधार पर शिशुशकर दास ने 'उषाभिलाष' नामक रचना प्रस्तुत की है इसी प्रकार, कातिकदास ने भी रुक्मिणी के विषय में 'रुक्मिणी विभा' लिख दी है। नल एव दमयन्ती के आख्यान के आधार पर मधुसूदन कवि ने 'नल चरित' की रचना की है और सुभद्राहरण का विषय लेकर उपेन्द्रभञ्ज कवि ने उस पर आश्रित 'सुभद्रापरिणय' नामक उत्कृष्ट काव्य लिखा है। किन्तु उड़िया भाषा की ऐसी सबसे उल्लेखनीय काव्य-रचना कदाचित् 'हारावती' कही जा सकती है जो पौराणिक न होकर साधारण जन-जीवन का परिचय देती है। 'हारावती' का नायक एक सीधा-सादा किसान है और इसकी नायिका भी एक वैसी ही हलवाहे की कन्या है। इसका रचयिता रामचन्द्र पट्टनायक है। मैथिली-साहित्य के पौराणिक प्रेमाख्यान हमें अधिकतर, कीर्तनिया नाटकों के ही रूप में मिलते हैं। उदाहरण के लिए उषा एव अनिरुद्ध की प्रेमकथा का विषय लेकर

देवानन्द कवि तथा हर्षनाथ कवि ने भी अपने-अपने 'उषा हरण' की सृष्टि की है। इसी प्रकार सुभद्रा वाली कथा की कथावस्तु पर उमापति कवि के 'पारिजात हरण' को तथा रुक्मिणी के प्रसंग पर रमापति के 'रुक्मिणी हरण' को आश्रित कहेंगे। गोविन्द कवि ने नल एवं दमयन्ती के आख्यान पर 'नल चरित नाटक' की रचना की है। मैथिली भाषा में लोक-गाथाओं की कमी नहीं है, किन्तु, जहाँ तक पता है, उसमें काल्पनिक अथवा सर्वथा मौलिक प्रेमाख्यानों का अभाव है।

राजस्थानी का 'बुद्धिरासो'

राजस्थानी-साहित्य में हमें पौराणिक प्रेमाख्यानों में से रुक्मिणी के सम्बंध में साँभाजी का 'रुक्मिणीहरण' उपलब्ध है; जिसके विषय में कहा जाता है कि उसे बादशाह अकबर ने पृथीराज राठौर की 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' से भी श्रेष्ठतर बतलाया था। 'वेलि' के सम्बन्ध में इसके पहले चर्चा की जा चुकी है और इसके काव्य-सौन्दर्य एवं सजीव चित्रण का उल्लेख किया गया है। वेलि की एक विशेषता यह भी है कि कवि ने इसे आध्यात्मिक दृष्टि से भी देखा है तथा इसे मुक्ति की 'निसैनी' तक माना है। राजस्थानी में इस विषय पर एक अन्य रचना 'रुक्मिणीमंगल' नाम से भी प्रसिद्ध है; किन्तु इसके कवि का पता नहीं चलता। राजस्थानी में रचे गए 'ढोला मारूरा दूहा' तथा तद्विषयक अन्य काव्य-ग्रन्थों की भी चर्चा इसके पहले की जा चुकी है। जल्ह कवि द्वारा विरचित 'बुद्धिरासो' नामक एक छोटा-सा प्रेमाख्यान भी मिलता है, जिसकी कथावस्तु न तो पौराणिक है, न ऐतिहासिक ही, प्रत्युत वह काल्पनिक ही जान पड़ती है। इसमें चम्पावती नगरी का राजकुमार अपनी राजधानी से आकर कुछ दिनों के लिए जलधि-तरंगिनी नाम की एक रूपवती स्त्री के साथ समुद्र-तट के पास किसी निर्जन स्थान में ठहरता है और वहाँ से जाते समय उससे एक मास के भीतर लौट आने का वचन दे जाता है। जब वह निश्चित अवधि के बाद कई मास बीत जाने पर भी नहीं लौटता तो जलधि-तरंगिनी विरक्त हो जाती है और अपने वस्त्राभूषणादि को भी उतार फेंकती है। इस पर उसकी माँ सांसारिक विलास-वैभव तथा मानव-देह की प्रशंसा करने लगती है। इतने में राजकुमार भी आ जाता है और फिर दोनों प्रेमी एक-दूसरे से पुनर्मिलन का आनन्द लूटते हुए अपना समय व्यतीत करते हैं।[1] अनुमान

१. मोतीलाल मेनारिया : 'राजस्थान का पिंगल साहित्य' (हिन्दी पुस्तक भण्डार, उदयपुर, १९५२ ई०) पृ० ७१।

किया जाता है कि जल्ह कवि जैनधर्मावलम्वी था, किन्तु 'बुद्धिरासो' की कथावस्तु के आधार पर इसे धर्मकथा नाम देना समुचित नहीं कहा जा सकता। राजस्थानी की एक रचना 'पंच सहेली रा दूहा' है जो छीहल कवि की कृति है और जिसे कभी-कभी प्रेमाख्यान की कोटि में ले लिया जाता है। इसमें कोई बड़ा कथानक नहीं, प्रत्युत यह केवल ६५ दोहों की ही एक रचना है, जिसमें पाँच प्रोषितपतिका सखियों द्वारा अपनी-अपनी विरह-व्यथाएँ कही गई हैं। जान पड़ता है कि वे किसी पनघट पर स्वयं कवि से ही ऐसी बातें करती हैं और फिर कुछ दिनों में वहीं आकर वे उसे प्रसन्न भी दिखलाई पड़ती हैं। इस प्रकार यह रचना, प्रेमाख्यान की दृष्टि से, केवल अधूरी ही कही जा सकती है। फिर भी यह, अपने ढंग की अनूठी कहानी होने के कारण, एक विशेष महत्त्व रखती है और इसे सन्देशात्मक रचनाओं की कोटि में रखा जा सकता है।

उर्दू साहित्य के अतर्गत भी कुछ ऐसी रचनाएँ हैं जो न तो किसी सूफ़ी कवि की प्रेम-गाथा कहला सकती हैं और न जिनका कथानक अभारतीय ही है, अपितु जो किसी भारतीय प्रेमाख्यान पर आश्रित अथवा उसका अनुवाद-मात्र होने के कारण इस कोटि में रखी सकती हैं। इनमें एक नाम 'गुलशने इश्क' का लिया जा सकता है जो नुसरती की रचना है और जो मनोहर एवं मधुमालती की प्रेमकहानी पर आश्रित है। नुसरती ने इसे किसी इसी नाम की फ़ारसी रचना के आधार पर लिखा है और इसे पूरा ईरानी मसनवी का रूप दे दिया है। इसके विपरीत मज़हरअली खाँ 'विला' ने जो 'माधवानल और काम कन्दला' नाम की प्रेम कहानी लिखी है वह किसी मोतीराम कविशेर वा कवीश्वर की हिन्दी-रचना का उर्दू अनुवाद है और उसमें कोई भी महत्त्वपूर्ण बात घटाई या बढ़ाई गई नहीं जान पड़ती। उर्दू कवियों ने कभी-कभी ऐसा भी किया है कि उन्होंने भारतीय पात्रों को लेकर प्राय उन्हींके अनुरूप दृश्यों एव घटनाओं की योजना की है। किन्तु उनका वर्णन इस प्रकार का बन गया है जैसे वे नितात अभारतीय हों और वे इसी कारण, कुछ विचित्र-सी भी लगती हैं। उदाहरण के लिए अमानत कवि के प्रसिद्ध नाटक 'इन्दर सभा' के विविध दृश्यों का प्रदर्शन इस प्रकार किया गया है जैसे वे किसी ईरानी शाह अथवा मुसलिम सुलतान के दरबारों से सम्बन्ध रखते हों और उसके राक्षस एव अप्सराएँ भी ईरानियों के क्रमश देव तथा परियों के शुद्ध वेशों में आ गए हैं। फिर भी यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इस नाटक के अन्तर्गत चित्रित वातावरण अवध के नवाबी दरबारों

उर्दू के प्रेमाख्यान

से भिन्न नहीं जान पड़ता। इसी प्रकार इब्न निशाती की रचना 'फूलबन' के फ़ारसी से अनुवादित होने पर भी उसकी अधिकांश बातें भारतीय ही बनी रह जाती हैं।

उर्दू कवियों ने अभारतीय प्रेम-कहानियों के आधार पर भी अनेक मसनवियों की रचना की है। वास्तव में उनके सामने फारसी के मसनवी-साहित्य का एक बृहत् भंडार आदर्श के रूप में,

अभारतीय रूप

वर्तमान था जिससे न केवल वे अपने लिए उपयुक्त प्रेम-कहानियाँ ही ले सकते थे, अपितु वे उसकी रचना-शैली का भी सफल अनुकरण कर सकते थे। इसके लिए उन्हें केवल ईरान के ही फ़ारसी कवियों की रचनाओं का पढ़ना आवश्यक न था, क्योंकि अमीर खुसरो-जैसे भारतीय कवियों ने भी इस ओर अपनी प्रतिभा का पूरा परिचय दिया था और वे इनके रचना-काल तक प्रसिद्ध भी हो चुके थे। खुसरो के लिए तो यहाँ तक कहा गया है कि जहाँ फिरदौसी अपनी मसनवी के लिए प्रसिद्ध था, शेखसादी का नाम उसकी ग़ज़लों के लिए लिया जाता था और अनवरी खाकानी, उर्फी आदि को उनके क़सीदों के लिए उच्च स्थान दिया जाता था वहाँ इन्हें अकेले इन सभी रचना-शैलियों में सिद्धहस्त समझा जाता था।[1] इन्होंने अपनी मसनवियों में हिन्दी-शब्दों के भी प्रयोग किये हैं और अन्यत्र हिन्दी-भाषा के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। इन्होंने अभारतीय प्रेम-कहानियों के आधार पर 'शीरीं खुसरू' और 'मजनूं लैला' की रचना की है जो दोनों निजामी की क्रमशः 'खुसरू व शीरीं' तथा 'लैला व मजनूं' नामक मसनवियों के समकक्ष है। इसी प्रकार, इन्होंने, एक भारतीय प्रेमगाथा के रूप में 'दुवल रानी खिज्रखाँ' संज्ञक मसनवी भी लिखी है जिसके पात्र ऐतिहासिक स्त्री-पुरुष हैं। उर्दू की ऐसी मसनवियों में बीजापुर के अन्धे कवि 'हाशिमी', लखनऊ के 'मीर गुलाम हसन' तथा हकीम तसद्दुक हुसैन 'शौक़' के नाम लिये जा सकते हैं, जिनकी क्रमशः 'यूसुफ़ जुलेखा', 'सेहरुल बयान' और 'ज़हरे इश्क' अधिक प्रसिद्ध हैं तथा जिनकी इन रचनाओं पर अभारतीय वातावरण की छाप भी बहुत स्पष्ट है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि उत्तरी भारत के उर्दू कवियों की रचनाओं पर दक्खिनी उर्दू-साहित्य की अपेक्षा विदेशी रंग कहीं अधिक दीख पड़ता है।

हिन्दी-साहित्य में हमें पौराणिक प्रेमाख्यानों पर आश्रित कई रचनाएँ

1. Muhammad Abdul Ghani : 'The Pre-Mughal Persian in Hindustan' (Allahabad Law Jounral Press), 1941, p 419

मिलती हैं। ये मध्यकाल से ही बराबर लिखी जाती रही हैं। जान पड़ता है कि हिन्दी के कवियों का भी विशेष ध्यान रुक्मिणी एवं कृष्ण की प्रेम कहानी की ही ओर अधिक आकृष्ट हुआ है। नरहरि बन्दीजन एवं नन्ददास प्राय समकालीन कवि थे। इन दोनों ने ही अपने अपने 'रुक्मिणी मंगल' की रचना की है। इस नाम की एक अन्य रचना नवलसिंह कायस्थ की लिखी हुई भी मिलती है और सम्भवत तीनों का मूल आधार एक ही है। फिर भी नन्ददास के रोला छन्दों में निर्मित कथा बहुत सरस और सजीव बन गई है और वह इन तीनों में सर्वश्रेष्ठ भी कही जा सकती है। इस विषय को ही लेकर पीछे महाराज रघुराजसिंह ने भी एक रचना की है जिसका नाम 'रुक्मिणी परिणय' है। इसी प्रकार उषा एवं अनिरुद्ध की प्रेम कथा का भी आश्रय लेकर किसी भारथ शाह कवि ने 'उषा अनिरुद्ध' की रचना की है और इसी नाम से रामदास कवि ने भी एक ग्रन्थ लिखा है। ये दोनों ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित हैं तथा परमानन्द कवि के 'उषाहरण' का भी अभी तक अप्रकाशित रहना ही कहा जाता है। जान पड़ता है कि इन्होंने भी सुप्रसिद्ध पौराणिक आख्यान को ही अपना आधार बनाया होगा। एक अन्य ऐसी रचना भी, जो 'बाणासुर-पराभव' महाकाव्य के रूप में लिखी गई है, अभी अप्रकाशित है, और वह भी सेठ गोविन्ददास की कृति है। नल एवं दमयंती की प्रेमकहानी का विषय लेकर जान कवि ने 'नल दमयंती' की रचना की है और उसका कहना है कि मैंने इसे कई ग्रन्थों में पढ़ा था और मुझे यह कथा सर्वत्र एक प्रकार की नहीं मिली थी, किन्तु भिन्न-भिन्न थी। मुझे जो 'भली लगी' वही बात मैं यहाँ लिखने जा रहा हूँ। फिर इसी कथा को लेकर लखनऊ के किसी सूरदास ने भी 'नलदमन' नाम की एक प्रेमगाथा लिखी है। इसकी विशेषता यह है कि इसके अनुसार प्रेमभाव पहले नल के हृदय में दमयंती का गुण श्रवण करके जागृत होता है, किन्तु दमयंती की ओर से ऐसा नहीं होता। वह यों ही स्वभावत नल की ओर आकृष्ट हो जाती है और इसके लिए किसी हंस को भी काम में नहीं लाया जाता। सूरदास ने नल एवं दमयंती की प्रेमनिष्ठा का बहुत सुन्दर वर्णन किया है और अन्यत्र 'महा भारत' का अनुसरण भी किया है। कथा के आरंभ में सूरदास ने एक भाटिन को भी स्थान दिया है जिसका मूल ग्रन्थ में कोई पता नहीं चलता।

हिन्दी के पौराणिक प्रेमाख्यान

इस प्रकार पौराणिक प्रेमाख्यान-सम्बंधी रचनाओं की दृष्टि से

हिन्दी-साहित्य, गुजराती अथवा संभवत तेलुगु साहित्य के भी अतिरिक्त, किसी दूसरे से कम नहीं। सूफ़ी प्रेम गाथाओं के

हिंदी का प्रेमाख्यान साहित्य

भी विचार से वह सभी दूसरों से अधिक सम्पन्न कहा जा सकता है। हिन्दी में अनेक ऐसे भी प्रेमाख्यान हैं जो संस्कृत या अपभ्रंश के मूल स्रोतों से आ गए हैं। इनमें से माधवानल कामकंदला, पद्मावती और मनोहर-मालती अथवा मृगावती, जैसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं और इनके सिवाय अनेक ऐसे हैं जो लोकगाथाओं की ओर से आये हैं। प्रेमाख्यानों की कुछ ऐसी विशेषता भी है कि अपने कथानकों के ऐतिहासिक होते हुए भी, वे केवल विवरणात्मक नहीं रहने पाते। प्रेमभाव एवं विरहदशा के अनुकूल पात्र, वातावरण तथा विभिन्न घटनाओं की सृष्टि करनी पड़ जाती है जिनका न्यूनाधिक प्रभाव मूल कथा के ऊपर बिना पडे नहीं रह पाता और उनमें बहुत-कुछ परिवर्तन भी हो जाया करता है। इस कारण एक ही कथा-वस्तु के आधार पर लिखी जाने वाली पृथक्-पृथक् रचनाओं पर प्रायः, उनके कवियों की मनोवृत्ति के अनुसार भी कुछ-न-कुछ अनोखा रंग चढ़ जाता है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश अथवा लोकगाथाओं की ओर से आने वाली एक ही कथावस्तु के अनेक रूप हमें न केवल विभिन्न प्रांतीय भाषाओं के साहित्यों में मिलते हैं, अपितु उनके बहुत-से उल्लेखनीय उदाहरण केवल एक साहित्य की भी ऐसी रचनाओं में मिल जाया करते हैं। अतएव जिन पौराणिक प्रेमाख्यानों की चर्चा पहले की गई है उनमें से किसी के भी दो या अधिक उदाहरणों का ठीक एक समान होना कठिन है।

हिन्दी में जो आज तक सबसे प्राचीन प्रेमाख्यान उपलब्ध है और जो सूफ़ी प्रेमगाथा भी नहीं है वह 'लखमनसेन पदमावती' का है। यह रचना संभवतः अपभ्रंश की किसी प्रेमकहानी पर आश्रित

लखमनसेन पद्मावती

जान पड़ती है, क्योंकि इसमें वैसी ही परम्परा का पालन संस्कृत श्लोक या प्राकृत गाथाओं के सम्मिश्रण द्वारा किया गया है और इसकी कथावस्तु के विकास में भी वैसी ही शैली अपनाई गई जान पड़ती है। इसकी कथा का सार यह है—गढ़ समौर के राजा हंसराय की कन्या पद्मावती का स्वयंवर किया गया। स्वयंवर में सिद्धनाथ योगी के उपदेशानुसार, राजा धीरसेन के पुत्र लखमणसेन ब्राह्मण पुरोहित का वेश धारण करके सम्मिलित हुए और उन्हींके गले में जयमाला पड़ गई। इस कारण अन्य उपस्थित कन्याभिलाषियों ने उन पर एक साथ

आक्रमण किया जिन्हें पराभूत करके लक्ष्मणसेन ने अपना परिचय दे दिया। लक्ष्मणसेन एवं पद्मावती की विवाह-विधि सम्पन्न हो गई और कुछ दिन बीत भी गए। लक्ष्मणसेन ने एक रात को स्वप्न में देखा कि योगिराज उनसे जल माँग रहे हैं और वे उनके निकट जल देने भी जा रहे हैं। योगिराज ने लक्ष्मणसेन से प्रतिज्ञा करा ली कि जो मेरी प्रथम संतान होगी उसे तीन महीने की होते ही मैं आपको समर्पित कर दूँगा। तदनुसार लक्ष्मणसेन को जब पुत्र हुआ तो वे उसे लेकर योगिराज के यहाँ गये जिन्होंने उन्हें आदेश दिया कि इस बालक के चार टुकड़े कर दो। राजा ने वैसा ही कर दिया जिससे चार वस्तुएँ प्रकट हो गईं। वहाँ उन्हें एक धनुष-बाण, एक तलवार, एक कौपीन वस्त्र एवं एक सुन्दरी नारी के दर्शन हुए और वे अपनी राजधानी लौट आए। किन्तु अब उनका जी नहीं लग रहा था, इसलिए उन्होंने अपना राज्य एवं रानी का भी परित्याग कर दिया और वे तपस्वी बनकर वन में चले गए। वहाँ पर वे निरुद्देश्य घूमते-घामते समुद्र के तीर पर पहुँचे जहाँ पर चंद्रसेन राजा की राजधानी कर्पूरधारा थी। लक्ष्मणसेन ने वहाँ पर संयोगवश जल में डूबे हुए राजकुमार का उद्धार किया, जिस कारण चंद्रसेन ने उन्हें आदरपूर्वक अपने यहाँ रख लिया। किन्तु चंद्रसेन की सुन्दरी कन्या चंद्रावती को देखकर एक दिन लक्ष्मणसेन प्रेमासक्त हो गया जिस कारण राजा ने उन्हें प्राणदंड देने की आज्ञा दे दी। लक्ष्मणसेन ने तब अपनी सारी राम कहानी कह सुनाई जिससे राजा का हृदय द्रवित हो गया और उसने अपनी कन्या उन्हें समर्पित कर दी। तत्पश्चात् चंद्रावती को लेकर लक्ष्मणसेन गढ़सामौर लौट आए और वहाँ पर दोनों रानियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगे।

आलोचनात्मक विवेचन

इस रचना के अंतर्गत जितना अंश संयोग एवं चमत्कार का आता है उतना प्रेम-व्यापार-विषयक बातों का नहीं आता। कथा में लक्ष्मणसेन का योगी सिद्धनाथ के आदेशों का अक्षरशः पालन करना उन्हें कष्ट में भी डाल देता। किन्तु वे सदा अंधभक्त की भाँति वैसा ही करते हैं जिस कारण उन्हें पहली बार तो कई अन्य राजाओं से युद्ध करना पड़ता है और दूसरी बार उदास होकर जंगलों में भटकना तक भी पड़ जाता है। राजा की योगी सिद्धनाथ के प्रति दृढ़निष्ठा सूचित करती है कि इस कथा पर नाथपंथियों का प्रभाव कुछ-न-कुछ अवश्य पड़ा होगा। कहानी का रचयिता दामो कौन था इसका ठीक पता नहीं चलता, किन्तु यह संभावना है कि उस पर नाथपंथ का प्रभाव रहा होगा। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि योगी

सिद्धनाथ की चर्चा फिर एक दूसरे प्रेमाख्यान शेखनबी के ज्ञानदीप[1] में भी इसी प्रकार आती है और वहाँ पर भी ये घटनाओं की योजना में बहुत-कुछ भाग लेते हुए दीख पड़ते हैं। ये सिद्धनाथ योगी कौन है, इसका ठीक पता नहीं। इस कथा में एक दूसरी भी ऐसी बात आती है जिसका उल्लेख पहले कई बार किया जा चुका है और जो कथानायकों की कम-से-कम दो प्रेम-पात्रियों की सृष्टि करने की है जिनमें से अधिकतर दूसरी को उपलब्ध करने के लिए उन्हें प्रायः विशेष प्रयास करना पड़ जाता है। यह विशेषता हमें उन प्रेमाख्यानों में ही अधिक देखने को मिलती है जिनका मूल स्रोत कोई-न-कोई लौकिक प्रेमगाथा रहा करती है। इसी प्रकार इस प्रेमाख्यान में एक तीसरी उल्लेखनीय बात यह भी दीख पड़ती है कि इसमें कथानायक द्वारा न केवल युद्ध में विजय प्राप्त करने का ही प्रसंग आता है, अपितु इसमें उसके हाथों डूबे हुए किसी राजकुमार का उद्धार भी प्रदर्शित किया है। ये दोनों ही बातें पुराने आदर्श वीरों के लक्षण उदाहृत करती हैं जिनके साथ इन कथानायकों को संयुक्त कर देना कथाकार अपना कर्त्तव्य समझा करते थे। इस रचना के विषय में दामो ने, कदाचित् इसी कारण, 'वीर कथा' शब्द का भी प्रयोग किया है। इसके अंत में 'इति श्री वीरकथा लखमसेन पदमावती संपूर्ण समाप्त' लिखा गया मिलता है और इसका प्रारंभिक चौथा पद्य भी इस प्रकार आता है।

सवत् पनरह सोलोत्तरा मझारि, ज्येष्ट वदि नवमी बुधवार।
सप्त तारिका नक्षत्र दृढ जाणि, वीरकथा रस करूँ बखाण ॥४॥[2]

इस लखमनसेन पदमावती की कथा तथा प्रथम उपलब्ध सूफ़ी प्रेमगाथा 'नूरक चन्दा' या 'लूरक चन्दा' की कथा की तुलना करने पर पता चल सकता है कि कथावस्तु के रूप-रंग की दृष्टि से

तुलनात्मक अध्ययन

दोनों में बहुत-कुछ साम्य है। फिर भी लोरिक वाली कथा इससे अधिक प्राचीन प्रतीत होती है। किन्तु, उसके अनन्तर लिखी शेख कुतबन की 'मृगावती' वाले कथानक को यदि लें, तो यह साम्य और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। 'लखमनसेन पदमावती' का नायक तपस्वी बनकर घूमता हुआ समुद्र के जल में डूबे हुए राजकुमार की प्राण-रक्षा करके उसका उद्धार करता है। 'मृगावती' का नायक जोगी बनकर जाता है और समुद्र से घिरी पहाड़ी पर सुन्दरी रुक्मिनी की

१. उदयशंकर शास्त्री: 'ज्ञानदीप', (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के सौजन्य से)
२ अप्रकाशित हस्तलिखित प्रति, पृ० १

रक्षा राक्षसों से करके उसका उद्धार करता है। पहले प्रेमाख्यान में जहाँ लखमणसेन को वहाँ चन्द्रावती मिलती है जिसे लेकर वह अपनी राजधानी में पहुँचता है वहाँ 'मृगावती' का नायक अपनी खोई हुई पूर्व पत्नी मृगावती को ही फिर से पाकर रुक्मिनी के साथ अपने घर आता है। मूल सूत्र में पूरी समानता है यद्यपि साधारण विवरणों में, 'लोरक चन्दा' एवं 'ढोलामारू' की भाँति, कुछ अन्तर भी जान पड़ता है। 'मृगावती' 'लखमनसेन पदमावती' से लगभग ४४ वर्ष पीछे की रचना है, इसलिए शेख़ कुतबन का दामो के प्रेमाख्यान से परिचित होना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं। सूफ़ी प्रेमगाथा 'मृगावती' के लगभग दो वर्ष पहले रचित एक अन्य प्रेमाख्यान 'सत्यवती-कथा' की कथावस्तु कुछ भिन्न प्रकार की है। सत्यवती-कथा का नायक रितुबरन अपनी प्रेमपात्री के लिए कोई कष्ट की यात्रा नहीं करता और न किसी स्वयंवर में ही भाग लेता है। उसकी किसी दूसरी पत्नी का भी पता नहीं चलता और न वह किसी का उद्धार ही करता है। वह मृगयाशील है और दुष्यंत की भाँति वन में उसे सुन्दरी कन्याओं को देखने का अवसर मिलता है, किन्तु यहाँ उसे अपनी प्रेयसी नहीं मिलती, प्रत्युत शाप द्वारा वह कोढ़ी हो जाता है। उसे राजकुमारी सत्यवती तब मिलती है जब इसे इसका पिता रुष्ट होकर आज्ञा दे देता है कि यह जाकर उस कोढ़ी को अपना पति स्वीकार करे। 'सत्यवती-कथा', वस्तुतः उस कोटि का प्रेमाख्यान है जिसमें कथावस्तु का कोई 'दोहरापन' लक्षित नहीं होता।[1]

मृगावती का मूलाधार

जैसा इसके पहले कहा जा चुका है 'मृगावती' की कथा, सम्भवतः किसी प्राचीन अपभ्रंश रचना से ली गई है। यह उस काल में लिखी गई थी जब शेख कुतबन, सुलतान हुसेन शाह शर्की के लोदी बादशाहों द्वारा विजित होकर बंगाल चले जाने पर, स्वयं भी उधर जा चुका था। बंगाल में भी उस समय सुलतान हुसेन नाम का ही शासक था और वह विद्याप्रेमी भी था। उसने हुसेनशाह शर्की को आश्रय दिया और उसके साथ ही, कदाचित्, वे लोग भी रहने लगे जो जौनपुर से उसके आत्मीय' बनकर आये थे। शेख कुतबन ने जिस हुसेन शाह की प्रशंसा अपनी 'मृगावती' में की है वह इसी कारण, बंगाल का ही सुलतान हो सकता है। जौनपुर वाले हुसेन-शाह शर्की में उन गुणों का पता नहीं चलता जिनकी यहाँ चर्चा की गई है।

१ 'हिन्दुस्तानी', हिन्दुस्तानी एकेडेमी संयुक्त प्रांत, इलाहाबाद, भा० ७ अंक १, पृ० ८३-१००।

किंतु ये बंगाल के उक्त सुलतान में अवश्य हो सकते हैं। मृगावती के नाम की एक नायिका मेघराज प्रधान द्वारा रचित 'मृगावती की कथा' नामक प्रेमाख्यान में भी आती है। यह पुस्तक पीछे लिखी गई है और इसमें नायक का नाम भी 'इन्द्रजीत' दिया गया मिलता है। पता नहीं दोनों की कथावस्तुओं में कहाँ तक साम्य है। शेख कुतबन के समय तक हिन्दी में ऐसे प्रेमाख्यानों की भी रचना होने लगी थी जिनका आदर्श सूफ़ी प्रेम-गाथा का नहीं था। ये रचनाएँ उन गाथाओं के समानांतर में चल रही थीं और इन्हीं में से लक्ष्मण सेन तथा सत्यवती वाली दो उपर्युक्त प्रेमकथाएँ हैं। इस प्रकार की एक तीसरी प्रेम-कहानी मनोहर एवं मधुमालती की है जिसकी रचना चतुर्भुजदास कायस्थ ने की है। इसके सिवाय कुछ ऐसी भी रचनाएँ हैं जो सूफ़ी प्रेम-गाथा न होती हुई भी, उनके द्वारा न्यूनाधिक प्रभावित जान पड़ती हैं। ऐसी प्रेमकथाओं में हम नन्ददास की 'रूप मंजरी' तथा बोधा कवि की विरह वारीश वाली कथाओं के नाम ले सकते हैं, जिनकी चर्चा पहले भी की जा चुकी है।

हिंदी के प्रेमाख्यानों में हम एक विशिष्ट स्थान उन रचनाओं को भी दे सकते हैं जो संत-कवियों द्वारा लिखी गई हैं। ऐसी उपलब्ध रचनाओं में से एक दुखहरन की 'पुहुपावती' और दूसरी बाबा धरणीदास की 'प्रेमप्रगास' है। 'पुहुपावती' की कथा इस प्रकार है—राजपुर के नरेश ने पुत्र की इच्छा से घोर तपस्या की और तब देवी के

संतों की प्रेमगाथाएँ
पुहुपावती

वरदान से उसे पुत्रोत्पत्ति हुई। पंडितों ने बालक के विषय में बतलाया कि वह बीस वर्षों की वय में प्रेम के कारण घर छोड़ देगा, किन्तु भाग्यवान् रहेगा। बालक जब पढ़-लिखकर कुछ बड़ा हुआ तो उसने अपनी इच्छा प्रकट की कि मैं राज्य के शत्रुओं पर चढ़ाई करूँगा, किन्तु राजा ने उसे रोका। इस पर दुःखी होकर वह रात को निकल गया। वह मार्ग में चलते-चलते अनूप नगर में पहुँचा जहाँ के राजा अंबरसेन की रूपवती कन्या का नाम पुहुपावती था। जब वह महल से लगी फुलवारी में गया तो वहाँ पर उसे पुहुपावती ने अपने झरोखे से देखा और वह प्रेमासक्त हो गई। पुहुपावती उस दिन से उदास रहने लगी और सदा प्रेम-चर्चा के लिए उत्सुकता प्रकट करती रही जिससे उसके गुरुजनों को अनेक प्रकार का संदेह भी होने लगा। राजकुँवर फुलवारी की मालिन के घर ठहरा था जो पुहुपावती की पुष्पशय्या को बिछाया करती थी। जब मालिन ने एक दिन पुहुपावती को पुष्पशय्या से पृथक् सोते देखा और इसका

कारण पूछा तो उसने उससे सारा भेद प्रकट कर दिया। मालिन ने तब पुहुपावती को राजकुँवर का पता दे दिया और फिर लौटकर उसने राजकुँवर से भी पुहुपावती के सौंदर्य की प्रशंसा कर दी जिससे सुनकर वह मूर्छित हो गया। मालिन उस समय से दूती का काम करने लगी और उसने फिर आकर पुहुपावती के साथ दोनों के मिलने का समय निश्चित किया।

निश्चित समय पर जब राजकुँवर और पुहुपावती एक-दूसरे से मिले तो वे सहसा मूच्छित हो पड़े। मालिन ने दोनों के अधरों को उन्हें लिटाकर मिला दिया जिससे उनमें फिर से चेतना आ गई

वही

और दोनों ने प्रेम की बातें भी कीं। एक दिन राजा अबर सेन जब आखेट करते समय किसी सिंह को मार न सके तो राजकुँवर ने प्रकट होकर उसे मार डाला। इस प्रकार वह उनका भी प्रिय पात्र बना, किन्तु इस आखेट के समय वह लौटने का मार्ग भूल गया और उसके लिए चारों ओर खोज की जाने लगी। पुहुपावती को राजकुँवर के खो जाने से मार्मिक कष्ट होने लगा और उधर वह भी उसके विरह में व्याकुल रहने लगा। वन में भटकते समय ही किसी दिन उसे उसके पिता की ओर से उसे ढूँढने के लिए भेजा गया सज्ञान नामक व्यक्ति मिल गया जिसने उसे पकड़ लिया और उसके पिता के पास ले गया। राजकुँवर के पिता को जब उसके प्रेम-व्यापार का पता चला तो उसने उसका विवाह काशी के चित्रसेन की कन्या रूपावती के साथ करा दिया। इधर पुहुपावती के कष्टों से प्रेरित होकर अबरसेन उसका उपचार कराते हैं, किन्तु कोई लाभ नहीं होता। पुहुपावती मालिन दूती के हाथ एक पत्र राजकुँवर को लिख भेजती है और दूती अपना सिर मुँडाकर एव सन्यासी बनकर राजपुर पहुँचती है तथा वहाँ मधुर सगीत गाने लग जाती है। उसके सगीत से आकृष्ट होकर वहाँ राजकुँवर भी जाता है, उसे पहचान लेता है तथा पुहुपावती का पत्र पढ़कर बैरागी के भेष में चल देता है। राजकुँवर तथा मालिन किसी प्रकार चलते-चलते बेगमपुर गाँव में आते हैं जिसका राजा बेगम राय है और उसकी लड़की रगीली है। इस कन्या को एक दानव उठा ले जाता है और उसके अनुरूप वर को ढूँढता हुआ राजकुँवर के पास आ पहुँचता है। दानव राजकुँवर का विवाह रगीली के साथ कर देता और जब स्वयं बैराग्य धारण कर लेता है तो रगीली एवं राजकुँवर पुहुपावती के नगर की ओर चलते हैं। बीच में वे एक समुद्र में डूबते-डूबते किसी प्रकार बच पाते हैं, किंतु दोनों में वियोग भी हो जाता है।

फिर दैवयोग से मालिन दूती एवं राजकुँवर से भेंट हो जाती है और वे दोनों आगे बढ़ते हैं। उधर पुहुपावती के लिए राजा अम्बरसेन ने स्वयंवर की रचना की, किन्तु देश-देश के राजाओं के आने पर भी उसने किसी को स्वीकार नहीं किया तब तक मालिन ने आकर उसे समाचार दिया।

वही

जब उसने राजकुँवर को बैरागी के वेश में प्रत्यक्ष कर दिया तो पुहुपावती ने उसीके गले में जयमाल डाल दी। राजा अम्बरसेन पहले तो अप्रसन्न हुआ, किन्तु फिर उसे पहचानकर प्रसन्न भी हुआ और तदनुसार पुहुपावती एवं राजकुँवर का विवाह भी कर दिया। इधर रूपावती भी विरह में कष्ट झेल रही थी, जिस कारण उसने 'उपकारी' नामक मैना को उसके निकट भेजा। मैना ने राजकुँवर से सब समाचार कहे जिससे प्रभावित होकर वह पुहुपावती के साथ राजपुर की ओर चल पड़ा। मार्ग में राजकुँवर का उज्जैन के राजा से घोर युद्ध हुआ। मैना उधर रूपावती की ओर जाते समय एक तीर्थ में चला गया जहाँ उसे रंगीली ध्यान में बैठी मिल गई। मैना ने लौटकर राजकुँवर से जब रंगीली की बातें बतलाईं तो वह उसके यहाँ भी चला गया और उसे उज्जैन ले आया। यहाँ पर पुहुपावती चिन्ता में पड़ी थी, इसलिए उनके आते ही वह प्रसन्न हो उठी और सारा दल राजपुर की ओर अग्रसर हुआ। मैना ने तब तक यहाँ रूपावती को भी सूचना दे दी थी, इसलिए वह भी अपने पिता की स्वीकृति के अनुसार उसमें सम्मिलित हो गई। राजकुँवर ने राजपुर पहुँचकर एक नया किला बनवाया जिसमें तीन महल थे और उसने तीनों रानियों को उनमें पृथक्-पृथक् रखा। रूपावती श्वेत महल में रही, रंगीली काले में गई और पुहुपावती को लाल महल में रखा; जहाँ से उसे भगवान् ने अतिथि साधु के वेश में आकर उससे ले लिया।

पुहुपावती की कहानी लम्बी-चौड़ी है और घटनाओं के बाहुल्य से यह कुछ जटिल भी दीख पड़ती है। इसमें, अन्य बहुत-से प्रेमाख्यानों की भाँति, केवल एक या दो ही नायिकाएँ नहीं हैं, प्रत्युत तीन-तीन तक आ जाती हैं। फिर भी, नायक की रुचि के अनुसार पुहुपावती को ही हम प्रधान नायिका कह सकते हैं और रूपावती एवं रंगीली

आलोचनात्मक विवेचन

उपनायिका अथवा प्रतिनायिका तक कही जा सकती हैं। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि प्रधान नायिका पुहुपावती जहाँ प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा प्रभावित

होती है वहाँ नायक राजकुँवर केवल गुण-अवगुण द्वारा ही उसकी ओर आकृष्ट हो उठता है और दोनों एक-दूसरे को देखकर जब मूर्छित हो जाते हैं तो मालिन उन्हें उनके अधरों को मिलाकर सचेत करती है। इस कथा में केवल राजकुँवर और पुहुपावती ही ऐसे हैं जिनका पारस्परिक प्रेम प्रायः एक-सी गम्भीरता का है। रूपावती एव रगीली के प्रति उस नायक का प्रेम उतना ही उत्कट नहीं जान पड़ता जितना इन दोनों प्रेमिकाओं का उसके प्रति जान पड़ता है। दु.खहरन ने इस कथा में एक और भी ऐसी बात दिखलाई है जो अन्यत्र नहीं पाई जाती और जो कदाचित् इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। राजकुँवर के लिए उसकी पत्नी पुहुपावती के सर्वाधिक प्रेयसी होने पर भी, वह उसे एक साधु के माँगने पर समर्पित कर देता है, जो कदाचित्, उसके प्रेम से भी कहीं अधिक त्याग के प्रति निष्ठावान् होने के कारण है और यही बात सम्भवत इस प्रेमाख्यान के रचयिता का मत भी सिद्ध कर देती है। रूपावती एव रगीली के महलों का रग क्रमश. श्वेत एव कृष्ण है। जहाँ पुहुपावती का लाल है और ये तीनों एक ही दुर्ग में निर्मित हैं। क्या ये तीनों महल राजकुँवर के हृदय में वर्तमान क्रमशः सतोगुणी तमोगुणी एव रजोगुणी वृत्तियों के आधारस्वरूप तो नहीं हैं। जिसमें से सर्वाधिक सक्रिय तीसरी को कवि अपने इष्ट परम तत्त्व के प्रति अर्पित अथवा उसमें तल्लीन कर देने के पक्ष में है? अर्पित करने योग्य सतोगुणी अथवा तमोगुणी वृत्तियाँ नहीं हो सकतीं, क्योंकि ये दोनों एक-दूसरी की विरोधिनी ठहरती हैं। रजोगुणी, इन दोनों की मध्यवर्तिनी होने के अतिरिक्त, स्वभावत क्रियाशील भी है और यही सारे प्रपच या सृष्टि के मूल में भी वर्तमान है। इस प्रेम-कथा के अन्तर्गत एक यह बात भी विचारणीय है कि रूपावती का सम्बन्ध राजकुँवर के साथ उसके पिता के माध्यम से होता है जहाँ पर रगीली उसे किसी दानव के देने से मिलती है और केवल पुहुपावती ही ऐसी है जो उसे सर्वप्रथम, प्रेम-व्यापार में युक्त करती है। वही, अन्त तक, उसके सारे प्रयत्नों का लक्ष्य होती हुई, पूर्णत उपलब्ध हो जाने पर उसके त्याग की प्रमुख वस्तु भी बन जाती है।

स्वय दुखहरन ने ऐसा कहीं नहीं कहा है और न सारी कथा के रूपक को समझाने की कहीं चेष्टा ही की है। उन्होंने अपनी रचना के केवल

रूपकात्मक प्रसग

उज्जैन-खण्ड में कथा के कुछ रहस्यात्मक प्रसंगों के स्पष्टीकरण का प्रयत्न किया है। वहाँ पर उज्जैन को काया का प्रतीक बतलाया गया है, राजा

'रोठगंवार' को जीव का प्रतिनिधि ठहराया गया है, सभी इन्द्रियों को कुछ न-कुछ बाह्य रूपक दिया गया है और ममता, वैर आदि तक के रूपक बाँधे गए हैं। फिर इसी प्रकार अन्यत्र कुँवर ने भी 'आप' को ब्रह्म, माता को मुक्ति, चित को चैतन्य, गुरु को ज्ञान, मन को मन्त्री, दिल को दीवान आदि कहा है। परन्तु पूरी कथा का आशय सुव्यवस्थित रूप में कहीं भी प्रकट किया गया नहीं जान पड़ता। दुखहरन ने कथा का आरम्भ करने से पहले इस रचना के अन्तर्गत यहाँ तक कह डाला है कि इसका मर्म जो जैसा समझ सकेगा वैसा ही जानेगा, मैं भी अपनी सूझ के अनुसार ही कहता हूँ :

सवत् सत्रह से छत्तीसा। हुत सन सहस दुइ चालीसा॥
कहेउ कथा तव जस मोही ग्याना। कोइ सुनी रोवत कोइ हँसाना॥
जेही जस बुधी तैस तेइ बुझा। जेही जस सुझी तैस तेही सुझा॥
वहुतन के मन सरगुन आवा। वहुतन निरगुन पटतर लावा॥
वहुतन सुनी कै हीश्र महँ राखा। वहुतन सुनी कै रोख न माखा॥
मोही लस ग्यान रहा हिश्रा माही। कहेउ सभै कीछु छाड़ेउ नाहीं॥
एक एक अच्छर खोजी बनावा। मुरुखन्ह दुख पण्डितन सुख पावा॥

दुखहरन से १२ वर्ष पहले बाबा धरणीदास ने भी एक ऐसी ही कथा 'प्रेमप्रगास' नाम से लिखी थी जिसमें उन्होंने लगभग ऐसे ही शब्दों के प्रयोग किये थे। उनका कहना है—

धरनी के मन अनुभौ भैऊ। प्रेमप्रगास एक कथा ठनेऊ॥
'प्रेम-प्रगास' सहीजाहि जीव ऊपजो अनुरागा। सोअत हुँते चिहुकि जनु जागा॥
ऊतपति कहो कथा किछु आगे। भग्ती भाव अभी अंत्र लागे॥
सरगुनीआ सगून लै लावे। नीगुनिश्रा नीगुन ही सुनावे॥
समत सत्रहसो न्त्री गैऊ। तेरह अधीक ताहि पर भैऊ॥
शाहजहाँ छोड़ि दुनीआइ। पसरी औरंगजेब दोहाइ॥
सोच बिचारी आतमा जागी। धरनी धरेउ भेष वैरागी॥

दोनों समकालीन थे, दोनों संत-परम्परा के थे और दोनों के निवास-स्थानों अर्थात् क्रमशः गाजीपुर एवं माँझी के बीच कदाचित् ४० कोसों का भी अन्तर न था।

फिर भी बाबा धरणीदास के 'प्रेमप्रगास' वाले प्रेमाख्यान की घटनाएँ उतनी अधिक या जटिल भी नहीं प्रतीत होतीं। कथा का सार यह है—कश्मीर की ओर एक पंचवटी नामक नगर था जिसके राजा का नाम देवनारायण था। देवनारायण के पुत्र

वही

का नाम मनमोहन था। एक दिन मनमोहन के निकट कोई सौदागर आया जिसने उसे एक मैना दी जो बड़ी पंडित और बुद्धिमती थी। सौदागर को राजकुमार ने इसके बदले में एक महत्त्वपूर्ण माला दी और मैना को 'परमारथी' का नाम देकर वह उसे सुन्दर पिंजरे में रखने लगा। राजकुमार उसे बड़ा प्यार करता था, इसलिए मैना ने भी उसे वचन दिया कि मैं तुम्हारा विवाह किसी 'देवमूरती' कन्या से करा दूँगी। तदनुसार वह एक दिन शुभलग्न में पिंजरे से बाहर उड़ी और कहीं पर एकत्र अन्य अनेक पक्षियों से परामर्श किया कि राजकुमार को कौनसी सुन्दरी दी जाय। उनमें से एक ने सागर पार बसे हुए 'पारसनगर' के ध्यानदेव राजा की कन्या प्रानमती के सौंदर्य की भूरि-भूरि प्रशसा की। परमारथी को प्रानमती पसद आई जिस कारण वह उसी ओर उड़ चली किंतु भूख-प्यास के कारण वह समुद्र में गिर भी पड़ी। उसे देखकर उधर से व्यापार के लिए 'डोंगे' से जाते हुए एक महाजन ने उठा लिया और उसे अन्न-जल देकर फिर तीर पर उड़ा दिया। परमारथी तब वहाँ से उड़ती हुई किसी जगल में पहुँची जहाँ के पक्षियों से उसने पारनसनगर का पूरा पता जान लिया और फिर वह उस नगर में भी गई। किंतु उसने उस दिन वहाँ के एक उद्यान में बसेरा लिया जहाँ पर ऊँघ जाने के कारण वह किसी व्याध द्वारा पकड़ ली गई।

व्याध ने मैना को लेकर वहाँ की राजकुमारी प्रानमती को भेंट कर दिया, जिसने उसे बड़े स्नेह के साथ सोने के पिंजरे में रखा। एक दिन एकांत पाकर मैना परमारथी ने प्रानमसी को सोते से जगाया। उससे बातचीत करके जान लिया कि वह अपने लिए उपयुक्त वर की आशा से बराबर शिवाराधन किया करती है तथा उसने राजकुमारी को इस सम्बन्ध में सहायता देने का भी वचन दिया। परमारथी ने राजकुमारी से एक वर्ष की अवधि ली और कई दिनों तक अनेक प्रकार के कष्ट झेलती हुई पंचवटी में मनमोहन के पास चली आई। राजकुमार के पूछने पर उसने अपनी यात्रा की पूरी कहानी कह सुनाई जिससे प्रभावित होकर वह एक दिन आखेट के बहाने निकल पड़ा और उसने मैना का पिंजरा भी ले लिया। मार्ग में विश्राम करते समय उसे कामसेन राजा के साथ युद्ध भी करना पड़ा जिसका अन्त केवल पर्वतराज बुद्धिसेन के बीच बचाव करने से हो सका। फिर वहाँ से राजकुमार आगे बढ़ा तो पता चला कि उसका पिंजरा कहीं खो गया है जिस कारण दुखी होकर

वही

मनमोहन जोगी बन गया। फिर किसी 'सीधा' (सिद्ध) की गोटिका की सहायता से वह परमारथी के पिंजरे को भी पा सका और अपने अन्य साथियों को लेकर समुद्र-तट तक पहुँच गया? समुद्र के तट पर उसने अपने साथियों से अपने वापस आने तक ठहरने को कहा और फिर पिंजरे के साथ वह आगे बढ़ा। आगे उसे 'दुरमत' नाम का एक दानव मिला जिससे इसे लड़ना पड़ा और इसने उसे मार भी डाला, किंतु उसकी गोटिका कहीं खो गई। दानव के मारे जाने पर वहाँ के 'राजा ग्यानदेव' ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और उस पर प्रसन्न होकर उसने अपनी कन्या जानमती इसे समर्पित कर दी। किन्तु यह उस राजा के उदयपुर नगर में अधिक समय तक नहीं ठहर सका और परमारथी को लेकर वह फिर भी आगे चल पड़ा।

वहाँ से चलकर वे दोनों पारसनगर या 'श्रीपुर' पहुँच गए जहाँ मनमोहन एक सरोवर पर ठहर गया और मैना प्रानमती के पास पहुँच गई। परमारथी ने राजकुमारी से वही भूमिका बाँधी और वही अपने कथन द्वारा उसे मनमोहन के प्रति प्रेमासक्त भी कर दिया। तदनुसार प्रानमती ने अपने माता पिता से कहकर दूसरे दिन जोगी, यती आदि को खिलाने की व्यवस्था कराई। उसने पहले ही दिन संध्या समय मनमोहन के लिए अपनी चेरी द्वारा पक्वान्न की थाली भी भेजी जहाँ पर उस राजकुमार को देखकर चेरी अत्यंत प्रभावित हुई। निश्चित समय जब मनमोहन अन्य साधुओं के साथ बैठा खा रहा था कि प्रानमती ने उसे अपने झरोखे से देखा और वह बेहोश हो गई। सचेत होने पर उसने उन्हे मनमोहन का पूरा परिचय दिया जिससे वे दोनों प्रसन्न हुए और उन्होंने उसके पास अपना विप्र भेजा। मनमोहन ने पहले तो आना-कानी की किन्तु वह फिर राजी हो गया और तदनुसार एक उत्सव की तैयारी करके राजा ने बहुत-से अन्य राजकुमारों को भी निमन्त्रित किया। जब अन्य राजकुमारों को एक जोगी के साथ प्रानमती के भावी सम्बन्ध का पता चला तो उन्होंने इसका घोर विरोध किया। फलतः निश्चय हुआ कि शिवमूर्ति के निकट एक जयमाल रखी जाय और सभी राजकुमार बारी-बारी उसकी प्रदक्षिणा करें तथा प्रणाम करें। उनके सिर के झुकते ही जयमाल के उनके गले में आप-से-आप पड़ जाने की बात थी जो मनमोहन के ही सम्बन्ध में पूरी हुई और उसके गले में जयमाल पड़ गई। मनमोहन और प्रानमती का फिर विधिवत् विवाह हो गया और वे वहाँ पर एक वर्ष तक ठहर गए। किंतु किसी दिन एक जोगी ने वहाँ आकर उदयपुर के ग्यानदेव तथा उनकी राज-

कुमारी जानमती का समाचार कह सुनाया जिससे मनमोहन परम दुखी हो गया और वह लौटने की तैयारी करने लगा। वहाँ से उदयपुर तक उसके साथ ग्यानदेव भी आये जहाँ पर उससे जानमती की विवाह-विधि सम्पन्न हुई और फिर दोनों पत्नियों को लेकर वह आगे बढ़ा। समुद्र को पार करके वह अपने साथियों से मिला और अन्त में, एक साथ होकर सभी पचवटी लौट आए।

बाबा धरणीदास ने 'प्रेमप्रगास' की प्रारम्भिक पक्तियों में एक 'अस्लोक' दिया है जो इस प्रकार है—

पचवटी च्न ऊदयेपुरस्य श्रीपुरे मध्येम तथा।
जःजनाति चतुरस्थान धरनी तस्य नमस्कीत ॥[1]

इससे प्रकट होता है कि पचवटी, उदयपुर, श्रीपुर (पारसनगर) और मध्येम इन चारों का कोई रहस्यात्मक अर्थ है। इनमें से पहले तीन तो कथा में ही क्रमश देवनारायण, ग्यानदेव तथा

रूपकात्मक प्रसग

ध्यानदेव श्री राजधानियों के रूप में दिये गए हैं। ये फिर क्रमश मनमोहन, राजकुमार तथा जानमती एव प्रानमती नाम की राजकुमारियों के भी स्थान कहे जा सकते हैं। ये सभी नाम सार्थक अवश्य प्रतीत होते हैं किंतु इसकी सार्थकता बहुत स्पष्ट नहीं है और न इन्हें समझाने के लिए कवि ने कहीं पर्याप्त संकेत ही दिये हैं। इनके साथ 'मध्येम' भी चौथा स्थान बनकर दीख पड़ता है, किंतु इसका उल्लेख अन्यत्र स्पष्ट नहीं है। बाबा धरणीदास के 'मध्यदीप', 'माझि अस्थान' अथवा 'मेहसिनम्र' के साथ यदि उसका कोई सम्बन्ध हो तो भी इसका पता नहीं। इस प्रकार एक अन्य 'अस्लोक' द्वारा कवि ने यह भी बतलाया है कि "स्त्री आत्मा का प्रतीक है, पुरुष परमात्मा का है, सौदागर गुरु का है और मैना मन के लिए" इस कथा में आया है। "आत्मा एव परमात्मा एक दूसरे से 'बिछुरे' जान पड़ते हैं और इन्हींके 'मेराव' अथवा सम्मिलन का प्रसग" इस कथा में दिया गया है। इस प्रकार ऐसा लगता है कि कवि कहीं सूफ़ी मत के ही ढग से न वर्णन कर रहा हो किंतु इसका भी सामजस्य सर्वत्र बिठाना सरल नहीं है।

वास्तव में इस कथा के अतर्गत हमें उतना भी स्पष्ट सकेत नहीं मिलता जितना पुहुपावती में पाया जाता है। 'प्रेमप्रगास' की रचना-शैली पर जायसी की 'पद्मावत'-जैसी सूफ़ी प्रेमगाथाओं का प्रभाव स्पष्ट दीख

१ 'बिस्राम' ३।

पड़ता है। फिर भी इसमें सूफी प्रेमगाथाओं के बाह्य लक्षण बहुत कम लक्षित होते हैं। इसे पढ़ने पर ऐसा लगता है कि संभव है, इसका कवि इसके द्वारा कहीं संत मत का ही प्रतिपादन न कर रहा हो। 'प्रेम प्रगास' का मनमोहन 'पद्मावत' के रतनसेन-जैसा है, इसकी प्रानमती उसकी पद्मिनी या पद्मावती है। किन्तु इसका मैना, उसके सुवा-सा लगता हुआ भी, यहाँ गुरु वा पीर का प्रतिनिधि नहीं माना गया है। प्रत्युत वह, यहाँ मन का प्रतीक है और गुरु का स्थान यहाँ सौदागर ने लिया है। बाबा धरणीदास के ही शब्दों में :

गायते आत्मा इस्त्रिया पुरुष च परमात्मा ।
सौदागर गुरू यस्य, मन मैना वीस्तर कथा ॥[1]

किन्तु 'आत्मा' के स्त्री होने पर भी यहाँ प्रयत्न मनमोहन की ही ओर से होते हैं। वही रतनसेन की भाँति अपने साथियों के साथ अपनी प्रेम-यात्रा में अग्रसर होता है, प्रायः वैसे ही कष्ट झेलता है और वैसे ही पहुँचता है। रतनसेन के सूए की भाँति यहाँ भी इसका मैना साथ नहीं छोड़ता। यदि कुछ समय के लिए साथ छूट भी जाता है तो फिर वह इसे लेकर ही आगे बढ़ता है। अन्तर केवल इतना ही है कि सूफ़ी सालिक का पीर जहाँ उसकी प्रत्येक बाधा वा उलझन के समय उसका साथ देता जान पड़ता है वहाँ संत साधक का गुरु उसको अपने 'सबद' के बाण से बेधकर उसके हृदय में विरह जागृत कर देता है और तब से उसको अपने-आप सँभलने के प्रयत्न करने पड़ते हैं तथा सदा चंचल रहकर इधर-उधर उड़ते फिरने वाला भी उसका मन उसका सहायक बन जाता है। पुरुष मनमोहन की ओर से स्त्री प्रानमती के लिए किये गए रतनसेन के जैसे प्रयत्न भी यहाँ केवल सूफ़ियों के ही अनुकरण में प्रदर्शित नहीं कहे जा सकते। परमात्म तत्त्व को प्रेम-पात्री का रूप देकर पुरुष आत्मा की ओर से उसे पाने का प्रयत्न करना सभी सूफ़ियों ने भी एक समान नहीं दिखलाया है। जैसा पहले भी संकेत किया जा चुका है जिन सूफ़ी कवियों ने 'यूसुफ़ एवं जुलेखा' की प्रेम-कहानी को अपनी प्रेमगाथा का विषय बनाया है उन्हें इस नियम के विपरीत चलना पड़ गया है, क्योंकि वहाँ जुलेखा के ही प्रेम को प्रधानता मिलती है। इसके सिवाय तमिल प्रांत के प्रसिद्ध भक्त-कवि माणिक्क वाचकर, जिन्हें सूफ़ियों द्वारा प्रभावित कहने का कोई प्रमाण नहीं है, अपने रहस्यवादी प्रबंध-काव्य 'तिरुक्को वैयार' के अंतर्गत 'परमात्मा' को प्रेमिका के रूप में

१. 'विस्राम' ६।

तथा जीवात्मा को प्रेमी के रूप में वर्णन करते दीख पड़ते हैं।[1] इसी की सम्भावना यहाँ भी मान ली जा सकती है।

बाबा धरणीदास की गणना 'निरगुनिये' सन्तों में की जाती है और दुखहरणदास के लिए भी अधिक सम्भावना है कि ये भी वही 'पन्त जति दुखहरन' हैं जिन्हें सन्त शिवनारायण ने अपने गुरु के रूप में स्मरण किया है तथा ये स्वयं भी अपने को कदाचित् प्रसिद्ध सन्त मलूकदास का ही शिष्य बतलाते हैं। अतएव, पुहुपावती एवं 'प्रेम प्रगास' को उल्लेखनीय प्रेमात्मक प्रबन्ध काव्यों में सम्मिलित करना अनुचित नहीं कहा जा सकता।

सगुण भक्तों की प्रेमगाथाएँ

प्रेमकथा को अपनी रचना का विषय बनाने में कभी-कभी सगुणवादी भक्त कवि भी प्रयत्नशील होते आए हैं। तेलुगु भाषा के भक्त कवि राजा कृष्णदेवराय की ऐसी एक रचना 'आमुक्त माल्यदा' की चर्चा इसके पहले की जा चुकी है। हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध भक्त कवि नन्ददास ने भी एक इसी श्रेणी की छोटी-सी रचना 'रूपमजरी' नाम से की है जिसकी कथा का साराश इस प्रकार है—निर्भयपुर के राजा धर्मधीर की पुत्री रूपमजरी अत्यन्त सुन्दरी थी, जिसके विवाह के लिए योग्य वर ढूँढने का प्रयत्न किया जाने लगा। राजा ने इसके लिए जो ब्राह्मण भेजा, उसने लोभी होने के कारण कोई कुरूप, वर पसद कर दिया; जिसके लिए राजा को दु ख हुआ और रूपमंजरी भी उदासीन भाव रखने लगी। रूपमजरी की सखी इदुमती ने उसका कष्ट निवारण करने के लिए प्रयत्न किया, किन्तु उसे इस लोक में उसके अनुरूप कोई वर नहीं मिला। अतएव, उसने रूपमजरी के हृदय में भी कृष्ण को उपपति के रूप में वरण करने का परामर्श दिया और वह स्वय भी भगवान् से प्रार्थना करने लगी जिसका परिणाम यह हुआ कि कभी कृष्ण ने रूपमजरी को स्वप्न में दर्शन दिये जिस पर इन्दुमती ने भी उसे पूरा उत्साहित किया। फिर दूसरे स्वप्न में उसके साथ कृष्ण का सयोग भी हो गया और वह अत में छिपकर वृन्दावन चली गई तथा उसके पीछे वहाँ उसकी सखी भी गई। इस प्रेमाख्यान में भी नन्ददास ने 'निर्भयपुर', 'रूपमजरी', आदि ऐसे ही नाम रखे हैं जो किसी-न-किसी विशिष्ट आशय की ओर सकेत करते हैं। इसमें स्वप्नदर्शन के द्वारा प्रेमभाव में पूरी दृढ़ता एव गभीरता भी आती है। किन्तु इसमें नायिका का प्रेमपात्र प्रत्यक्ष रूप में शरीरधारी नहीं

१ श्रीपूर्ण सोमसुन्दरम् 'तमिल और उसका साहित्य', (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली), पृ० ५२।

है। इस बात में यह रचना 'आमुक्तमाल्यदा' के समान कही जा सकती है, किन्तु इसमें जो सखी इन्दुमती है वह सूफ़ियों वाले सूए (पीर) का काम देने वाली है[1]

'रूपमंजरी' प्रेमाख्यान की कथावस्तु हमें काल्पनिक प्रतीत होती है। किंतु किसी-किसी ने यह भी अनुमान किया है कि यह ऐतिहासिक है। उनका कहना है कि रूपमजरी नाम की कोई सम्राट् अकबर का दासी थी और उसे वहाँ पर किसी ब्राह्मण ने पहुँचा दिया था। रूपमंजरी अपनी स्थिति से असंतुष्ट थी, इस कारण उसने अपने सुधार में भक्त कवि नन्ददास से सहायता प्राप्त की। प्रेमाख्यान की इन्दुमती वास्तव में, कवि नन्ददास का ही प्रतिनिधित्व करती है। परन्तु इन धारणाओं के लिए कोई पुष्ट आधार कहीं उपलब्ध नहीं है। इसमें सदेह नहीं कि ऐसे किसी तथ्य का संकेत रहने पर भी, इस प्रेमाख्यान की रचना में कल्पना से पर्याप्त सहायता ली गई है। राजा कृष्णदेव राय की रचना 'आमुक्त माल्यदा' के विषय में भी हम यही कर सकते हैं। वहाँ पर भी आण्डाल के ऐतिहासिक व्यक्ति होने में कोई संदेह नहीं किया जा सकता, किंतु कवि ने, उसका चरित वर्णन करते समय भी, बहुत सी काल्पनिक बातों का समावेश कर दिया है। ये दोनों रचनाएँ दो वैष्णव भक्तों वा भक्तिनों की गुणगाथाएँ-जैसी बन गई हैं और इनमें प्रेमाख्यानों की वास्तविक एव कलात्मक रचना-शैली के सुन्दर और उपयुक्त उदाहरणों का ढूँढना अनावश्यक जान पड़ता है। परन्तु संत दुखहरणदास तथा बाबा धरणीदास की क्रमश. 'पुहुपावती' तथा 'प्रेमप्रगास' के भी विषय में हम ऐसा नहीं कह सकते। ये दोनों प्रेमाख्यान न केवल किन्हीं व्यक्ति-विशेष की ओर कोई संकेत करते नहीं जान पड़ते, अपितु इन की रचना का उद्देश्य भी किसी मत या सिद्धांत का प्रतिपादन ही प्रतीत होता है। इस प्रकार ये धर्म-प्रचार-सम्बन्धी साहित्य में भी गिने जा सकते हैं। इस दृष्टि से हम इनकी यदि चाहें तो सूफ़ियों की प्रेमगाथा एव जैनियों की धर्म-कथा के साथ भी तुलना कर सकते हैं।

'रूपमंजरी' का आधार

जैन हिन्दी कवि दामोदर अथवा दामो ने तो कदाचित् एक ही कथानक के आधार पर, एक ओर जहाँ 'मदनशतक' नामक एक प्रेमाख्यान की रचना दोहों तथा गद्य में की है, वहाँ दूसरी ओर उसने 'मदनकुमार

---

[1] 'नन्ददास ग्रन्थावली', (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)।

जैन कवि दामोदर का 'मदन शतक'

रास' के नाम से एक दूसरी रचना राजस्थानी में भी कर दी है। उसके द्वारा उसने अपने धर्म के अनुसार शील-निरूपण का भी उदाहरण उपस्थित किया है। हिन्दी 'मदन शतक' की एक यह भी विशेषता है कि इसके अंतर्गत आये हुए प्रेम-पत्रों को सांकेतिक भाषा में देने का प्रयास किया गया है। 'मदन शतक' का कथानक इस प्रकार है—अमरपुर नगर के राजा रत्नसिंह तथा रानी गुणमंजरी का मदनकुमार नामक एक पुत्र था। उसके तरुण हो जाने पर कामदेव ने उसे स्वप्न में बतलाया कि अपना देश छोड़कर यदि विदेश जाओगे तो तुम्हें लाभ होगा तथा यहाँ रहने से तुम्हारे दिन कष्ट में बीतेंगे। तदनुसार मदनकुमार, बिना अपने माता-पिता से पूछे ही, प्रात-काल उठकर शुक के साथ बाहर चल पड़ा। मार्ग में जब वह श्रीनगर के वनोद्यान में स्थित कामदेव के प्रासाद में पहुँचा तो उसने शुक को बाहर बिठा दिया और स्वयं जाकर सो रहा। इसी समय वहाँ पर मदन-पूजा के लिए राजकुमारी रतिसुन्दरी आई जिसे शुक ने भीतर जाने से रोका। किन्तु उन दोनों के बीच बातचीत हो ही रही थी कि उधर मदनकुमार भी जग गया। जब रतिसुन्दरी भीतर पहुँची तो उसने उसे देखा और उसके सौंदर्य पर मुग्ध होकर वह उसके लिए कामदेव से विनय भी करने लगी। उसने अपनी स्तुति में ही उसे, रात के समय फिर मिलने का सकेत भी किया तथा घर लौटकर और अपनी सखी प्रियवदा की योजना के अनुसार पुरुषवेष धारणकर, वह फिर आ गई। इस बार उन दोनों में विवाह-सम्बध भी हो गया और अब राज-कुमारी प्रतिदिन दोपहर को आने लगी और दोनों का प्रेमालाप चलता रहा।

इस प्रकार छ महीने बीत जाने पर तथा रतिसुन्दरी की देह में विशेष परिवर्तन देखकर उसकी दासी ने रानी से सब कह दिया। रानी ने फिर एक

वही

दूसरी दासी के साथ प्रच्छन्न रूप में जाकर स्वय भी दोनों प्रेमियों को रमण करते देखा और घर आकर उसने रतिसुन्दरी को फटकारा। परतु वह अपने प्रण पर अडिग थी और जब मदनकुमार कामदेव से सकेत पाकर वहाँ से आगे चल पड़ा तो वह विरहिणी भी बन गई। फलत उसने मदनकुमार से वहाँ से चले जाने का समाचार एक पत्र द्वारा पाकर उसके उत्तर में स्वय भी एक 'समस्याबध गुप्त लेख' लिखा और उसे शुक ले चला। किंतु उसने इस पत्र को बीच में ही उज्जैन में छोड़ दिया जहाँ राजा वीरसेन की कन्या कनका-वती, सचिवपुत्री कमलावती, सेठपुत्री पद्मावती, नृपमित्र की पुत्री जय

विजया तथा एक अन्य कोई एक साथ खेल रही थी और उनमें से राजकुमारी ने पत्र ले लिया, यद्यपि वह उसे पढ़ भी न सकी। शुक ने जब उनके पूछने पर पत्र का परिचय दिया तो वे उदास हो गईं और कनकावती ने घर आकर उसका वृतांत अपनी माँ से भी कह दिया। रानी ने जब इन बातों का पता राजा को दिया तो उसने भी पत्र का मर्म समझना चाहा। फिर असफल होकर उसने उसे सुरक्षित रूप में रख लिया शुक के मुँह से यह समाचार जानकर मदनकुमार उज्जैन चला आया और उस पत्र को पढ़कर मूर्च्छित हो गया। सचेत होने पर जब उसने राजा को वह पत्र पढ़ सुनाया तो उसने हर्षित होकर उपर्युक्त पाँचों कन्याओं का विवाह मदनकुमार से कर दिया। इस प्रकार करमोचन के रूप में राजा का आधा राज्य भी पाकर वह वहीं पाँचो स्त्रियों के साथ सुख-भोग करने लगा।

वैताढ्य पर्वत पर अवस्थित रतनपुर नगर में राजा अरिसिंह की बहन मदन मजरी थी, जिसके वयस्क हो जाने पर भी वह उसका विवाह नहीं करता था। तदनुसार उसने अपनी भाभी कनकमजरी से इस बात की शिकायत की। जब राजा दिग्यात्रा में गया तो दोनों एक साथ नगर से निकल गईं। जब चलती-चलती उज्जैन पहुँचीं तो वहाँ उन्होंने मदनकुमार को अपनी पाँचों पत्नियों के साथ सोया हुआ पाया। उन दोनों ने इसे वहाँ से उठा लिया और इसे, मरु देश के कुण्डलदुर्ग में कामदेव के मंदिर में छोड़कर, अन्यत्र चली गईं। मदनकुमार वहाँ बैठा ही था कि कामदेव की पूजा करने के लिए वहाँ उस नगर की राजकुमारी कनकसुन्दरी और मंत्री-पुत्री हर्षसुन्दरी आ पहुँचीं और वे इसे देखकर परस्पर बातें करने लगीं। वे दोनों ही उस पर मुग्ध थीं, जिस कारण, कामदेव की पूजा करने के अनंतर, वे फिर उसके निकट आ बैठीं और उससे गूढ़ार्थ में परिचय लेने लगीं। इस प्रकार रात के समय फिर लौटने का वचन देकर वे अपने घर चली गईं और निश्चित अवसर पर आकर उन्होंने इससे विवाह कर लिया। फिर प्रातःकाल जब राजा को इन बातों का पता चला तो वह स्वयं भी आया और अति प्रसन्न होकर वह इसे अपने घर लाया। यहाँ पर उसने इसे ५०० गाँव दिये और एक सतमंजिला मकान भी दिया जिसमें यह अपनी दोनों पत्नियों के साथ सुख-पूर्वक रहने लगा। जब मदनमंजरी एवं कनकमंजरी को इस बात का पता चला तो उन्होंने भी मदनकुमार को प्रोत्साहित किया तथा अपनी विद्याएँ भी इसे समर्पित कीं। उधर उज्जैन में जब उपर्युक्त पाँचों सखियाँ जागीं तो वे

विरह में विलाप करने लगीं और उन्होंने शुक को मदनकुमार की खोज में भेजा। जब शुक ने यहाँ आकर उससे उनका सारा वृत्तांत कह सुनाया तो इसने उन्हें विद्याओं द्वारा यहीं बुला लिया और उन सभी के साथ रहने लगा। अंत में शुक के कहने पर मदनकुमार ने अपने जन्मस्थान लौटकर अपने माता-पिता से भी भेंट की और अपनी सर्वप्रथम मगनी वाली जयपुर-नरेश की कन्या चपकमाला से भी विवाह करके तथा अपनी सभी पत्नियों को भी एकत्र कर वह उनके साथ भोग-विलास करने लगा।[1]

इस प्रकार 'मदनशतक' के अतर्गत प्राय. सारी बातें एक शुद्ध प्रेमाख्यान का अग बनकर आई हुई दीख पड़ती हैं। कहते हैं कि इसकी कथावस्तु को किसी लोक-गाथा के आधार पर प्रस्तुत

आलोचना

किया गया है जो अनुमान उपर्युक्त रूपरेखा से भी पुष्ट किया जा सकता है। मदनकुमार एक विलक्षण युवक है। जिसे देखते ही कोई भी युवती सहसा आकृष्ट हो जाती है, एक वा दो से लेकर पाँच-पाँच तक उससे एक साथ विवाह कर लेती हैं। वह अत में, एक परम भाग्यशाली पुरुष के रूप में सभी के साथ सुखमय जीवन व्यतीत करता है। मदनकुमार की विलक्षणता इस बात में भी दीख पड़ती है कि उसे स्वय कामदेव स्वप्न दिया करते हैं, उसके कर्मक्षेत्र में जहाँ-तहाँ उस देवता के प्रासाद और मदिर भी बने पाये जाते हैं। उसके लिए मदनमंजरी एव कनकमंजरी-जैसी विद्याधरियाँ सहायिका बनती हैं। 'मदनशतक' केवल दोहों में निर्मित हुआ है और इसमें बीच-बीच में वार्ताओं के रूप में गद्य का अश भी दिया गया है। इसके 'समस्याबध गुप्त लेखों' की भाषा बड़ी विचित्र है। वह बिना साकेतिक निर्देशों के सबकी समझ में नहीं आती। इसके सिवाय मदनकुमार के साथ जो कनकसुन्दरी एव हर्षसुन्दरी की बातचीत 'गूढार्थों' में हुई है वह भी हमें सूरदास के दृष्टिकूटों तथा विविध पहेलियों का स्मरण दिलाती है।

---

१ 'कल्पना' (हैदराबाद, वर्ष ६, अ क ४, अप्रैल १९५५), पृ० ४७-५४।

सिंहावलोकन

अतएव, भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा न केवल बहुत प्राचीन है अपितु उसमें अनेक प्रकार की रचनाओं का समावेश भी है। इनमें से वैदिक, पौराणिक, बौद्ध जातकीय, जैन धर्म कथात्मक, लोकगाथात्मक, सूफ़ी प्रेमगाथात्मक, साहित्यिक, संत-मत-सम्बंधी, विशुद्ध कथात्मक आदि अनेक ऐसे शीर्षक मिलेंगे जिनके अंतर्गत उन्हें विभाजित करने की प्रवृत्ति होगी। किन्तु इस प्रकार का विभाजन किसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया गया नहीं कहा जा सकता। यह केवल उन विविध प्रकार के साहित्यों की ओर संकेत करता है जिनके अतर्गत ये रचनाएँ किसी-न-किसी रूप में पाई जाती हैं। प्रेमाख्यान का प्रमुख विषय अत्यत व्यापक एवं विश्वजनीन होने के कारण उसका वास्तविक रूप केवल एक ही हो सकता है जिसमें प्रेमी एवं प्रेमिका के बीच एक-दूसरे के प्रति आत्मीयता का आकर्षण होगा। दोनों में से कोई भी एक-दूसरे से वियुक्त होकर अधीर और बेचैन हो उठेंगे और सब एक साथ बने रहने की चेष्टा किया करेंगे। हो सकता है कि इस प्रवृत्ति के भीतर काम-वासना भी काम करती हो। यह भी संभव है कि इसके कारण दूसरों के प्रति ईर्ष्या, द्वेष अथवा प्रबल विरोध का हिंसात्मक भाव तक जागृत हो उठे जिससे उन दो व्यक्तियों की प्रेमकहानी के अन्तर्गत अरुचिकर घटनाओं का भी सम्मिश्रण हो जाय तथा कभी-कभी भयंकर विघ्न-बाधाओं के आ जाने से उसमें कष्ट अथवा मार्मिक वेदना के प्रसंग भी समाविष्ट किये जाने लगें। किंतु इनसे उसके विशुद्ध प्रेमव्यापारात्मक रूप में कोई अंतर नहीं आ सकता। ऐसी बातें प्रायः प्रेमियों की अग्नि-परीक्षा लेने, उनकी एकांतिक निष्ठा को दृढ़तर रूप प्रदान करने तथा प्रेमभाव के शुभ्र उज्ज्वल रूप के चित्रण के लिए, उपयुक्त रंगीन पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए प्रस्तुत कर दी जाती है। इनके द्वारा उसका स्वरूप अधिक उभरता और निखरता है तथा इनके आ जाने से उसकी कहानी अधिक सरस भी बन जाती है।

उपर्युक्त गौण प्रसंग ही ऐसे हैं, जिनके कारण प्रेमाख्यानों में हमें

विशेष अंतर का अनुभव हो जाया करता है। भारतीय प्रेमाख्यानों में जहाँ काम-वासना की प्रवृत्ति जगती है वहाँ अधिकतर यह भी देखा जाता है कि प्रेमी अपनी प्रेमपात्री से विवाह-सम्बध भी चाहता है। इस बात के अपवाद केवल उन्हीं प्रेमाख्यानों में दीख पड़ते हैं जो या तो वैदिक हैं अथवा किसी 'अन्यलोक' से सबध रखते हैं। साधारणत एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के साथ कम-से-कम गांधर्व अथवा राक्षसी विवाह तक भी कर लेता है। वैवाहिक सम्बध के किसी-न-किसी रूप को महत्त्व अवश्य दिया जाता है, चाहे वह आरभ में हो अथवा अंत में। इसके साथ, यह भी यहाँ उल्लेखनीय है कि यदि ऐसा विवाह एक बार हो जाता है तो विवाहिता स्त्री किसी दूसरे से यह सम्बध नहीं करती। उसके प्रेम का भाव किसी जार वा उपपति के प्रति जागृत होकर बढ़ भी सकता है, किंतु उसे सामाजिक समर्थन प्राप्त नहीं होता। प्रेमी एव प्रेमिका के बीच जब तक ऐसा सम्बंध स्थापित नहीं हो जाता तब तक वे दोनों उसे प्राय प्रकट करने में भी डरा करते हैं। इस नियम के विरुद्ध चलने वाले प्रेमियों की कथा का यहाँ सर्वथा अभाव नहीं कहा जा सकता। किंतु इसमें सदेह नहीं कि या तो उनकी सख्या बहुत कम है अथवा जो ऐसे उदाहरण मिलते हैं, वे सभवत अभारतीय मूल स्रोतों से ही आते हैं।

आलोचना

एक दूसरी बात जो भारतीय प्रेमाख्यानों में पाई जाती है और जिसका बहुत उल्लेख भी किया जाता है वह प्रेमभाव के सदा स्त्रियों की ही ओर से पुरुषों के प्रति अधिक दृढ़ एव चिरस्थायी होने के विषय में है। इसका एक प्रमुख कारण यह हो सकता है कि भारतीय समाज ने स्त्रियों को बराबर पुरुषों की सहधर्मिणी तथा अनुयायिनी के रूप में भी देखा है। भारतीय कुटुम्ब में इनका स्थान पुरुषों की अपेक्षा सदा गौण ही रहता आया है और इन्होंने अपने पति को सदा अपने से श्रेष्ठतर स्तर पर प्रतिष्ठित मानने का भाव रखा है। उच्च श्रेणी के भारतीयों में तो यह बात इतने स्पष्ट रूप में पाई जाती है कि ऐसी पत्नियों ने पति के अनुकूल आचरण को 'पातिव्रत धर्म' तक बतलाया है। कहना न होगा कि इस प्रकार के 'धार्मिक' आचरण में भी सदा प्रेम का ही भाव काम करता आया है, यद्यपि उसमें श्रद्धा भी सम्मिलित रही है। इस पातिव्रत धर्म की रक्षा के लिए ऐसी पत्नियों ने ठीक वैसे ही कष्ट सहन किये हैं जैसे कट्टर प्रेमिकाओं को झेलने पड़ते हैं। इनकी

वही

एकांतनिष्ठा का प्रमाण कभी-कभी इनके अपने पति के साथ सती हो जाने तक में मिला है। किंतु अपनी प्रेमिकाओं के लिए प्राण देने वाले पतियों की संख्या भारतीय समाज में कदाचित् उतनी नहीं दीख पड़ती जितनी अभारतीयों में दिख पड़ती है। फिर भी इसका अभिप्राय यह नहीं है कि भारतीय प्रेमिकाएँ अपने प्रेमियों के लिए सदा खुले प्रयत्न भी किया करती हैं। प्रेमी उनको पाने अथवा उन्हें अपनाने के लिए लंबी यात्राएँ करते हैं, युद्ध ठानते हैं, तप करते हैं और उनके लिए 'जोगी' तक बन जाया करते हैं, जहाँ प्रेमिकाएँ उनके लिए या तो घर पर बैठे बैठे सदा विरह में घुला करती हैं अथवा केवल कतिपय युक्तियाँ सोचा करती है। समाज के भीतर अपने उपर्युक्त गौण स्थान के ही कारण वे इससे अधिक करने में प्राय: असमर्थ रही हैं।

परतु अभारतीय समाज वाली प्रेमकथाओं में और विशेषकर सूफी कवियों की रचनाओं में हमें इसके विपरीत बातें भी देखने को मिलती हैं।

तुलनात्मक प्रसग

इसके अनुकूल प्रसंग अधिकतर वहीं मिलते हैं, जहाँ कथावस्तु का रूप-रंग इसके लिए प्राय: बाध्य कर दिया करता हो। उदाहरण के लिए यूसुफ़ एवं जुलेखा की कथा ऐसी है जिसमें नायक 'नबी' की कोटि का है और उसे उचित महत्त्व देना आवश्यक है। वह, इसी कारण, अत्यत रूपवान् भी है और वह ऐसे अनुपम स्वभाव का है जिसके लिए किसी अन्य के प्रति आकृष्ट होना ठीक नहीं। अतः जुलेखा उसके दास की स्थिति में रहने पर भी, उस अपना हृदय सदा के लिए अर्पित कर देती है, अपने पति द्वारा ठुकराई जाती है, अधी हो जाती है और निकृष्ट वर्ग के लोगों में मिल जाती है। किंतु फिर भी उसके लिए मार्ग में खड़ी रहती है, उसे भूल नही पाती। परंतु यूसुफ, उसके प्रति प्रेमभाव रखता हुआ भी, केवल अपने 'पावन' कर्तव्य के कारण, उसे त्यागकर बंदी जीवन बिताता है। अन्यथा सैफुलमुल्क को हम अनेक कष्ट झेलते हुए पाते हैं। मजनूँ को लैला का नाम जपते हुए खाक छानते देखते हैं और फरहाद को यहाँ तक प्रयत्नशील पाते हैं कि वह पहाड़ को खोदकर भी शीरीं को प्राप्त करना चाहता है। सूफ़ी कवियों ने तो राजा रतनसेन से भी विस्तृत समुद्र को पार कराया है। राजकुँवर द्वारा मृगावती के लिए बारह वर्षों तक उत्कट प्रतीक्षा कराई है तथा अन्य ऐसे अनेक पात्रों को भी, अपनी प्रेमपात्री के लिए मर-मिट जाने तक के लिए तैयार कर दिया है।

भारतीय प्रेमाख्यानों का दु:खान्त होना भी हमें बहुत कम दीख पड़ता है। भारतीय साहित्यिक परम्परा की यह प्रमुख विशेपता रही है कि यहाँ के

वही

कवियों एवं लेखकों ने अपनी प्रत्येक रचना का अंत सदा मिलन अथवा पुनर्जीवन-जैसे सुखद परिणामों में ही पर्यवसित होते देखना पसंद किया है और इसीको अधिक श्रेयस्कर भी समझा है। यहाँ की प्रेमगाथाओं के नायक एवं नायिका बराबर एक-दूसरे से बिछुड़ जाते रहे हैं और कभी-कभी बीच में मर तक भी जाते रहे हैं, किंतु अवतक उनकी दशा वहीं नहीं रह जाती। कोई-न कोई चमत्कार अथवा दैवी वरदान उनकी समयानुकूल सहायता कर देता है और वे फिर मिल जाते हैं अथवा जी उठते हैं। इसके विपरीत सूफ़ी कवियों के प्रेमाख्यानों में सुखांत कथानकों के ही उदाहरण बहुत कम पाये जाते हैं। इनमें मंझन की 'मधुमालती' अथवा उसमान की 'चित्रावली' जैसे ही कुछ उदाहरण मिलते हैं जिन्हें उनके रचयिताओं ने अपने स्वभावानुसार वैसा रच डाला है। 'मधुमालती' की अतिम पंक्तियों में तो मझन ने स्पष्ट कह दिया है

कथा जगत जेतो कविआई। पुरुष मारि व्रजसती कराई।
मैं छोह्न्ह येई मार न पागे। मरिहहि यही जो कलि औतारे॥

* * * *

जेहि मा पेम अमीरस परचे, काल करै का पार।
उदधि सहस कालकै, तरिअहि पेम अधार।

जिससे यह भी प्रकट होता है कि उसे ऐसा करना, अमर प्रेम के नाते सिद्धांतत भी न्यायसंगत जान पड़ता है।

जहाँ तक सूफ़ियों की प्रेमगाथाओं का प्रश्न है हमें उनकी रचनाओं में एक यह विशेषता भी लक्षित होती है कि जहाँ पर उन्होंने अभारतीय कथावस्तुओं के आधार पर लिखा है वहाँ भी उन्होंने

वही

भरसक भारतीय वातावरण ही अंकित किया है। उदाहरण के लिए कासिमशाह ने जो 'हंस जवाहिर' नामक रचना की है उसके पात्र अभारतीय हैं, किंतु उस पर इसका प्रभाव बहुत कम है। सर्वप्रथम, कथानायक के बलखनगर के सुलतान का शाहज़ादा होने पर भी, उसका नाम 'हंस' है। फिर नायिका जिस परी का 'चीर' छिपाकर उसे फिर लौटा देती है वह उसकी 'शब्द' नाम की प्रिय सखी बन जाती है। इसके सिवाय इस रचना के प्राय सभी पात्रों की रहन-सहन और उनके रीति-रिवाज तक हमें अधिकतर भारतीय ही प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार शेख़ निसार की प्रेमगाथा 'यूसुफ़ ज़ुलेखा' के पात्र अभारतीय हैं और कुछ तो 'अलौकिक' तक

कहे जा सकते हैं, किंतु फिर भी उनकी सभी चेष्टाएँ सर्वथा अभारतीय नहीं हैं। स्वयं इसकी नायिका जुलेखा का ही यूसुफ़ के प्रति प्रदर्शित प्रेमभाव ऐसा है जिसे अभारतीय कहना किसी विशेष कारण से ही उचित होगा। इसके सिवाय लगभग सभी ऐसे सूफ़ी कवि नखशिख, स्त्री पुरुष के भेद, बारहमासा, षड्‌ऋतु, विवाह-प्रथा तथा उत्सवादि के वर्णन प्रायः सदा उनके भारतीय रूपों में ही किया करते हैं। यदि इनमें कोई विशेषता भी आती है तो वह केवल अतिमात्रा की ही रहा करती है। नूरमोहम्मद जैसे एकाध सूफ़ी कवियों ने यहाँ तक किया है कि कट्टर मुस्लिम होते हुए भी, उन्होंने भारतीयता की मर्यादा निभा दी है।

भारतीय प्रेमाख्यानों की परम्परा में एक यह बात भी स्मरणीय है कि उनके कई कथानक अनेक बार दोहराये गए हैं। उर्वशी एवं पुरूरवस् की प्रेम-कहानी वैदिक संहिता से लेकर पौराणिक साहित्य एवं काव्य तथा कथा-साहित्यों तक आई है। पौराणिक साहित्य के शकुन्तला-दुष्यन्त, उषा-अनिरुद्ध, प्रभावती-प्रद्युम्न, रुक्मिणी-श्रीकृष्ण, नल-दमयन्ती, अर्जुन-सुभद्रा, अहिल्या-इन्द्र-जैसे बीसों सुन्दर प्रेमाख्यान संस्कृत, प्राकृत से लेकर प्रान्तीय भाषाओं के काव्य-ग्रन्थों तक में कई बार आये हैं और ऐसा बहुत कम हुआ है कि वे सदा अपने वास्तविक मूल रूपों में ही रख दिये गए हों। भिन्न-भिन्न कवियों ने उन पर अपने-अपने समय एवं परिस्थिति के अनुसार कुछ-न-कुछ नवीन रंग चढ़ाने की चेष्टा की है और अपनी कल्पना के बल पर कभी-कभी उनमें बड़े सुन्दर कलात्मक परिवर्तन तक कर दिये हैं। यही बात हमें उन प्रेमाख्यानों में भी दीख पड़ती है जिनकी कथावस्तु का मूल स्रोत या तो कोई लोक-गाथा रही है अथवा, किसी समय कवि-विशेष के मस्तिष्क की मौलिक उपज होने पर भी वह पीछे बहुत लोकप्रिय बन गई है। ऐसे कथानकों को भी बहुधा रोचक तथा हृदयग्राही समझकर बहुत-से पिछले कवियों ने अपनाया है। उनके भी कई भिन्न संस्करण होते गए हैं और कथा-साहित्य के समय से लेकर विविध प्रान्तीय साहित्यों तक में वे स्वीकार किये जाते रहे हैं।

वही

काल्पनिक मूल स्रोतों पर आश्रित बहुत-से प्रेमाख्यानों की चर्चा इसके पहले की गई है और यह भी दिखलाया जा चुका है कि किस प्रकार माधवा-नल कामकन्दला[1], सदयवत्स सावलिंगा[2], मृगावती, पद्मावती

१. दे० 'हिन्दी अनुशीलन', (प्रयाग, वर्ष ४, अंक २, पृ० १–८) भी।
२. 'राजस्थान भारती', (वर्ष ३, अंक १) भी।

काल्पनिक मूल स्रोतों के प्रेमाख्यान मधु-मालती की कथा

आदि की कथाएँ अनेक साहित्यों में पाई जाती हैं। एक ऐसी ही अन्य कथा मधुमालती की भी है जिसके एक से अधिक रूप हमें केवल एक भाषा के साहित्य तक में दीख पड़ते हैं। इस नाम के जिस प्रेमाख्यान से हम लोग विशेष परिचित हैं वह मझन कवि की रचना है। जिसकी कथावस्तु का सारांश इस प्रकार दिया जा सकता है—कनेसर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर को कुछ अप्सराएँ रातों-रात उठाकर उसे महारस की राजकुमारी मधुमालती की चित्रसारी में ला देती हैं। दोनों जगते ही एक दूसरे को देखकर मोहित हो जाते हैं और मधुमालती के पूछने पर मनोहर बतलाता है कि तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम कई जन्मों से चला आता है। फिर वे दोनों बातें करते करते सो जाते हैं और अप्सराएँ मनोहर को ले जाकर उसके घर पहुँचा देती हैं। फलतः दोनों प्रेमी विरहाकुल हो उठते हैं। मनोहर विकल होकर अपनी प्रेमपात्री की खोज में निकल पड़ता है। समुद्र-यात्रा में बहता हुआ जगल में जा निकलता है और वहाँ फिर चित्रसामपुर के राजा की कन्या प्रेमा को देखता है, जिसे कोई राक्षस उठा ले आता है। वह राक्षस को मारकर उसका उद्धार कर देता है और वह उससे बतलाती है कि मैं मधुमालती की सखी हूँ तथा उससे तुम्हें मिला भी दूँगी। वह मनोहर को अपने भाई के रूप में मानने भी लग जाती है। दूसरे दिन जब प्रेमा के घर मधुमालती अपनी माँ रूपमंजरी के साथ आती है यह दोनों प्रेमियों को मिला देती है। किंतु रूपमजरी इस बात को पसन्द न करके अपनी पुत्री को पक्षी हो जाने का शाप दे देती है और वह उड़ती हुई कहीं किसी ताराचन्द राजकुमार द्वारा पकड़ ली जाती है। मधुमालती उससे अपनी रामकहानी कह सुनाती है जिससे प्रभावित होकर वह उसे उसकी माँ के पास लाकर शाप-मुक्त करा देता है। रूपमजरी मधुमालती को ताराचन्द से ही ब्याह देना चाहती है, किंतु वह उसे अपनी बहन बतलाकर अस्वीकार कर देता है। रूपमजरी तब यह सारा वृत्तान्त लिखकर प्रेमा के पास भेज देती है और मधुमालती भी यही करती है। वह उन पत्रों को पढ़कर दुःख का अनुभव करने लगती है। तब तक मनोहर भी विरह में जोगी बनकर घूमता-फिरता वहाँ पर आ जाता है तथा मधुमालती के माता-पिता भी पहुँच जाते हैं। तत्पश्चात् मनोहर एवं मधुमालती तथा उधर प्रेमा एवं ताराचन्द का भी विवाह हो जाता है और दोनों की जोड़ी अपने-अपने यहाँ जाकर सुख-भोग करने लगती हैं।

परन्तु दक्खिनी के सूफ़ी कवि नुसरती के 'गुलशने इश्क़' में इस कथा

का एक और ही रूप मिलता है जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—शाहज़ादा मनोहर शाहज़ादी चम्पावती को दुश्मनों की क़ैद से छुड़ाकर उसके माँ-बाप से मिला देता है और चम्पावती उससे प्रेम करने लग जाती है। किन्तु चम्पावती की माँ को पता चलता है कि मनोहर उसके अधीन किसी राजा की लड़की मधुमालती को चाहता है। अतः वह, अपनी पुत्री के उद्धार का बदला चुका देने के उद्देश्य से, मधुमालती की माँ को न्योता देकर उसकी खूब ख़ातिर करती है और जब इधर चम्पावती तथा मधुमालती की माँ बातचीत करती रहती हैं वह मधुमालती को अपना बाग दिखलाने के बहाने बाहर ले जाती है। मधुमालती के पूछने पर कि चम्पावती का उद्धार किस प्रकार हुआ है वह कह देती है कि तुम्हारे प्रेमी मनोहर ने ही यह किया है और जब मधुमालती लज्जित होती जान पड़ती है तो इस बात का आश्वासन भी दे देती है कि यह प्रेम का भेद किसी पर प्रकट न होने दूँगी। वह मधुमालती को मनोहर की एक अंगूठी भी दिखला देती है जिससे प्रभावित होकर वह अपने विरह की कहानी खुलकर कहने लग जाती है।[1] इत्यादि। इतने अंश से भी पता चल जाता है कि 'गुलशनेइश्क़' के मूल कथानक का रूप क्या रहा होगा तथा इसके साथ मंझन की 'मधुमालती' की कथावस्तु की तुलना करने पर जान पड़ता है कि इन दोनों प्रेमाख्यानों में वैसा कोई विशेष अन्तर नहीं है। मंझन की 'मधुमालती' हिजरी सन् ९५२ (सं० १६०२) में लिखी गई थी और नुसरती की 'गुलशने इश्क़' का रचना-काल हिजरी सन् १०६८ (सं १७१४) बतलाया जाता है; जिससे सम्भव है कि एक कवि ने दूसरे से सहायता ली हो अथवा यह भी हो सकता है कि दोनों ने एक ही प्रेमकहानी के दो रूपों का उपयोग किया होगा।

वही

परन्तु हिंदी भाषा में ही रचित चतुर्भुजदास लिखित 'मधुमालती' की कथा का सारांश इस प्रकार पाया जाता है—लीलावती देश के राजा चतुरसेन की लड़की का नाम मालती था और उसी के मंत्री तारणसाह के पुत्र का नाम मनोहर था, जिसे 'मधु' भी कहा करते थे। मधु को पढ़ाने के लिए मन्त्री ने एक पंडित नियुक्त किया और उसीसे पीछे मालती के भी पढ़ने का प्रबंध किया गया, किंतु निश्चय यह हुआ कि यह परदे के भीतर बैठकर पढ़ा करे। एक दिन, जब पंडित कुछ देर के लिए कहीं चला गया था, मालती

वही

१. 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', (हीरक जयन्ती अंक), पृ० १८८।

ने, जो प्राय. परदे की ओट से मधु को देख लिया करती थी, परदे को पूरी तौर से हटा दिया और दोनों की चार आँखें हो गई। मालती का प्रेमभाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगा, किंतु मधु को इस बात की हिचकिचाहट थी कि एक तो वे दोनों एक ही गुरु के शिष्य हैं दूसरे वह स्वयं केवल मत्री का ही पुत्र है। इसी कारण मधु ने वहाँ का पढ़ना भी छोड़ दिया और किसी रामसरोवर पर जाकर गुलेल खेलने लगा। मालती भी किसी बहाने वहाँ पहुँचने लगी। मालती ने अपने प्रणय-व्यापार की बातें अपनी एक सखी जैतमाल को भी बतला दीं और उससे सहायता चाही। तदनुसार जैतमाल, कुछ अन्य सखियों के भी साथ, मधु के पास गई और उससे उसके पूर्वजन्म की कथा कहने लगी। उसने बतलाया कि किस प्रकार शकर द्वारा जलाये गए कामदेव की राख से पाटलि (मालती) तथा भ्रमर (मधु) की उत्पत्ति हुई थी और एक पासवर्ती सेवती-वृक्ष से जैतमाल उत्पन्न हुई थी। एक बार जब हेमत के तुषार-पात से पाटलि जलकर भस्म हो गई थी तो उसे सेवती ने ही पुनर्जीवित किया था, किंतु जब निष्ठुर भ्रमर कहीं उड़कर चला गया तो मालती ने उसके विरह में प्राण त्याग कर दिये और वही भ्रमर एव मालती पुन. मधु एव मालती के रूप में अवतीर्ण हैं। जैतमाल की इन बातों से मधु प्रभावित हो गया और दोनों का विवाह भी हो गया।

तब से ये दोनों रामसरोवर की वाटिका में रहने लगे तथा उनके पारस्परिक प्रेम को छिपकर देखने वाले माली ने इस बात की सूचना राजा को दे दी। राजा चतुरसेन बहुत क्रुद्ध हुआ और महल में जाकर उसने रानी से कह दिया कि दोनों को यथाशीघ्र मरवा डाला जाय। रानी ने दोनों प्रेमियों को गुप्त सदेश भेज दिया कि वे देश छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जायँ जिस पर मालती सहमत हो गई, किंतु मधु ने ऐसा करना अनावश्यक नहीं समझा। उसने राजा द्वारा भेजे हुए पायक को अपनी गुलेल द्वारा मारकर विचलित कर दिया और एक सहस्र सवारों के साथ भी यही व्यवहार किया। जब तीसरी बार भेजी गई राजा की सेना भी परास्त हो गई तो राजा स्वयं दस हज़ार सवारों के साथ मैदान में आया। किंतु इधर मधु हाथियों पर गुलेल के प्रहार करने लगा। उधर मालती की प्रार्थना पर केशव ने दीर्घाकार भारड पक्षी तथा शिव ने एक सिंह भेज दिया और इन सभी ने फिर विजय प्राप्त की। तत्पश्चात् तारणशाह की प्रार्थना पर शक्ति ने राजा को समझाया कि मधुमालती एव जेतमाल ये तीनों ही देवाश और अभिन्न हैं। तदनुसार राजा ने उनसे

वही

हार मानकर उन्हें नगर में आमंत्रित किया और मधु के साथ मालती एवं जैतमाल का विवाह भी हो गया। राजा ने मधु से यह भी इच्छा प्रकट की कि वह राज-पाट ले ले, किंतु मधु ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि हम तीनों काम की विभिन्न कलाएँ हैं तथा उन्हें राज-पाट से काम नहीं है।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि मंझन की 'मधुमालती' अथवा नुसरती के 'गुलशने इश्क़' की भी कथावस्तु से इसकी समानता नहीं सिद्ध की जा सकती।

फिर भी हिंदी में ही एक चौथी रचना भी 'मधुकर मालती' नाम से उपलब्ध है जिसके कथानक से उपर्युक्त कथावस्तु का बहुत-कुछ साम्य दीख पड़ता है। चतुर्भुजदास की रचना के लिए अनुमान किया गया है कि वह विक्रम की १६वीं शताब्दी में निर्मित हुई होगी।[2] किंतु यह 'मधुकर मालती'

वही

उससे लगभग सौ वर्ष पीछे संवत् १६६१ में लिखी गई थी और इसका रचयिता जान कवि था। इसकी कथा का सारांश यह है—अयोध्या नगर के सौदागर रतन का पुत्र मधुकर था जो अपने गुरु के यहाँ पढ़ा-लिखा करता था और वह एक दिन चटसार में पढ़ने वाली मालती नाम की कन्या पर मोहित हो गया। वे दोनों ही एक-दूसरे पर प्रेमानुरक्त थे, इसलिए मधुकर ने अपने पिता से कहकर अपने को भी उस चटसार में ही भर्ती करा लिया। उधर मालती के पिता ने उसकी यौवनावस्था देखकर उसे अपने घर पर ही पढ़ाना उचित समझा और उसने चटसार के गुरु से इस कार्य के लिए एक अध्यापक भी माँगा तथा गुरु ने तदनुसार मधुकर को ही नियुक्त कर मालती को पढ़ाने के लिए भेज दिया। किंतु इधर मधुकर के पिता को दोनों के प्रेम-व्यवहार का पता चल गया और उसने उसे अपने साथ बाहर ले जाकर दोनों में विरह का बीज बो दिया। उधर मालती को किसी बादशाह ने उसके पिता से अपनी चेरी के रूप में, एक सहस्र मुद्रा देकर खरीद लिया जहाँ से फिर वह 'उस वज़ीर के पास चली गई। किंतु वह सदा विरहिणी ही बनी रही। मधुकर अपने पिता के मर जाने पर जब अपने घर लौटा, तो उसे अपने गुरु द्वारा मालती के उक्त प्रकार बिक जाने का पता चला। फलतः वह घूमता-घामता वज़ीर के यहाँ पहुँचा जहाँ उसे विदित हुआ कि मालती के वहाँ रहना अस्वीकार कर देने पर वह उसे मरवा डालना चाहता है। संयोगवश वह मारी न जा सकी और फिर, बादशाह के यहाँ भी वही व्यवहार होने लगने

१. 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', (हीरक जयंती अंक) पृ० १८८-६०।
२. वही, पृ० १६२।

की दशा में, वह तुर्किस्तान के सुलतान के हाथ बिक गई।

मालती को लेकर जब यह सुलतान तुर्किस्तान की ओर चला तो मधुकर भी उसके साथ हो लिया। उसने उसे अपनी पुत्री की चेरी के रूप में रखा

वही — जहाँ उसका दामाद इस पर आसक्त हो गया और इसकी अस्वीकृति की दशा में उसने इसे आधी रात को पानी में डुबो दिया। किंतु जिस संदूक में मालती

रखी गई थी उसे किसी अरमनी ने निकाल लिया और उसे अपनी नाव के साथ ले चला। अरमनी ने जब इसका आलिंगन करना चाहा तो इसने अस्वीकार कर दिया। जिस पर मधुकर ने, जो उनके साथ ही था, उसे आश्वासन दिया कि मैं मालती को उसकी भाषा में समझा-बुझा दूँगा। नाव तब तक 'सलान' तक पहुँच गई जहाँ बादशाह ने अपने प्रधान को अरमनी के नाव का सारा सामान खरीदने के लिए भेजा। प्रधान यहाँ मालती को देखते ही मोहित हो गया और इसकी अस्वीकृति पर इसे दण्ड देने पर तुल गया। किंतु बादशाह ने इसे पाँच 'रत्नों' पर खरीद लिया। जब यह उसके भी यहाँ न रह सकी तो इसे उसने अरमनी को लौटा देना चाहा, किंतु उसके आदमियों ने भूल से इसे मधुकर को दे डाला। परंतु मधुकर उन्हें पाँच रत्न लौटा न सका, जिस कारण वह 'भाकसी' में डाल दिया गया, जहाँ वह किसी प्रकार मछली खा खाकर जी सका। एक दिन जब संयोगवश उसे किसी मछली के पेट से पाँच रत्न मिल गए तब वह उसे देकर मालती को रख सका। परंतु इन दोनों प्रेमियों की नाव आगे मार्ग में ही फट गई जिससे दोनों पृथक्-पृथक् हो गए। मालती जहाँ लगी वहाँ के बादशाह ने इसे अपने दस सेवकों के द्वारा घर पहुँचा देना चाहा, किंतु कुछ लोगों ने इसे फिर सेवकों से भी छीन लिया और इसे अप्सराओं को दे दिया। जब इसे अप्सराओं के बादशाह ने भी अपने यहाँ रखना चाहा और यह वहाँ भी न रह सकी तो उसने इन सेवकों को ही लौटा दिया। ये सेवक इसे 'अवध' के मार्ग तक ले आये जहाँ से घूमती-घामती वह फिर बगदाद तक आ गई।

बगदाद में तब तक मधुकर भी पहुँच गया था और संयोगवश ये दोनों वहाँ की सराय में, एक-दूसरे को बिना जाने, ठहर गए। वहाँ पर ये

वही — दोनों एक स्थान पर लेटे थे किन्तु अँधेरे में ये एक-दूसरे को पहचान नहीं पाये और सारी रात विरह की वेदना से पीड़ित रहे। जब ये दोनों वहाँ से बाहर

निकले तो बादशाह हारूँ रशीद के पौरिये इन्हें उनके पास लाये और दोनों

पृथक् पृथक् बन्दी भी बनाये गए। किन्तु बादशाह हारूँरशीद को इनके प्रेम-सम्बंध का पता चल गया और उसने इन दोनों की परीक्षा लेकर इनका विवाह भी करा दिया। इस प्रकार अन्त में एक-दूसरे से मिलकर परम आनन्दित हुए और दोनों को उस बादशाह ने अयोध्या तक पहुँचवा भी दिया। अतएव जान कवि के इस इस प्रेमाख्यान में मनोहर-मालती की प्रेम कथा का उतना अंश, जितना उनके पढ़ने की व्यवस्था से सम्बंध रखता है, प्रायः समान है। यह संयोगवश सदयवच्छ व सावलिगा की प्रेम-कहानी में भी आता है, जिसके राजस्थानी रूप की चर्चा इसके पहले की जा चुकी है। किन्तु इसके पहले अंश में अनेक अभारतीय प्रसंगों के भी उल्लेख आ गए हैं तथा इसकी घटनाओं का बहुत-सा क्षेत्र भी अभारतीय ही है। इसमें दास-प्रथा का प्रसंग अनेक बार आया है और मालती, एक साधारण-सी वस्तु की भाँति, कई व्यक्तियों द्वारा बेची-खरीदी गई है। यह 'अरमनी' के हाथ पड़ी है, अप्सराओं तक के पास पहुँची है और अन्त में बग़दाद आकर उद्धार पा सकी है। इसके सिवाय इस प्रेमाख्यान के रचयिता ने, इसकी नायिका मालती के प्रेम की परीक्षा लेने में, प्रसंगों की संख्या बहुत अधिक बढ़ा दी है। पहले वह वज़ीर के साथ रहना नहीं चाहती, फिर उसके बादशाह का प्रस्ताव ठुकराती है, सुलतान के दामाद की बात नहीं मानती, अरमनी को अस्वीकार कर देती है, 'सतान' के बादशाह और उसके 'प्रधान' के पास भी नहीं रहती और अन्त में अप्सराओं के बादशाह तक को नापसन्द कर देती है। फिर भी उसे एक बार हारूँरशीद के यहाँ भी अपने प्रेम की परीक्षा देनी पड़ती है जहाँ वह पूर्ववत् सच्चो सिद्ध होती है। उसके प्रति मधुकर का भी निरन्तर प्रेमभाव बनाये रखना तथा कठिन-से-कठिन अवसरों पर भी प्राणों की बाजी लगाकर उसे निभाते रहना यहाँ प्रदर्शित किया गया है। ऐसी सारी बातें, सम्भवतः मूल कथा में जान-बूझकर बढ़ा दी गई हैं और इसमें अतिमात्रता तक ला दी गई है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि हारूँरशीद भी यहाँ दो प्रेमियों की प्रेम-परीक्षा ठीक उसी प्रकार लेते हैं जैसे 'माधवानल कामकंदला' के विक्रमादित्य ने लिया था। ये भी क्रमशः एक के यहाँ जाकर दूसरे की मृत्यु का समाचार देते हैं और उसे मरणासन्न बना देते हैं।

इस प्रकार 'मधुमालती' की कथा के न केवल दो रूप ही मिलते हैं, अपितु उनमें से भी प्रत्येक के कई रूपान्तर हो गए हैं। हिन्दी में रचित किसी 'मधुमालती-कथा' का एक उल्लेख 'बाङ्गला साहित्येर इतिहास'

उसके विभिन्न रूप में भी मिलता है[1] और उसका रचना-काल सन् १७५९ ई० है। पता नहीं उस रचना की कथावस्तु कौन-सी है, किन्तु यह अनुमान करना अनुचित नहीं कि संभवत. ऐसे ही किसी प्रेमाख्यान के आधार पर बंगला भाषा के कवि अमीर हामज़ा ने अपनी 'मनोहर-मधुमालती' स० १८५० के लगभग लिखी होगी तथा गोविन्दचन्द्र चट्टोपाध्याय ने भी अपनी 'मधुमालती' का प्रणयन स० १९०१ के लगभग किया होगा। इस प्रेमकथा के दो गुजराती सस्करणों का भी पता चलता है किन्तु उनके भी उपलब्ध न हो सकने के कारण यह कहना सम्भव नहीं कि उनके आधारभूत कथानक का रूप क्या रहा होगा। 'मधु-मालती' की भाँति हम अन्य अनेक ऐसे प्रेमाख्यानों के भी विषय में यही बात पाते हैं। उनके कथानकों में हमें, नामसाम्य तथा अन्य अनेक प्रसंगों के एक समान होते हुए भी बहुत-कुछ अन्तर दीख पड़ता है। वे फिर भी हमें मूलत. एक-से जान पड़ते हैं, जिसका एक प्रमुख कारण यह हो सकता है कि वे जैसे-जैसे लोकप्रिय बनते गए हैं वैसे-वैसे उनका विस्तृत प्रचार होता चला गया है। तदनुसार उनमें ऐसी बहुत-सी स्थानीय बातें तथा प्रासगिक बातें भी मिलती गई हैं, जिनका उनके मूल रूप से कोई सम्बध न था। कभी-कभी तो ऐसी अनेक बातें प्रेमाख्यानों के रचयिता कवियों के धर्म, शिक्षा, सस्कृति अथवा योग्यता के कारण भी उनमें सम्मिलित हो गई हैं। उदाहरण के लिए चतुर्भुजदास की 'मधुमालती' के ऊपर दिये गए कथा-साराश से प्रकट होगा कि वह कवि न केवल हिन्दू था, अपितु उसे देवताओं की सहायता में पूर्ण आस्था भी थी। वह इसमें दृढ विश्वास रखने के ही कारण, कथा के प्रसगों वा घटनाओं में सहसा उलट-फेर भी करा सकता था। इसके विरुद्ध 'मधुकर-मालती' के रचयिता जान कवि को अपनी शामी साहित्यिक परम्परा से ही विशेष परिचय है, जिस कारण वह बार-बार केवल ऐसे ही प्रसगों का समावेश करता रहता है, जो उसके अनु-कूल हो। मूलत इस रचना में बहुत-कुछ सम्मिश्रण हो गया है।

लोकगीतों मे भी इसके उदाहरण

इस प्रकार के अन्तर और प्रत्यन्तर की बातें प्रेमाख्यानों के उन अधूरे चित्रणों द्वारा भी उद्धृत की जा सकती है जो बहुधा लोकगीतों में पाये जाते हैं और जिनकी सुन्दर चित्ताकर्षक पक्तियों में अपूर्व प्रेमरस भरा रहता है। राजस्थान के ऐसे ही एक अत्यन्त प्रसिद्ध 'पणिहारी' नामक लोकगीत का

१ 'बागला साहित्येर इतिहास', पृ० १०४४।

परिचय इसके पहले दिया जा चुका है, किन्तु वहाँ केवल उसके मूल प्रसंग का ही संक्षिप्त उल्लेख हुआ है। उस गीत के अन्य प्रान्तों में पाये जाने वाले रूपान्तरों की वहाँ कोई तुलना नहीं की जा सकी थी। यह गीत राजस्थान के अतिरिक्त सिन्ध, गुजरात, पंजाब, ब्रज, अवध तथा भोजपुर प्रान्त में भी उपलब्ध है और उन विशिष्ट स्थानों के वातावरणों का प्रभाव उस पर स्पष्ट दीख पड़ता है। राजस्थानी वाले गीत में, तथा प्राय. उसी प्रकार सिन्धी वाले में भी, वहाँ के प्रान्तों के अधिकतर मरुस्थल होने के कारण, गीत के उल्लासपूर्ण चित्रणों के लिए वर्षा ऋतु की हरियाली, उसके अवसर पर धारण किये जाने वाले स्त्रियों के आभूषणादि तथा विनोद के वर्णनों का अंश देकर पहले एक उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार कर ली जाती है और तदनन्तर मूल प्रसंग का आरम्भ किया जाता है। परन्तु गुजरात, ब्रज, अवध एवं भोजपुर के इस लोकगीत को वैसी किसी भूमिका की आवश्यकता नहीं पड़ती और उधर कभी-कभी उसके वातावरण में थोड़ा परिवर्तन भी कर दिया गया मिलता है। इनमें से राजस्थानी तथा सिन्धी रूपान्तरों में एक यह भी साम्य है कि वहाँ पर पनिहारिन का पति ऊँट पर आता है, न कि घोड़े पर वा पैदल। पनिहारिन उससे बातें करते समय तक सातों सखियों के मध्य 'मलिन वसना' बन जाती है। उन दोनों में जलाशय के निकट प्रश्नोत्तर भी चलते हैं। राजस्थानी की पणिहारी गीत सिन्धी वाले का ठीक मूल रूप भी लगता है। परन्तु अन्य ऐसे गीतों के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। यहाँ पर हम, इन सभी से कुछ पंक्तियाँ देकर पनिहारिन के पथिक के प्रति कहे वाक्यों में से केवल एक का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

राजस्थानी—बालूँ तो जालूँ थारी जीभडी रै लजा ओठीड़ा, एलो,
डसै तनै कालो नाग, बालाजो।

सिन्धी —बालूँ रे जालूँ वारी जाभड़ी रंजा ओठीरेलो।
खाल खींचावुं भरूँ भूस वालाजी एलो॥

पंजाबी —नीला घोड़ा तेरा मर जाय सिपहिया वे,
चाबुक रह जाय हथ्थ मुलिलया राहिया वे।

गुजराती —घड़ो फोडे तारी मावडी रे
वेलय मा मा वेमे तारी भेन, रे मेवाड़ा।

ब्रज —डाढ़ी रे मूँड़ूँ रे तेरे बाल की,
ए बटाऊ ढोला गोंछन डारूँगी अंगार।

भोजपुरी —जाना होइ त जाहु बटोही ए नएला जनि भूल।
जेकर हई बार बिश्रहुआ, सेकरा पाँव की धूर।

'पणिहारी' का नाम आते ही हमें कभी-कभी राजस्थान की उस प्रेम-गाथा का स्मरण हो आता है जो मूमल एवं महेन्द्र के नाम से वहाँ पर लोक-प्रसिद्ध है। महेन्द्र अमरकोट का राजकुमार था जो अपनी प्रेयसी मूमल से भेंट करने प्रतिदिन रात के समय ऊँट पर सवार होकर चुपके-चुपके जाया करता था। वह रात में ही घर वापस आ जाता और मार्ग में 'हाँकड़ा' नदी में स्नान भी कर लेता। एक दिन जब, उसके विषय में सन्देह हो जाने पर उसके पिता ने उसके ऊँट को अन्यत्र भेज दिया और वह इसी कारण एक ऊँटनी पर सवार होकर चला तो ऊँटनी मूमल के यहाँ ठीक समय पर न पहुँच सकी। फलत तब तक उसे देखने की अभिलाषिणी मूमल की छोटी बहन मूमल की जंघा पर सिर रखकर सो गई। जब, अन्त में, विलम्ब करके महेन्द्र वहाँ पहुँचा तो उसे महल की खिड़की से यह देखकर भ्रम हो गया और इस सन्देह में कि मूमल की जाँघ पर सिर रखकर उसका कोई अन्य प्रेमी न सो रहा हो, वह अपमान से जलने लगा। उसने अपनी जूतियाँ वहीं पर छोड़ दीं और वहाँ से उलटे पैर वापस होकर कहीं चला गया। प्रातःकाल जब मूमल ने उसकी जूतियाँ पड़ी हुई देखीं तो उसे अपने प्रियतम के विरह की वेदना तीव्रतर हो उठी और उसे भयावह स्थिति को समझ पाने में भी विलम्ब न लगा। उसने भरसक उसका पता लगाना चाहा किन्तु अन्त में निराश होकर उसने प्राण त्याग तक कर दिये। इन दोनों प्रेमियों की केवल प्रेम-कहानी-मात्र रह गई। राजस्थान की यह एक लोकप्रिय प्रेमगाथा है किंतु, जहाँ तक पता है, इसका प्रचार किसी अन्य प्रांत में भी नहीं सुना जाता।

मूमल और महेन्द्र की प्रेमगाथा

भारतीय प्रेमाख्यानों के किसी वैज्ञानिक वर्गीकरण की यदि चेष्टा की जाय तो, वह कदाचित्, उनकी रचना के उद्देश्य के ही अनुसार उनका विभाजन करने पर, सफल हो सकेगी। उस दशा में भी प्रत्येक वर्ग में दो-चार उपवर्गों की सृष्टि करनी पड़ेगी। वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल तक उपलब्ध ऐसी सभी रचनाओं पर सरसरी तौर पर भी विचार करने से पता चलता है कि प्रारंभिक दिनों में इनके निर्माण का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं था और ये प्रसंगवश यों ही कह दिये जाते थे।

प्रेमाख्यानों का वर्गीकरण

ये संभवतः इतिवृत्तों के रूप में थे। किन्हीं दो व्यक्तियों में अमुक प्रकार का प्रेम-सम्बंध स्थापित हुआ, इस प्रसंग में अमुक प्रकार की घटनाएँ घटीं और अमुक परिणाम निकला। इस प्रकार ऐसे प्रेमाख्यानों को हम 'इतिवृत्तात्मक' ही कह सकते हैं। इन्हें सूचना देने, उदाहरण प्रस्तुत करने आदि के ही लिए उद्दिष्ट ठहरा सकते हैं। इसी कारण, इस वर्ग के अंतर्गत वे रचनाएँ आ सकती हैं जिन्हें वैदिक, पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कहा जायगा। परंतु ऐसे प्रेमाख्यानों के अतिरिक्त अनेक ऐसी भी रचनाएँ हो सकती हैं जिनके निर्माण का उद्देश्य न केवल कथा का कह देना अथवा उसकी घटनाओं तथा पात्रों का परिचय देना मात्र हो, प्रत्युत इसके द्वारा श्रोताओं और पाठकों का मनोरंजन भी करना हो तो, उस दशा में हमें उन्हें किसी भिन्न वर्ग में रखना पड़ सकता है। ऐसी रचनाएँ वे लोकगाथाएँ हैं जिन्हें या तो सर्व साधारण के समाज में कहा सुना-जाता हो अथवा कहीं एक साथ एकत्र करके वे किसी कथा-साहित्य के रूप में संगृहीत कर ली गई हों या उन्हें गद्य या पद्य के किसी-न-किसी काव्यात्मक रूप में निर्मित कर दिया गया हो। इनका उद्देश्य 'मन बहलाव' हो सकता है अथवा साहित्यिक आनंद की उपलब्धि भी हो सकती है। इसी प्रकार इन प्रेमाख्यानों का एक तीसरा वर्ग भी हो सकता है जिनकी रचना का लक्ष्य कोरा मनोरंजन न रहकर किसी धर्म के सिद्धांत का प्रचार भी हो। ऐसी रचनाएँ इसलिए लिखी जाती हैं कि इनके पात्रों के चरित्र और व्यवहारादि का आश्रय समझकर कोई श्रोता या पाठक किसी मतविशेष का महत्त्व भी समझ सके। ये प्रेमाख्यान उक्त लौकिक कथात्मक अथवा काव्यात्मक कृतियों से स्वभावतः अधिक गंभीर उद्देश्य को लेकर चलते हैं। इनके अंतर्गत उन प्रेमगाथाओं की गणना की जा सकती है जिनका निर्माण बौद्धों, जैनियों, सूफ़ियों, संतों अथवा भक्तों द्वारा हुआ है।

वर्गों में भी उपवर्ग

जिन प्रेमाख्यानों की अब तक चर्चा की गई है उनमें इन सभी की रचनाएँ आती हैं। भारतीय प्रेमाख्यान साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि पहले-पहल यहाँ पर इस प्रकार की इतिवृत्तात्मक रचनाओं का ही निर्माण हुआ होगा। फिर इनके अनंतर या इनके साथ ही वे रचनाएँ भी निर्मित होती चली होंगी जिनको हमने 'मनोरंजनात्मक' विशेषण दिया है। किंतु धार्मिक बातों के प्रचार का माध्यम कही जाने वाली ऐसी रचनाएँ कुछ पीछे चलकर ही बनने लगी होंगी और फिर इनमें विविध धर्मों की गाथाएँ सम्मिलित होती गई होंगी। इसी प्रकार, यदि हम इनमें से प्रत्येक

वर्ग के उपवर्गों पर भी विचार करें तो जान पड़ेगा कि 'इतिवृत्तात्मक' प्रेमाख्यानों में से, सर्वप्रथम वैदिक साहित्य की रचनाएँ आती हैं और उनके अन्दर क्रमश ऐसी पौराणिक एव ऐतिहासिक रचनाओं का स्थान है। पौराणिक प्रेमाख्यानों में देवताओं तथा स्वर्गीय एव लौकिक मर्यादाओं की चर्चा बहुत स्पष्ट रूप में होने लगती है और इनमें अवतारवाद, कर्मवाद जन्मांतरवाद-जैसे कई सिद्धान्तों का उदाहृत होता जाना भी दीख पड़ने लगता है। पौराणिक साहित्य तक आकर ऐसी रचनाओं की इतिवृत्तामकता भी अधिक स्पष्ट होने लगती है और कुछ ऐसा भी लगने लगता है कि इनकी घटनाएँ अवश्य घटी होंगी। फिर भी इनके तथ्य होने में हमें तब तक पूर्ण विश्वास नहीं होता जब तक इनमें ऐतिहासिक तत्त्व भी लक्षित नहीं होने लगते। कथानकों के पूर्णत ऐतिहासिक हो जाने पर इनकी इतिवृत्तात्मकता कहीं अधिक दृढ़ हो जाती है।

'मनोरजनात्मक' प्रेमाख्यानों में भी सबसे प्राचीन वे ही हो सकते हैं, जिन्हें हम लोक-गाथाओं का भी नाम दे सकते हैं। वास्तव में इनके निर्माण-काल के विषय में कोई बात निश्चित रूप से नहीं वही कही जा सकती और न इनके रचयिताओं का ही पता लग सकता है। इनमें ऐसे भी हो सकते हैं, जिनका उपयोग वैदिक साहित्य में भी किया गया है। ये अपने आदि काल से ही सदा अलिखित एव मौखिक रूप में रहते आए हैं और बिना किसी प्रयास के ही ये सदा सर्व साधारण में प्रसिद्ध भी हो जाते आए हैं। इनके अनन्तर उन प्रेमाख्यानों का रचा जाना समझा जा सकता है, जो कदाचित् इन्हींके आदर्शों पर पीछे काल्पनिक रूप में निर्मित हुए हैं। उनके निर्माताओं ने उनकी रचना करके तथा कभी-कभी उनकी-जैसी अन्य कृतियों को भी चुनकर कथा-संग्रहों में एकत्र किया है। लोकगाथाओं की अपेक्षा ये अधिक व्यवस्थित होते हैं, किंतु इसके साथ ही इनमें बहुत-कुछ कृत्रिमता भी आ गई रहती हैं। इनमें न तो वैसे निरावृत कथन ही पाये जाते हैं और न विविध घटनाओं का वैसा अबाधित प्रचार ही लक्षित होता है। इनमें वर्ण्य विषय की ओर जाने वाली दृष्टि कुछ-न-कुछ वर्णन प्रकार की ओर भी विभाजित हो गई रहती है जिसके कारण इनमें वैसी स्वाभाविकता नहीं रहने पाती। रचना-शैली की ओर ध्यान देने की यह प्रवृत्ति हमें काव्यात्मक प्रेमाख्यानों में और भी स्पष्ट हो गई दीख पड़ती है। ऐसी रचनाओं के निर्माता तो कला-विशेष के निर्धारित नियमों का पालन तक करने लग जाते हैं और उनकी उत्कृष्टता केवल कवि-

कौशल पर ही अवलम्बित रह जाती है।

वही

भारतीय प्रेमाख्यान की 'प्रचारात्मक' रचनाओं में से सर्वप्रथम, हमें बौद्ध जातकों तथा जैन धर्म-कथाओं के उदाहरण मिलते हैं। यों तो यदि हम पुरूरवस् एवं उर्वशी के वैदिक प्रेमाख्यान के शतपथ ब्राह्मण वाले रूप पर ध्यान दें तो हमें ऐसी रचनाओं के निर्माण का सूत्रपात 'ऋग्वेद संहिता' की रचना के समय तक ही हो गया प्रतीत होगा। किंतु हो सकता है कि, ऐसी कोई बात न हो। शतपथ ब्राह्मणों वाले प्रसंग का उल्लेख करने वाला तीनों प्रसिद्ध अग्नियों की उत्पत्ति का मूल कारण बतलाता है और उनका महत्त्व भी निर्दिष्ट कर देता है। उसके अनुसार ये अग्नि पुरूरवस् को उसके अभीष्ट की सिद्धि में पूरी सहायता भी प्रदान करते हैं। किंतु ऐसा संयोगवश भी हो सकता है, तथा इसके द्वारा दो प्रेमियों के स्थायी संयोग की ही सम्भावना बढ़ती है, उसका महत्त्व कम नहीं होता। परन्तु पीछे के धर्म-प्रचारकों ने अपने प्रेमाख्यानों की रचना इस प्रकार की है, जिससे उनके मत या सिद्धांत को ही प्रधानता मिल जाती है और प्रेम-कथा गौण बन जाती है। यह बात विशेषकर जैनियों की धर्म-कथाओं तथा बौद्धों के जातकों में बहुत ही स्पष्ट हो गई है। इसके कारण, उनके विशुद्ध प्रेमाख्यान कहे जाने पर भी, हमें बहुधा सन्देह होने लग जाता है। इसका कारण, कदाचित्, यह हो सकता है कि बौद्धों एवं जैनियों के यहाँ प्रेमतत्त्व को उतना महत्त्व नहीं दिया जाता जितना यह सूफियों अथवा भक्तों के यहाँ उपलब्ध है। इनमें से भी संतों और भक्तों के साहित्य में यह क्रमशः स्वानुभूति और भक्ति के लिए केवल एक प्रमुख साधन मात्र ही जान पड़ता है। किन्तु, जहाँ तक सूफी-प्रेमगाथाओं का सम्बंध है, यह उनके रचयिताओं का एक-मात्र लक्ष्य अथवा सभी कुछ तक मान लिया गया है। अतएव, काल-क्रमानुसार पहले बौद्धों एवं जैनियों के प्रेमाख्यान आते हैं और तदनन्तर क्रमश: सूफियों तथा भक्तों एवं संतों की ऐसी रचनाएँ आती हैं।

सम्मिश्रण की प्रवृत्ति

परन्तु उक्त प्रकार के वर्गीकरण में भी यह स्मरणीय है कि प्रत्येक वर्ग दूसरे से पूर्णरूपेण पृथक् नहीं कहा जा सकता। इतिवृत्तात्मक प्रेमाख्यानों द्वारा मनोरंजन का भी होना असंभव नहीं और न उनकी सहायता से हम किसी मतविशेष का प्रचार करने में असमर्थ ही कहे जा सकते हैं। इसी प्रकार बहुत से प्रेमाख्यान ऐसे भी मिल सकते हैं जो मनोरञ्जनात्मक होते हुए भी

कि वे किसी अपूर्व प्रेम-यात्रा में निकल पड़े हैं। इसी प्रकार यहूदियों के हिब्रू साहित्य, और विशेषकर उनके प्रसिद्ध 'सोलोमन के गीतों' में भी हमें दाम्पत्य-प्रेम के उदाहरण मिलते हैं। स्वयं यहूदियों के देवता जेहोवा तक उनके लिए ऐसी शैली में कहते हुए दीख पड़ते हैं जैसे वे स्वयं 'दूल्हा' और यहूदी जाति उनकी 'दुलहिन' हो। कदाचित् इसी आदर्श पर, पीछे ईशु ख्रिस्ट के चर्च के प्रति प्रेम-भाव का भी वर्णन अनेक ईसाई धर्म-ग्रन्थों में किया गया मिलता है। इसके सिवाय प्रेम भाव के इस व्यापक महत्त्व का प्रमाण चीन के भी प्राचीन साहित्य में लक्षित होता है, जहाँ 'शिहचिंग' के प्रेमगीतों में ऐसे प्रसंगों के संकेत प्रचुर मात्रा में मिलते हैं और 'सू फुत्से' के अनुयायी उनका अर्थ अपने मतानुसार करते पाये जाते हैं। इनकी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति वहाँ के 'प्रेमी' का मंत्री वा अमात्य की दृष्टि से देखती है और 'प्रेमपात्र' से उसके राजा वा सम्राट् का अभिप्राय समझती है, जिस प्रकार सूफी काव्य-रचनाओं का 'प्रेमी' शब्द किसी साधक के अर्थ में लिया जाता है और उनके 'प्रेमपात्र' को ईश्वर का बोधक माना जाता है।

---

१ 'जेरेमिया', अध्याय २-२

कथा-सन्दर्भ सूची

सहायक साहित्य

क वैदिक साहित्य—

१ ऋग्वेद

२ शतपथ ब्राह्मण

ख. पौराणिक साहित्य—

१ अग्नि पुराण

२ ब्रह्म पुराण

३ ब्रह्मवैवर्त्त पुराण

४ महाभारत

५ वायु पुराण

६ विष्णु धर्मोत्तर

७ विष्णु पुराण

८ श्रीमद्भागवत

९ शिव पुराण

१० हरिवश पुराण

ग. बौद्ध एव जैन साहित्य—

१ जातक कथा, ३ खण्ड, (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

२ जैन महापुराण, (भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, स० २०११)

३ पउमसिरी, (सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्या भवन, बम्बई,१९४८)

४ भविसयत्त कहा

५. मलयसुन्दरी कथा

6 Dr Winternitz A History of Indian Literature (University of Calcutta, 1933) Vol. I and II.

सहायक साहित्य

क. वैदिक साहित्य—

१. ऋग्वेद
२ शतपथ ब्राह्मण

ख. पौराणिक साहित्य—

१ अग्नि पुराण
२ ब्रह्म पुराण
३ ब्रह्मवैवर्त्त पुराण
४. महाभारत
५ वायु पुराण
६ विष्णु धर्मोत्तर
७ विष्णु पुराण
८ श्रीमद्भागवत
९ शिव पुराण
१० हरिवंश पुराण

ग. बौद्ध एवं जैन साहित्य—

१ जातक कथा, ३ खण्ड, (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)
२ जैन महापुराण, (भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, स० २०११)
३. पउमसिरी, (सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९४८)
४ भविसयत्त कहा
५. मलयसुन्दरी कथा
6. Dr. Winternitz: A History of Indian Literature (University of Calcutta, 1933) Vol I and II.

७ सखित्त तरगवई कहा (तरग लोला), अहमदावाद, स० २०००

८ समराइच्च कहा (कलकत्ता, सन् १९०९ ई०)

घ काव्य एव कथा साहित्य—

१ अब्दुर्रहमान सदेशरासक (भारतीय विद्याभवन)

2 Emenean M B . vetalapanhavinshati

३ कालिदास अभिज्ञान शाकुन्तलम् (नाटक), विक्रमोर्वशीयम् (नाटक); मालविकाग्निमित्रम् (नाटक), मेघदूत (काव्य)

४ क्षेमेन्द्र वृहत्कथामञ्जरी (काव्यमाला)

५ त्रिविक्रम नलचम्पू

6 N M Panzer The Ocean of Story (London, 1924)

७ भवभूति मालतीमाधव (नाटक)

८ भास प्रतिज्ञा यौगधरायण (नाटक), स्वप्नवासवदत्ता (नाटक)

९ रत्नावली (नाटिका)

१० वाण कादम्बरी

११ सोमदेव कथासरित्सागर

१२ सिंहासन वत्तीसी

१३ सुवन्धु वासवदत्ता

१४ श्रीहर्ष नैषधीयम् (महाकाव्य)

१५ हरिषेण वृहत्कथाकोश (भारतीय विद्याभवन)

ङ लोक-गाथा-साहित्य—

१ Dr, Varrier Elwin Folk-songs of Chhattisgarh (Oxford University Press, 1941)

2 S C Dube Field Songs of Chhattisgarh

3 Dr G A Grierson The Geeta Bijayamal, A song in old Bhojpuri (J A S B, 1884)

4 Dr G A Grierson The Selected Specimens of the Behari Languages, The Geeta Naika Banjarawa (Z D M G, 1889)

५ परमार श्याम मालवी और उसका साहित्य (राजकमल प्रकाशन)

६ डॉ० सत्येन्द्र व्रजलोक साहित्य का अध्ययन (आगरा, १९४९)

च सूफी साहित्य—

1 Muhammad Abdul Ghani The Pre-Mughal Persian in Hindustan (Allahabad Law Journal Press, 1941)

2 Dr. Maulvi Abdul Haq The Sufis' work in the Development of Urdu Language (The Anjuman Taraqie Urdu, Delhi)

छ प्रादेशिक भाषा साहित्य—

१ इब्न निशाती · फूलबन (ताज प्रेस, हैदराबाद, १३५७ हि०)
२ ईश्वरदास सत्यवती कथा (हिन्दुस्तानी भा० ७ अ० १, प्रयाग)
३ शेख उसमान चित्रावली (ना० प्र० सभा, काशी)
४ कासिमशाह हंस जवाहिर भाषा (राम कुमार प्रेस, लखनऊ)
५ गवासी : सैफुल मुलूक व बदीउल जमाल (दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद १९५५)।
६ डॉ० माताप्रसाद गुप्त 'जायसी ग्रन्थावली' (हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, १९६१)
7. P Chenchiah . History of Telugu Literature (Heritage of India Series)
८ ढोलामारूरा दूहा, (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी)
9. H M Das · 'Sankerdeva A Study' (Gauhati, 1945)
10 V R Ramchandra Dikshitar · Studies in Tamil Literature and History (University of Madras, 1936)
११ चन्द्रबली पाण्डे अनुरागबाँसुरी (हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग)
12. B K Barua History of Assamese Literature (P E N , 1941)
१३ बोधा · विरह वारीश (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)
१४ व्रजरत्नदास नन्ददास ग्रन्थावली (ना० प्र० सभा, काशी)
१५ विनायक लक्ष्मण भावे महाराष्ट्र सारस्वत (चतुर्थ आवृत्ति, पुणें शके १८७६)
१६ रा० व० आर्त्तवल्लभ महती : उत्कल साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, (विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, १९५१)
17. K M Munshi Gujerat and its Literature, Longmans, 1935)
१८ मोतीलाल मेनारिया · राजस्थान का पिंगल साहित्य, (हिन्दी) पुस्तक भण्डार, उदयपुर, १९५२)
19 E P Rice · History of Kanarese Literature (Heritage of India Series)

२० पृथ्वीराज राठौर वेलिक्रिसन रुक्मिणीरी (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)
२१ मुल्ला वजही कुतुब मुश्तरी (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, १९५४)
२२ मुल्ला वजही सबरस (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, १९५४)
२३ नलोदय काव्य (मलयालम) वासुदेव कवि की रचना
२४ श्रीराम शर्मा 'दक्खिनी का पद्य और गद्य' (हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद, १९५४ ई०)
25 K A Nilakantha Sastri A History of South India (Oxford University Press, 1955)
२६ सतीकण्णकी (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)
२७ सनअती किस्सए बेनजीर ,,
२८ डॉ० गुलाब सिंह पजाबी साहित्त दा इतिहास, (पजाबी एकेडमी, नई दिल्ली)
२९ डॉ० गुलाब सिंह रोमांचिक पजाबी कवि, (पजाबी एकेडमी, नई दिल्ली)
30 Harmam Singh Sassi Hasham (Punjabi Sahitya Akademi, Ludhiana)
31 Dr D C Sen A History of Bengali Language and Literature (University of Calcutta, 1911)
32 D C Sen Folk Literature of Bengal (University of Calcutta, 1920)
३३ डॉ० सुकुमार सेन इसलामि बागला साहित्य, (बर्द्धमान साहित्य सभा, १३५८ साल)
३४ डॉ० सुकुमार सेन बागला साहित्येर इतिहास, (मडार्न बुक एजेंसी कलकत्ता, १३५५ साल)
३५ सैयद एहतिशाम हुसेन उर्दू साहित्य का इतिहास (अनजुमन तरक्किए उर्दू (हिन्द) अलीगढ १९५४)
३६ पूर्ण सुन्दरम् तमिल और उसका साहित्य (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली)
37 Dr G M Sufi Kashir (Lahore, 1948) Vol I & II
38 Swinnerton Romantic Tales of Punjab
३९ वारिसशाह हीर राझा (कुतुबखाना दारुल व लाग लाहौर)

ञ. विविध—

१. गौरीशकर हीराचन्द ओझा 'राजपूताने का इतिहास', भाग २

2. Chatterji and Misra : Varna Ratnakar

3. Jeremiah (Chapter 2-2)

४ पातंजल महाभाष्य

5. Bharat Kaumudi (Part II) Indian Press, Allahabad, 1947

6 George S A Ranking . Muntakhabat-Tawarikh (Calcutta, 1897

झ सामयिक पत्रादि

१. कल्पना (हैदराबाद)

२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी)

३. भारती, ग्वालियर

४. राजस्थान भारती (बीकानेर)

५. साहित्य सन्देश (आगरा)

६ हिन्दी-अनुशीलन (प्रयाग)

७. हिन्दुस्तानी (प्रयाग)

ञ हस्तलिखित प्रति—

१ माधवानल कामकदला (आलम)

२. मिरगावति (शेख कुतबन)

३. लखमनसेन पद्मावती (दामो)

४. पुहुपावति (दुख हरन)

५ प्रेम प्रगास (धरणीदास)

६ मधुमालति (मझन)

२० पृथ्वीराज राठौर वेलिक्रिसन रुक्मिणीरी (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)

२१ मुल्ला वजही कुतुब मुश्तरी (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, १६५४)

२२ मुल्ला वजही सबरस (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, १६५४)

२३ नलोदय काव्य (मलयालम) वासुदेव कवि की रचना

२४ श्रीराम शर्मा 'दक्खिनी का पद्य और गद्य' (हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद, १६५४ ई०)

25 K A Nilakantha Sastri A History of South India (Oxford University Press, 1955)

२६ सतीकण्णकी (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

२७ सनअती किस्सए बेनजीर ,,

२८ डॉ० गुलाब सिंह पंजाबी साहित्त दा इतिहास, (पंजाबी एकेडमी, नई दिल्ली)

२६ डॉ० गुलाब सिंह रोमांचिक पंजाबी कवि, (पंजाबी एकेडमी, नई दिल्ली)

30 Harmam Singh Sassi Hasham (Punjabi Sahitya Akademi, Ludhiana)

31. Dr D C Sen A History of Bengali Language and Literature (University of Calcutta, 1911)

32 D C Sen Folk Literature of Bengal (University of Calcutta, 1920)

३३ डॉ० सुकुमार सेन इसलामि बांगला साहित्य, (वर्द्धमान साहित्य सभा, १३५८ साल)

३४ डॉ० सुकुमार सेन बांगला साहित्येर इतिहास, (मडार्न बुक एजेंसी कलकत्ता, १३५५ साल)

३५ सैयद एहतिशाम हुसेन उर्दू साहित्य का इतिहास (अनजुमन तरक्किए उर्दू (हिन्द) अलीगढ़ १६५४)

३६ पूर्ण सुन्दरम् तमिल और उसका साहित्य (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली)

37 Dr G M Sufi Kashir (Lahore, 1948) Vol I & II

38 Swimerton Romantic Tales of Punjab

३६ वारिसशाह हीर रांझा (कुतुबखाना दारुल व लुग लाहौर)

ज. विविध—

१ गौरीशकर हीराचन्द ओझा 'राजपूताने का इतिहास', भाग २
2 Chatterji and Misra Varna Ratnakar
3. Jeremiah (Chapter 2-2)
४. पातजल महाभाष्य
5. Bharat Kaumudi (Part II) Indian Press, Allahabad, 1947
6 George S A Ranking . Muntakhabat-Tawarikh (Calcutta, 1897

झ सामयिक पत्रादि

१ कल्पना (हैदराबाद)
२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी)
३. भारती, ग्वालियर
४ राजस्थान भारती (बीकानेर)
५ साहित्य सन्देश (आगरा)
६. हिन्दी-अनुशीलन (प्रयाग)
७ हिन्दुस्तानी (प्रयाग)

ञ. हस्तलिखित प्रति—

१ माधवानल कामकदला (आलम)
२ मिरगावति (शेख कुतबन)
३ लखमनसेन पद्मावती (दामो)
४ पुहुपावति (दुख हरन)
५. प्रेम प्रगास (धरणीदास)
६ मधुमालति (मझन)